

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182003

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—707—25-4-81- 10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81
S95S

Accession No. P.G.H6372

Author सुन्दरदास .

Title सुन्दरसार . 1928 .

This book should be returned on or before the date last marked below

मनोरंजन पुस्तकमाला-२५

संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०



काशी नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

**Published by
K. Mitra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.**

**Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch**

सुंदरसार

अर्थात्

कविवर स्वामी सुंदरदासजी कृत समस्त ग्रंथों
से उत्तमोत्तम अंशों का संग्रह

“हंस और ज्ञानी गुणी लहैं दूध अरु सार”

संग्रहकर्ता

पुरोहित हरिनारायण, बी० ए०

“यत्सारभूतं तदुपासितव्यं”

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

द्वितीय संस्करण]

१९२८

[मूल्य, १९]

ॐ तत्सत्

भूमिका

भाषा पद्यात्मक साहित्य में सूरदासजी और तुलसीदासजी के पीछे शांतरस वा वेदांत पर लिखनेवाले कवियों में स्वामी सुंदरदासजी सुविख्यात और अग्रगण्य हैं। इनके रचित अनेक ग्रंथों में से “सुंदरविलास” (जिसका ठेठ नाम “सवैया” है) स्यात् किसी भी हिंदी-प्रेमी से छिपा नहीं है। इनके अन्य ग्रंथ भी, जिनकी संख्या ४० से अधिक है, एक से एक बढ़कर हैं। ‘ज्ञानसमुद्र’, ‘अष्टक’, ‘साखी’, ‘पद’ तथा भिन्न काव्यभेदों की रचनाएँ बहुत चित्ताकर्षक, उपयोगी और नीति ज्ञान के अनोखे विचारों से भरी हैं।

इनके ग्रंथों के जितने मुद्रित संस्करण हमारे देखने में आए हैं वे प्रायः सब ही अपूर्ण और अशुद्ध हैं। आनंद की बात है कि चिरकाल की खोजसे हमको स्वामीजी की संकलित की और लिखाई हुई संवत् १७४३ की एक हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त हमने, निज की अभिरुचि वश, बहुत सी अन्य हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों का भी संग्रह किया। उक्त प्राचीन पुस्तक के आधार पर और अन्य प्रतियों के मिलान से हमने समस्त ग्रंथों का एक शुद्ध और पूर्ण संस्करण संपादन किया है जो शीघ्र मुद्रित होगा। इस समु-

उच्चय का ग्रंथभार अनुष्टुप गणना से ८००० से अधिक है, और टीका, टिप्पणी, भूमिका, जीवनचरित्र, चित्रादि और परिशिष्टों सहित दुगुने से भी अधिक होगा ।

बहुत दिन से हमारा यह भी विचार था कि समुच्चय ग्रंथ को पढ़ने में पाठकों को बहुत समय और परिश्रम अपेक्षित होगा । यदि अधिक प्रचलित, अधिक रोचक, उपयोगी और व्यवहार में आए हुए छंदों का एक पृथक् संग्रह हो जाय, तथा इस संपूर्ण ग्रंथ के आधार पर प्रायः प्रत्येक अंग का कुछ अंश उदाहरण के ढंग पर दिया जाय, एवं छोड़े हुए अंशों का ब्योरा वा सार भी लिखा जाय तो पढ़नेवालों के लिये एक बड़े काम की लघु पाठ्य पुस्तक हो जायगी, और “सुंदर” रूपी ज्ञानमंदिर में पहुँचानेवाली एक सुलभ और सुगम सोपान बन जायगी । सौभाग्य से “मनोरंजन पुस्तक-माला” का उदय हुआ । उसके सुयोग्य संपादक बाबू श्याम-सुंदरदासजी बी० ए० की सम्मति से यह ‘सार’ संगृहीत हुआ, और उनकी अनुमति से इस “सुंदर” मणि का ‘मनका’ इस माला में पिरोया जाने से मन का रंजन करनेवाला हुआ ।

इस ‘सार’ में सुंदरदासजी के प्रायः समस्त ग्रंथों के वे विशेष अंश इस उत्तमता से छाँटकर रखे गए हैं कि जो पाठकों को साहित्य के नाते ही से रुचिकर नहीं होंगे किंतु उपदेश और ज्ञान ध्यानादि के प्रकरण में भी बहुत लाभकारी जँचेंगे । उन अंशों को विशेष करके ले लिया है जो प्रस्ताविक

वा सिद्धांत के ढंग पर बोले जाते हैं, कंठस्थ किए जाते हैं, पुस्तकों में उद्धृत हुए वा होते हैं वा गाए जाते हैं। इनके भजन ही नहीं वरन् छंद, अष्टक आदि भी गाए जाते हैं।

समस्त ग्रंथों का चतुर्थांश के लगभग इस 'सार' में आ गया है। सब छंदों की संख्या ३७०० से अधिक है, और इस छांट में ६०० से अधिक आ चुके हैं, जैसा कि नीचे लिखी संख्याओं से ज्ञात होता है—

ग्रंथ विभाग	पूर्ण संख्या	'सार' में आई हुई संख्या	उद्धृतांश
१-ज्ञानसमुद्र	३१४	१४७	$\frac{१}{२}$
२-लघुग्रंथावली और फुटकर छंदादि	१३४७	३५१	$\frac{१}{४}$
३-सवैया (सुंदरविलास)	५६३	२५२	$\frac{१}{२}$
४-साखी	१३५१	१३३	$\frac{१}{१०}$
५-पद (भजन)	२१२	४०	$\frac{१}{५}$
सर्व	३७८७	६२३	$\frac{१}{६}$

‘लघुग्रंथावली’ * में “सर्वांगयोग” से लगाकर “पूर्वी

* “लघुग्रंथावली”—यह नाम हमारा रखा हुआ है। सुंदरदास जी ने प्रत्येक को ‘ग्रंथ’ ऐसा लिखा है, ‘ज्ञान समुद्र’ को भी ‘ग्रंथ’ ही लिखा है। परंतु उसको पृथक् कर आदि में उन्हींने रखा, सो ही क्रम हमने रखा और अन्य ग्रंथों को इस एक विभाग में लिया है कि सुविधा रहे। उपर्युक्त पाँच विभाग ‘विभाग’ रूपेण हमने दिखा दिए हैं।

भाषा बरवै' तक ३७ ग्रंथ हैं, और फुटकर छंद और 'देशाटन के सवैया' भी हैं। इनमें से एक तो षट्पदी और तीन अष्टक ('रामजी,' 'नाम' और 'पंजाबी') संपूर्ण ही रखे गए हैं। "सवैया" अधिक उत्तम होने से उसमें से अनुमान से आधी संख्या के छंद लिए गए हैं। अन्य ग्रंथों के अंश रोचकता, उपयोगिता, और ज्ञानांश की प्रचुरतादि के आधार पर उतने ही लिए गए हैं कि जितने उचित समझे गए। प्रत्येक ग्रंथ के लिये हुए छंदों की संख्याएँ छपे अंशों से जानी जा सकती है। हमको इस बात का आग्रह नहीं कि यावत् उत्तम उत्तम अंश इस 'सार' में आ गए हैं। निःसंदेह बहुत से उत्तम छंद रह भी गए होंगे। परंतु यह सब पाठकों के रुचिभेद के अनुसार समझा जा सकता है। सार के संग्रह में जितना होना चाहिए उसको लेने का यथाशक्य प्रयत्न किया गया है।

उद्धृत अंशों के कहीं कहीं आदि में कहीं कहीं बीच में आवश्यकतानुसार छोटी छोटी व्याख्याएँ, विवेचनाएँ वा 'नोट' दिए गए हैं जो कहीं भूमिका का और कहीं त्यक्तांश के सार का काम दे सकेंगे। कठिन वा अव्यवहत वा गूढ़ शब्दों वा वाक्यों के अर्थ अथवा आशय टिप्पणियों (फुटनोटों) में संख्या दे देकर लिख दिए गए हैं। "ज्ञानसमुद्र" और "सवैया" के भूमिका संबंधी 'नोट' उनके पहिले नहीं लिखे गए इस कारण यहाँ देते हैं—

(१) 'ज्ञानसमुद्र'

सुंदरदासजी कृत यह 'ज्ञानसमुद्र' अध्यात्म-विद्या (परमात्म विज्ञान, ब्रह्म-विद्या वा परा-विद्या) और तदुपयोगी साधनों को बतानेवाला, भाषाछंदबद्ध, गुरु शिष्य संवाद रूप, एक स्वल्प संहिता ग्रंथ है। वेदांत में योग भक्ति और सांख्य का जोड़ ऐसी चतुराई से लगाया गया है कि कोई प्रसंग भेद का विवाद नहीं उठता। सिद्धांत में वेदांत ही सर्वोच्च माना जाकर अन्यो को क्रमगत साधन वा मार्गीभूत प्रयत्न दिखाया है। इसको अनेक भाँति के छंदों में इसलिये रचा है कि एक तो मुमुक्षुओं को रुचिकर हो दूसरे यह दिखाना है कि शृंगार और वीर रसादि ही का काव्य के भूषणों में अधिकार नहीं है वरन् शांतादि रसों का भी है। वेदांत को मानों काव्य के ढंग पर रचकर दिखाया है। 'जाति जिती सब छंदन की' इस कहने से यावन्मात्र छंदों से प्रयोजन नहीं है किंतु प्रशस्त छंदों से अभिप्राय प्रतीत होता है। क्योंकि ग्रंथ में केवल ३४ प्रकार के छंद आए हैं। सबही छंद अत्यंत मधुर और रोचक हैं। सर्वत्र ही रचना सरल, सुबोध, सुखावह, ललित, सारगर्भित और ओजस्विनी है। मुमुक्षु जनों, साधुओं और ज्ञानप्रेमियों के लिये यह ग्रंथ बड़े ही काम का है। इसके कई एक छंद प्रमाणवत् बोले जाते हैं। और अनेक छंद वा समग्र उल्लास को लोग कंठस्थ रखते हैं। 'ज्ञानसमुद्र' ऐसा नाम स्वामीजी ने ठीक सोचकर ही रखा है।

इसमें ज्ञान के विषय कूट कूटकर भरे हैं । प्रथम उल्लास के ७ वैखंड (इंदव) में समुद्र का रूपक भी बाँधा है । प्रारंभ के समारोह और उठाव से तो प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ को बहुत कुछ बड़ा बनाना अभिप्रेत होगा, परंतु साधुओं की सुविधा वा हीनता पर दृष्टि कर बहुत विस्तार नहीं किया गया । इसके पाँच उल्लास (वा लहरें) हैं, अर्थात् यह पाँच अध्यायों में विभक्त है, जिनका विवरण इस प्रकार है—

प्रथमोल्लास में—शिष्य और गुरु के लक्षण । गुरु कैसा मिलना चाहिए । शिष्य किस प्रकार अधिकारी होकर गुरु से ज्ञान प्राप्त करे, अपनी शंकाओं और भ्रमों को कैसे मिटाने में बद्धपरिकर रहे । गुरु किस मार्ग वा रीति से शिष्य को ज्ञान-भूमि में प्रवेश करावे, इत्यादि ।

द्वितीयोल्लास में—नौ प्रकार की (अर्थात् नवधा) भक्ति तथा परा भक्ति का उत्तम वर्णन है तथा भक्ति के भेद सहित विधियों का भी सार दिया है । यह अनेक भक्तिग्रंथों का सारोद्धार प्रतीत होता है । परा भक्ति का निरूपण देखने ही योग्य है । इसको उत्तमोत्तम कहा जाय तो यथार्थ है । 'मिलि परमात्म से आतमा पराभक्ति सुंदर कहै' यह भक्ति की महान् गति है ।

तृतीयोल्लास में—अष्टांग योग और उसकी संक्षिप्त विधि का वर्णन है । "हठ प्रदीपिका" आदि ग्रंथों तथा स्वानुभव से इसका निर्माण होना प्रत्यक्ष है । इसके छंदों पर बृहत्

व्याख्या की अपेक्षा होती है परंतु सार ग्रंथ में यह संभव नहीं । राजयोग के लाभ और संबंध को भी इसमें दिखाया है । 'सर्वांगयोग' नामी स्वामीजी का रचा लघु ग्रंथ इसके साथ पढ़ना लाभदायक होगा । निर्विकल्प समाधि के आनंद और योगी की अवस्था आदि का वर्णन अवश्य पठनीय है ।

चतुर्थोल्लास में—सांख्य शास्त्र और उससे मुक्ति के मिलने का प्रकार वर्णित है । प्रकृति-पुरुष-भेद, सृष्टिक्रम और चेतन पुरुष से उसका प्रादुर्भाव कैसे होता है, जड़ से चेतन पुरुष को किस प्रकार भिन्न समझकर कैवल्य प्राप्त करना, यह वर्णन अत्यंत गंभीर और संग्रह करने योग्य है । पंचीकरण का कुछ प्रसंग कहकर चारों अवस्थाओं का भेद बताया गया है और उनके सम्यक् ज्ञान से निज स्वरूप जानने की सूक्ष्म विधि बताई गई है ।

पंचमोल्लास में—अद्वैत ब्रह्म वर्णन का प्रकार है । चारों अवस्थाओं से परे तुरियातीत का जो संकेत सांख्य के अंग में दिया उस ही के संबंध से प्राग्भावादि चार अभावों का दिग्दर्शन कर अत्यन्ताभाव द्वारा निर्गुण निराकार शुद्ध चेतन का स्वरूप वा लक्षण बताने की चेष्टा की गई है । 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्य की यथार्थता और वैदिक 'नेति नेति' का सार बताते हुए निरुपाधि जीव कैसे शुद्ध ब्रह्म है, और उस अवस्था की प्राप्ति में कैसा वैलक्षण्य है, और मोक्ष का वास्तविक स्वरूप क्या है, इत्यादि बातें बड़े चमत्कार से बताई गई हैं । यह उल्लास पाँचों में अत्यंत श्रेष्ठ है ।

इस प्रकार एक ही ग्रंथ में अनेक उपयोगी विषय, गीता आदि ग्रंथों की भाँति, मनुष्य के कल्याण के अर्थ एकत्रित किए हुए हैं। इस ज्ञानसमुद्र की रचना के विषय में दो एक कथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनसे स्वामीजी की बुद्धि की प्रबलता और उनके पूरे महात्मा होने का परिचय मिलता है। यह अन्य कई एक ग्रंथों से पीछे अर्थात् संवत् १७१० में बना है, तब भी इसकी उत्तमता और उपयोगिता के कारण स्वयं स्वामीजी ने अपने समग्र ग्रंथों में इसको प्रथम रखा है।

(२) “सवैया” (सुंदरविलास)

यद्यपि अपने संग्रह में “ज्ञानसमुद्र” ही को स्वामीजी ने प्रथम स्थान दिया है, तथापि रचना और विषयनिरूपण आदि गुणों और भाषा तथा अन्य गुणों के विचार से प्रतीत होता है कि सुंदरदासजी की समस्त रचनाओं में “सवैया” ही मूर्द्धन्य है। इसको छापे की पुस्तकों में “सुंदरविलास” ऐसा नाम दिया है। यह नाम ग्रंथकर्त्ता का तो दिया हुआ है नहीं पीछे से किसी विद्वान् ने ऐसा नामकरण कर दिया होगा। लिखित पुस्तकों में सर्वत्र “सवैया” नाम और मुद्रितों में सर्वत्र (एक दो को छोड़कर) “सुंदरविलास” नाम मिलता है।

सवैया छंद के अनेक भेद हैं। उनमें इंदव (मत्तगयंद) आदि समध्वनि प्रतीत होने से तथा सुंदरदासजी के समय में ऐसे छंदों का अधिक प्रचार होने से और उनको इसकी रचना अधिक प्रिय होने से इसी की अधिक रचना हुई है और

इसही में अपने उत्तमोत्तम विचारों का उत्तमोत्तम रीति से उन्होंने वर्णन किया है और यही ग्रंथ का नाम भी (“सवैया”) रखा है । वास्तव में इस ग्रंथ के सबही छंद “सवैया” (और उसके भेद) नहीं हैं वरन् वे अन्य जाति के भी हैं । किसी किसी के मत से ‘सवैया’ नाम सवाया $1\frac{1}{8}$ का वाचक है अर्थात् लोग अंत्य-चरणार्द्ध को छंद से पूर्व बोलते हैं । सुंदरदासजी के सवैयाे प्रायः इसही प्रकार से बोलने में आते हैं । यथा “दादूदयाल को हूँ नित चरो” “गुरु विन ज्ञान जैसे अँधेरे में आरसी” ये चतुर्थ पाद के आधे हैं तब भी छंद के पूर्व लगाकर बोले जाते हैं । लिखित और कई मुद्रित पुस्तकों में प्रायः यही क्रम है । परंतु हमने कहीं कहीं इसे दिया है ।

इस ग्रंथ में ३४ अंग वा अध्याय हैं जिनमें वेदांत, सांख्य, भक्ति, योग, उपदेश, नीति आदि के परिष्कृत विचारों को ‘सुलभ’ ‘साधु भाषा’ में बड़े मनोहर चातुर्य से दिया गया है । रचना इसकी वा इसके किसी अंग की एककालीन नहीं है वरन विविध प्रकार से और विभिन्न अवसरों पर हुई प्रतीत होती है । आशय और अर्थ के विचार से प्रायः छंद ‘दादू-दयाल’ की ‘वाणी’ के अनुकरण हैं, मानों उसकी टीका ही हैं । वेदांत के अति गूढ़ रहस्यों से लगाकर साधारण बातों तक को इसमें लाया गया है । अत्यंत दुरूह विषयों को अति ललित बोलचाल की भाषा में बाँधा गया है । यही सुंदरदासजी की दक्षता और काव्यकुशलता का एक प्रबल

प्रमाण है। यद्यपि इसमें शांतरस प्रधान है तो भी अन्य रसों की छाया दीख जाती है। ऐसा कोई सा ही छंद होगा जिसके पढ़ने से प्रसाद गुण का आस्वाद न मिलता हो और उसमें स्वामीजी की मंद मुसक्यान न झलकती हो। विचार को ऐसा वाणी-वेष दिया गया है कि छंदों को पढ़ते ही तात्पर्य मानो रूप धारण किए सामने खड़ा हो जाता है। -

सुंदरदासजी के अन्य प्रंथा की अपेक्षा इस सुंदर-विलास में धर्म, नीति, उपदेश, प्रस्ताविक बातें भी बड़े मारके की मिलती हैं और यह इंध सुरम्य और रंजनकर्त्ता है जिसको पढ़ते पढ़ते चित्त नहीं अघाता।

इस 'सार' में पाठ वही रखा गया है जो असल प्राचीन लिखित पुस्तक में था। हमारी समझ में पुरानी चाल की हिंदी को ही नहीं उसकी लिखावट के नमूनों को भी ज्यों का त्यों रखना ही पुरातत्व के सिद्धांत के अनुसार है। हमने उसे निबाहने का प्रयत्न किया है। आशा है इसको पाठक अनुचित न कहेंगे। चित्रकाव्यों में से केवल दो ही छंद चित्रों सहित और विपर्यय अंग में से चार छंद ही टीका सहित लिए गए हैं।

सुंदरदासजी की भाषा की "भूमि" तो ब्रजभाषा है, पर उसमें खड़ी बोली और रजवाड़ो का मेल है। हमारी जान में इनकी भाषा अन्य कवियों से, आजकल की दृष्टि से देखें तो, बहुत शुद्ध और स्फीत तथा 'बा-मुहाविरे' है। इस हिसाब से भी सुंदरदासजी बहुत से कवियों से बढ़ चढ़कर हैं और

इनकी भाषा की उत्कृष्टता भी इनकी ख्याति और लोकप्रियता का एक दृढ़ कारण है ।

अब हम ग्रंथकर्ता का संक्षिप्त जीवनवृत्तांत (अपने संग्रह के आधार पर) देने से पहले इतना ही कह देना अलम् समझते हैं कि इनके संबंध में जितना कुछ लोगों ने लिखा है उसमें अनेक बातें भ्रममूलक हैं । औरों की तो क्या चलाई जाय “मिश्रबंधुविनोद” तक में सुंदरदासजी को “दूसर” लिखा है और उसमें इनके ग्रंथों के नामों को बहुत गड़बड़ कर दिया है । देखो “विनोद” प्रथम भाग पृष्ठ ४१४—१५ । कदाचित् “विनोद” के कर्ताओं को इनके ग्रंथ सांगोपांग संपूर्ण नहीं मिले इससे वे उनका न तो यथार्थ स्वरूपज्ञान ही बता सके और न ठीक पर्यालोचना कर समालोचना की कसौटी पर लीक लगा सकें । आश्चर्य है कि इतने बड़े महात्मा और कवि को “तोष” की श्रेणी में रखने ही को उन्होंने बहुत समझा । हम यहाँ इसका कुछ विस्तार न कर इतना ही कहेंगे कि इनका स्थान सूरदास, तुलसीदास और कबीर के पीछे वेदांत और शांत रस के उत्कृष्ट कवियों में सर्वोच्च कहना उचित है ।

संक्षिप्त जीवनी

सुंदरदासजी का जन्म विक्रमी संवत् १६५३ में, चैत्र शुक्ल नवमी को घोसा* नगरी में हुआ था । इनके पिता

* घोसा राज्य जयपुर की आमेर से भी पहले की राजधानी है । यह

साह 'परमानंद' 'बूसर' गोती खंडेलवाल महाजन थे, इनकी माता 'सती देवी' आमेर* के 'सेकिया' गोत के खंडेलवालों की बेटी थीं। इनके जन्म के संबंध में एक कथा प्रसिद्ध है। दादूजी जब आमेर में विराजते थे तो एक दिन उनका एक प्रिय शिष्य 'जग्गा' रोटी और सूत माँगने को शहर में गया था, और फकीरी बड़ हाँकता था कि 'दे माई सूत ले माई पूत'। 'लड़की सती' घर में सूत कात रही थी। फकीर की यह बोली सुन कुतूहल वश सूत की कुकड़ी ले कहने लगी 'लो बाबा जी सूत' तो साधु ने कुकड़ी लेकर उत्तर में कह दिया 'हो माई तेरे पूत' और वह आश्रम को लौट आया। दादूजी ने यह बात समाधि में जान ली। जग्गा को आते ही कहा—भाई तुम ठगा आए। जिसके भाग्य में पुत्र न था, उसको पुत्र का वचन दे आए। अब वचन सत्य करने को जाओ। जग्गा के होश उड़ गए। उसने कहा जो आज्ञा, परंतु चरणों ही में आया रहूँ। दादूजी ने कहा ऐसा ही होगा। लड़की के घरवालों को कह आओ कि जहाँ इसका विवाह हो कह दे कि इसके एक पुत्र होगा जो ज्ञानी और

शहर जयपुर से पूर्व दिशा में १६ कोस पर है। रेल का स्टेशन और निजामत भी इसी नाम की हैं।

* आमेर—प्रसिद्ध पुरानी राजधानी। जयपुर शहर से ४ कोस उत्तर को। यहाँ मावठा तालाब के पास दादूजी का स्थान भी अद्यापि है।

पंडित होगा परंतु वह बालपन ही में वैरागी हो जायगा । जग्गा ने ऐसा ही किया । लड़की सती के विवाह के कई वर्ष पीछे जग्गा ने शरीर त्याग दिया । द्यौसा में परमानंद के घर पुत्र-जन्म का आनंद हुआ । इस पुत्र के होने का वरदान स्वयं दादूजी ने भी प्रथम बार, जब वे द्यौसा पधारे थे, परमानंद और सती को दिया था और वही बात कह दी थी जो जग्गा के हाथ पहले सती के घरवालों को आमेर में कहलाई थी । इन बातों का उल्लेख राघवदासजी ने अपने भक्तमाल में भी किया है—

“दिवसा है नम्र चोषा बूसर है साहूकार ,
 सुंदर जनम लिथौ ताही घर आइकै ।
 पुत्र की है चाहि पति दई है जनाइ त्रिया ,
 कह्यो समझाइ स्वामी कहैं सुखदाइकै ॥”
 स्वामी मुख कही सुत जनमैगो सही पै ,
 बैराग लोगो वही घर रहै नहि माइ कै ।
 एकादस वरष में त्याग्यौ घर माल सब ,
 वेदांत पुरान सुने बानारसी जाइ कै” ॥ ४२१ ॥

संवत् १६५८ में दादूजी जब दूसरी बार द्यौसा में पधारे तब सुंदरदासजी सात वर्ष के हो गए थे । माता पिता भक्ति-पूर्वक दर्शनों को आए और उन्होंने सुंदरदासजी को उनके चरणों में रख दिया । स्वामीजी ने बालक के सिर पर हाथ रखकर बहुत प्यार से कहा कि ‘सुंदर तू आ गया’ । कोई

कहते हैं स्वामीजी ने कहा यह बालक बड़ा सुंदर है । निदान “सुंदरदास” तब ही से नाम हुआ और वे उसी दिन से दादूजी के शिष्यों में हो गए ।

दादूजी की “जन्म परचयी” में दादूजी के शिष्य जन-गोपाल ने इस प्रसंग को लिखा है—

“पुनि द्योसा महिं कियो प्रबेसू । बेमदास अरु साधो जैसू ॥
बालक सुंदर सेवक छाजू । मथुरा बाई हरि सों काजू ॥”

(विश्राम १४)

स्वयं सुंदरदासजी ने ‘गुरु संप्रदाय’ ग्रंथ में लिखा है—

“दादूजी जब द्योसा आए । बालपने में दर्शन पाए ॥”

संवत् १६६० में दादूजी का ‘नारायण’ ग्राम में परमपद हुआ, उस समय अन्य शिष्यों के साथ सुंदरदासजी भी वहाँ थे । दादूजी के उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र गरीबदासजी ने पिता और गुरु का बड़े समारोह से ‘महोच्छा’ (महोत्सव = नुकता) किया जिसमें सब ही शिष्य सेवक और भक्त व्यवहारी आदि इकट्ठे हुए थे । सुंदरदासजी ने अपनी प्रतिभा का परिचय इस छोटी सी अवस्था में ही दे दिया था । जब सभा एकत्रित हुई तो एक प्रस्ताव पर गरीबदासजी ने सुंदरदासजी की ठठोली की जिसको अपमान समझकर भरी सभा में इस बालकवि ने गरीबदासजी को यह उत्तर सुनाया—

“क्या दुनिया असतूत करैगी क्या दुनिया के रुसे से ।

साहिब सेती रहे सुरषरु आतम बष से ऊसे से ॥

क्या किरपन मँजो की माया नाँव न होय नपूँसे से ।
 कूड़ा बचन जिन्होंने भाष्या बिछो मरै न मूँसे से ॥
 जन सुंदर अलमस्त दिवाना सब्द सुनाया धूँसे से ।
 मानूँ तो मरजाद रहैगी नहिं मानूँ तो धूँसे से ॥”

सुंदरदासजी कुछ दिन चौसा में ही रहे, फिर ‘डोडवाण’ और ‘फतहपुर’ में दादूशिष्य ‘प्रागदास जी बीहाणी’ के पास रहे । उपरांत चौसा आए । चौसा में टहलडोपहाड़ी पर रहने-वाले दादूशिष्य ‘जगजीवणजी’ की सत्संगति से सुंदरदासजी को काशी पढ़ने का चस्का लगा और उनके साथ संवत् १६६३ में (ग्यारह वर्ष की अवस्था में) वे काशी चले गए । काशी में सं० १६८२ तक वे रहे, बीच-बीच में इधर आते भी रहे । काशी में रहकर व्याकरण साहित्यादि पढ़कर सांख्य वेदादि को उन्होंने खूब पढ़ा और वहाँ तथा अन्य स्थानों में रहकर योग पढ़ा और साधन भी किया । परंतु इन्हें काव्य साहित्य का सदा प्रेम बना रहा और बढ़ता रहा । छंद अलंकार रस और काव्य के संस्कृत और हिंदी में भी ग्रंथ उन्होंने पढ़े । तथा देशी विदेशी कवियों से उनका समागम रहा ।

काशी से १६८२ में लौटकर वे जयपुर राज्यांतर्गत उस फतहपुर (शेखावटी) नगर में आए जहाँ उक्त प्रागदासजी रहते थे । यहाँ उन्होंने तप किया, योग का प्रगाढ़ साधन, दादूवाणी के रहस्यों को संप्रह किया जिसकी कथा वे प्रायः किया करते और श्रोताओं को मुग्ध करते रहते थे । यहाँ

पर फतहपुर के नवाब भाषा के कवि और प्रेमी 'अलफखॉ' आदि से समागम होता रहा । ये सुंदरदासजी पर बड़ी श्रद्धा रखते थे और इनसे कई बार करामात के परिचय पा चुके थे ।

फतहपुर के "केजड़ीवाल" गोत के महाजनों ने सुंदरदासजी के निवास के लिये पक्का स्थान और उसके नीचे एक तह-खाना, जिसको गुफा कहते हैं, और आगे एक कूप बना दिया था जो अब तक विद्यमान हैं ।

सुंदरदासजी को पर्यटन से बड़ा प्रेम था । वे कभी फतहपुर में रहते और कभी बाहर फिरा करते और प्रसंग प्रसंग और अवसर अवसर पर छंदरचना और ग्रंथरचना करते रहते । प्रायः समस्त उत्तर भारत और गुजरात, काठियावाड़ और कुछ दक्षिण के विभाग, पंजाब आदि देशों में वे घूमे थे । काशी तो उनका विद्याद्वार ही ठहरा । परिष्कृत हिंदी और पूर्वी भाषा की रचना यहीं के फल हैं । गुजरात में भी वे बहुत रहे थे । गुजराती यहीं उन्होंने सीखी थी । पंजाब में वे कई बार गए और पंजाबी भाषा में उन्होंने छंदरचना तक की । लाहोर में छज्जू भक्त के चौबारे में वे ठहरा करते थे । "कुरसाना" ग्राम आपको बहुत प्रिय था, 'सवैया' की अधिक रचना का यहीं पर होना कहा जाता है । इनके रचे "दशों दिशा के सवैया" पर्यटन का और इनकी शुचिप्रियता और शुद्ध रुचि का दिग्दर्शन कराते हैं, यथा—

(१) पंजाब का—

“हिकक लाहोर दानीर भी उत्तम, हिकलाहोर दा बाग सिराहे”।

(२) गुजरात का—

“आभड छोट अतीत सौ कीजिए बिलाइ रु कूकर चाटत हाँडी”।

(३) मारवाड़ का—

“बिच्छ न नीर न उत्तम चोर, सुदेसन में कत देस है मारु”।

(४) फतेहपुर का—

“फूहड नारि फतेपुर की”।

(५) दक्षिण का—

“राँधत प्याज बिगारत नाज, न आवत लाज करै सब भच्छन”।

(६) पूर्व देश का—

“ब्राह्मण छत्रिय बैस रु सूदर, चारु ही वर्ण के मंछ बधारत”।

(७) मालवा, उत्तराखंड और अपने प्रिय ‘कुरसाने’ ग्राम की तो उन्होंने बड़ी ही प्रशंसा की है। कुरसाना तो इनको अत्यंत प्रिय था, आपने लिखा है—

“पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन देश विदेश फिरे सब जाने”।

केतक द्यौस फतेपुर माहिं सुकेतक द्यौस रहे डिडवाने”॥

केतक द्यौस रहै गुजरात उहाँ हुँ कछु नहिं आन्यौ है ठानें।

सोच विचारि कै सुंदरदास जु याहितैं आन रहे कुरसानें॥”

यात्रा में वे सब प्रकार के मनुष्य और अनेक मतमतांतर-वादियों (वैष्णव, जैन, मुसलमानादि) से संवाद और प्रेमा-लाप किया करते थे। बहुत से विद्वान कवि लोग आपके मित्र और सेवक थे। जहाँ जहाँ दादूजी पधारे थे उन सब

स्थानों की इन्होंने यात्रा की, अपने सब विद्यमान गुरुभाइयों से मिले जिनमें प्रागदासजी, रज्जबजी, मोहनदासजी आदि से इनकी बड़ी प्रीति थी । देशाटन से सुंदरदासजी की जानकारी बहुत बढ़ी थी और उनकी ग्रंथ-रचना पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा था । जो ओजस्विता, उदारता, उच्चता, क्षमता और स्पष्टता उनके लेख में है वह इस यात्रा और संसार के ज्ञान से सब अधिक हुई थी ।

संवत् १६८८ में प्रागदासजी का परलोकवास हुआ । उसके पीछे सुंदरदासजी का चित्त फतहपुर में अधिक नहीं लगा । प्रायः बाहर 'रामत' करने को वे चले जाया करते थे । कभी कुरसाने, कभी 'मोराँ,' कभी आमेर, कभी साँगानेर में, कभी और कहीं, समय समय पर ग्रंथ रचते रहे । सं० १६८१ में 'पंचेंद्रिय चरित्र' और सं० १७१० में 'ज्ञान-समुद्र' समाप्त हुआ । अन्य ग्रंथों में रचना काल नहीं लिखा, इससे रचना का समय निश्चित नहीं होता । परंतु सुंदरदासजी की रचना कभी थकी नहीं, यों तो अंत समय तक छंद कहते रहे परंतु यह निश्चय है कि सं० १७४३ के पीछे किसी ग्रंथ की तो रचना हुई नहीं यों प्रस्ताव वश वे कुछ कुछ बनाते रहे । सं० १७४३ से पहले अपने रचित ग्रंथों का संग्रह अपने सामने उन्होंने कर लिया था, जिनका क्रम उनके सामने लिखाई पुस्तक के अनुसार वही है जो इस "सार" में है, तथा उनके समग्र ग्रंथों के संपादन में हमने रखा है ।

अपने रचित ग्रंथों के संग्रह की प्रतियाँ लिखवा लिखवाकर अपने शिष्य और मित्रों को वे दिया करते थे । इनके जीवन-काल में ही इनकी ख्याति बहुत हो चुकी थी ।

अंतावस्था

संवत् १७४४ के लगभग सुंदरदासजी फतहपुर में प्रायः रहे । सं० १७४५ के पीछे 'रामत' करते हुए साँगानेर गए (जो जयपुर से ४ कोस दक्षिण की ओर नदी किनारे छोटा सा सुंदर नगर है) । यहाँ दादूशिष्य 'रज्जबजी' तथा उनके शिष्य 'मोहनजी' आदि से सत्संग रहा करता था । परंतु यहाँ सुंदरदासजी ऐसे रुग्ण हुए कि अंततो गत्वा उनका परम-पद यहीं कार्तिक सुदि ८ सं० १७४६ में हुआ । अंत समय में ये साखियाँ आपने उच्चारण की थीं—

“मान लिए अंतःकरण जे इंद्रिनि के भोग ।

सुंदर न्यारौ आतमा लग्यौ देह कौं रोग ॥ १ ॥

वैद्य हमारे रामजी औषधि हू हरि नाम ।

सुंदर यहै उपाय अब सुमरण आठौं जाम ॥ २ ॥

सुंदर संशय को नहीं बड़ौं महुच्छव एह ।

आतम परमातम मिल्यौ रहो कि बिनसौ देह ॥ ३ ॥

सात वरष सौ में घटै इतने दिन की देह ।

सुंदर आतम अमर है देह पेह की पेह ॥ ४ ॥”

इनकी समाधि साँगानेर में 'धाभाई जी के बाग' से उत्तर की ओर है । एक छोटी सी गुमटी में सफेद पत्थर पर इनके

और इनके छोटे शिष्य नारायणदासजी के चरणचिह्न और यह चौपाई खुदी हुई है—

“संवत् सत्रासै छीआला । कातिक सुदी अष्टमी उजाला ॥
तीजे पहर भरसपति बार । सुंदर मिलिया सुंदर सार ॥”

शिष्य और थाँभा .

सुंदरदासजी दादूदयाल के सबसे पिछले और अल्पवयस्क शिष्य थे परंतु कीर्ति में सबसे बड़े और सबसे पहले । दादूजी की बाबत शिष्यों ने (जिनमें सुंदरदासजी एक हैं) अपने थाँभा स्थापन किया, वाणियाँ बनाईं और शिष्य भी किए । सुंदरदासजी अधिकतर फतहपुर में रहे, और यहाँ इनका मकान आदि भी रहा, इस कारण यहाँ इनका प्रधान थाँभा गिना जाता है, और इसही से वे सुंदरदास “फतह-पुरिया” भी कहलाते हैं । इनका नाम “प्रणाली” में इस प्रकार लिखा है ।

“बीहाणी पिरागदास डीडवाणों है प्रसिद्ध ।

सुंदरदास बूसर सु फतेपुर गाजही ॥”

और राघवीय भक्तमाल में भी—

“प्रथम गरीब मिसकीन बाई द्वै सुंदरदासा”

दादूजी के ‘सुंदरदास’ नामी दो शिष्य थे । बड़े तो बीकानेर राज्यघराने के थे जिनकी संप्रदाय में नागा जमात है और दूसरे हमारे इस चरित्र के नायक हैं । सुंदरदासजी के अनेक शिष्यों में पाँच प्रधान और स्थानधारी हुए ।

यथा—“बूसर सुंदरदास के शिष्य पाँच प्रसिद्ध हैं ।” (राघव-भक्तमाल) ।

टिकैत दयालदास १ । श्यामदास २ । दामोदरदास ३ । निर्मलदास ४ । नारायणदास ५ । इनमें से नारायणदास सं० १७३८ ही में रामशरण हो गए थे, और इनके शिष्य रामदास को फतेहपुर का स्थान मिला । शेष ४ अन्य स्थानों में जा बसे ।

सुंदरदासजी के स्मारक चिह्न

सुंदरदासजी के हाथ की लिखी वा लिखाई पुस्तकें उनके थाँभाधारियों के पास विद्यमान हैं । उनकी समाधि साँगानेर में है । उनके स्थान, गुफा और कूप फतेहपुर में हैं । उनके पलँग, चादर, टोपा, रुमाल आदि अनेक पदार्थ भी विद्यमान हैं तथा उनके चित्र भी रचित हैं ।

ज्ञान और साहित्य में सुंदरदासजी का स्थान

वेदांत विद्या, भक्तिमय ज्ञान को सुमधुर सरल और उच्च-काव्य में नाना प्रकार से रचना करने और अद्वैत ब्रह्म-विद्या के प्रचार करने और पहुँचवाने होने के कारण दादूपंथियों ने इनको “द्वितीय शंकराचार्य” करके कहा है—

“संकराचार्य दूसरौ दादू के सुंदर भयो” (राघवीय भक्तमाल)

दादूजी के शिष्यों में इस उत्कृष्ट रीति की कविता करने-वाला ज्ञानी दूसरा नहीं हुआ । यों तो शेष ५ शिष्यों ने

उत्तम उत्तम रचनाएँ की हैं परंतु सुंदरदासजी सर्व सम्मति से सर्वोत्तम माने जाते हैं* ।

विचारने की बात है कि भाषा साहित्य में सूरदास तुलसी-दास आदि के पीछे पराभक्ति और अद्वैत ज्ञान का कवि सुंदरदासजी के पल्ले का कौन सा है ? नाना प्रकार के काव्य भेदों में इस ढंग की ईश्वर संबंधी रचना किसने की ? यह विषय साहित्यपारंगत और वेदांत और भक्ति मार्गगामियों को विचारणीय है । और वह समय निकट है कि जब सुंदरदासजी का साहित्य में यह स्थान विद्वान् स्वयं निश्चित करेंगे ।

जयपुर । मार्गशीर्ष १५ }
संवत् १९७२ वि० }

विनीत संग्रहकर्ता
पुरोहित हरिनारायण

* इस ग्रंथ के आदि में स्वामी सुंदरदासजी के चित्र का फोटो है । जिससे यह लिया गया वह 'मोर' नामी ग्राम के साधुओं से, जो सुंदरदासजी के धाम के हैं, प्राप्त हुआ था । यह 'मोर' ग्राम राज्य जयपुर के जिले मालपुर में है और वहाँ वे साधु रहा करते हैं । हमारा स्वर्गवासी मित्र लाला आनंदीलालजी दूरी राजमहलवालों की कृपा से चित्र मिला था ।

सूचीपत्र

(१) अथ ज्ञानसमुद्र-सार—१ गुरु-शिष्य-लक्षण-
निरूपण, २ भक्ति-निरूपण, ३ अष्टांगयोग-निरूपण, ४ सांख्य-
निरूपण, ५ अद्वैत निरूपण... .. १-४७

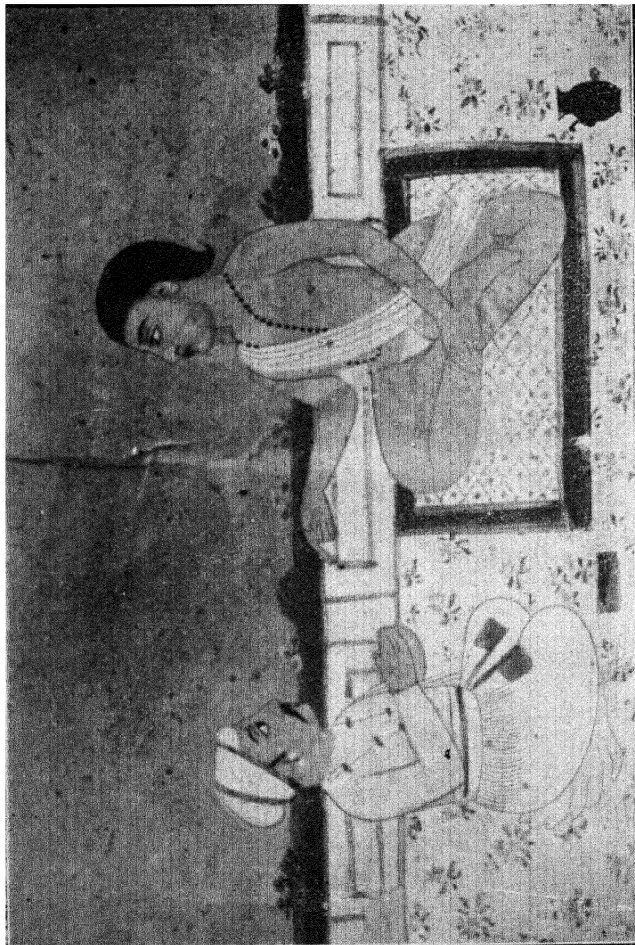
(२) अथ लघु ग्रंथावली—१ सर्वांगयोग ग्रंथ,
२ पंचेंद्रियचरित्र ग्रंथ, ३ सुखसमाधि ग्रंथ, ४ स्वप्नप्रबोध ग्रंथ,
५ वेदविचार ग्रंथ, ६ उक्त अनूप ग्रंथ, ७ अद्भुत उपदेश
ग्रंथ, ८ पंच प्रभाव ग्रंथ, ९ गुरु संप्रदाय ग्रंथ, १० गुन
उत्पत्ति नीसानी ग्रंथ, ११ सद्गुरु महिमा नीसानी ग्रंथ,
१२ बावनी ग्रंथ, १३ गुरुदया षट्पदी ग्रंथ, १४ भ्रम-
विध्वंस अष्टक, १५ गुरुकृपा अष्टक, १६ गुरुउपदेश
अष्टक, १७ गुरुदेव महिमा स्तोत्र अष्टक, १८ रामजी
अष्टक, १९ नामाष्टक, २० आत्मा अचल अष्टक, २१
पंजाबी भाषा अष्टक, २२ ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, २३ पीर-
मुरीद अष्टक, २४ अजब ख्याल अष्टक, २५ ज्ञानभूतना
अष्टक, २६ सहजानंद ग्रंथ, २७ गृह वैराग बोध ग्रंथ,
२८ हरिबोल चितावनी ग्रंथ, २९ तर्क चितावनी ग्रंथ, ३०
विवेक चितावनी ग्रंथ, ३१ पवंगम छंद, ३२ अडिल्ला
छंद, ३३ मडिल्ला छंद ग्रंथ, ३४ बारह मासिया

ग्रंथ, ३५ आयुर्वल भेद आत्मा विचार ग्रंथ, ३६ त्रिविध
अंतःकर्ण भेद ग्रंथ, ३७ पूर्वी भाषा बरवै, ३८ फुटकर
काव्य सार... .. ४८-१४५

(३) सुंदर विलास—१ गुरुदेव को अंग, २
उपदेश चितावनी को अंग, ३ काल चितावनी को अंग,
४ देहात्मा विछोह को अंग, ५ तृष्णा को अंग,
६ अधोर्य उराहने को अंग, ७ विश्वास को अंग, ८ देह-
मलिनता गर्वप्रहार को अंग, ९ नारीनिंदा को अंग, १०
दुष्ट को अंग, ११ मन को अंग, १२ चाणक को अंग,
१३ विपरीत ज्ञानी को अंग, १४ वचन विवेक को अंग,
१५ निर्गुन उपासना को अंग, १६ पतिव्रत को अंग, १७
विरहिनि उराहने को अंग, १८ शब्द सार को अंग, १९
सूरातन को अंग, २० साधु को अंग, २१ भक्ति-ज्ञान-
मिश्रित को अंग, २२ विपर्यय शब्द को अंग, २३ आपुने
भाव को अंग, २४ स्वरूप विस्मरण को अंग, २५ सांख्य
ज्ञान को अंग, २६ विचार को अंग, २७ ब्रह्म निःक-
लंक को अंग, २८ आत्मा अनुभव को अंग, २९ ज्ञानी
को अंग, ३० निःसंशय को अंग, ३१ प्रेमपरा ज्ञान ज्ञानी
को अंग, ३२ अद्वैत ज्ञान को अंग, ३३ जगन्मिथ्या को
अंग, ३४ आश्चर्य को अंग १४६-२५३

(४) साखी—१ गुरुदेव को अंग, २ सुमरण को
अंग, ३ विरह को अंग, ४ बंदगी को अंग, ५ पतिव्रत

को अंग, ६ उपदेश चितावनी को अंग, ७ काल चिता-				
वनी को अंग, ८ नारी पुरुष श्लेष को अंग, ९ देहात्म				
विछोह को अंग, १० तृष्णा को अंग, ११ अधीर्य उराहने				
को अंग, १२ विश्वास को अंग, १३ देह मलिनता गर्व				
प्रहार को अंग, १४ दुष्ट को अंग, १५ मन को अंग,				
१६ चाणक को अंग, १७ वचन विवेक को अंग, १८ सूरा-				
तन को अंग, १९ साधु को अंग, २० विपर्यय को अंग,				
२१ समर्थाई आश्चर्य को अंग, २२ अपने भाव को अंग,				
२३ स्वरूप विस्मरण को अंग, २४ सांख्य ज्ञान को अंग,				
२५ अवस्था को अंग, २६ विचार को अंग, २७ अक्षर				
विचार को अंग, २८ आत्मानुभव को अंग, २९				
अद्वैत ज्ञान को अंग, ३० ज्ञानी को अंग, ३१ अन्योन्य				
भेद को अंग	...	...	...	...२५४—२७२
(५) पदसार	...	...	...	...२७३—२८५



कविवर श्रीस्वामी सुंदरदास जी ।

सुंदरसार



(१) अथ ज्ञानसमुद्र-सार

[नोट—ग्रंथकर्ता श्री स्वामी सुंदरदासजी अद्वैत निर्गुण-मार्गियों की शैली से आदि में मंगलाचरण करके ग्रंथ के विषय प्रयोजन आदि को बताते हैं और ग्रंथनाम की सार्थकता समुद्र के रूपक से, निवाहते हैं । इस ज्ञानसमुद्र की भूमिका-संबंधिनी कुछ बातें पूर्व में ग्रंथ-भूमिका में लिख आए हैं सो उन्हें वहाँ देखना चाहिए । ग्रंथ के प्रारंभिक उपयोगी छंद यहाँ लिखे जाते हैं]

(१) गुरु-शिष्य-लक्षण-निरूपण

मंगलाचरण । छप्पय छंद

प्रथम वंदि^१ परब्रह्म परम आनंद स्वरूपं^२ ।

दुतिय वंदि गुरुदेव दियौ जिहि^३ ज्ञान अनूपं ॥

त्रितिय वंदि सब संत जोरि कर तिनके आगय^४ ।

मन वच काम प्रणाम करत भय भ्रम सब भागय ॥

१-वंदना अर्थात् नमस्कार करके । २-संस्कृत रीति से द्वितीया वा कर्म विभक्ति का प्रयोग केवल छंद की सुमिष्टता बढ़ाने को है, कुछ 'अनूप' के साथ अनुप्रास के लिये नहीं । ३-जिसने । ४-आगे ।

इहिं भाँति मंगलाचरण करि सुंदर ग्रंथ बखानिए ।

तहँ विघ्न न कोऊ उप्पजय यह निश्चय करि मानिए ॥ १ ॥

[तीन को नमस्कार करने में अद्वैतपक्ष से प्रतिकूलता प्रतीत होती है । इसी लिये ग्रंथकर्त्ता इस दोष के परिहार निमित्त स्पष्टीकरण देते हैं ।]

दोहा छंद

ब्रह्म प्रणम्य^१ प्रणम्य गुरु पुनि प्रणम्य सब संत ।

करत मंगलाचरण इम^२ नाशत विघ्न अनंत ॥ २ ॥

उहै^३ ब्रह्म गुरु संत उह वस्तु विराजत येक^४ ।

वचन विलास विभाग त्रय वंदन भाव विवेक^५ ॥ ३ ॥

[अब ग्रंथारंभ में ग्रंथ रचने की इच्छा और अपना विनय प्रगट करते हैं ।]

दोहा छंद

वरन्यौं चाहत ग्रंथ कौं कहा बुद्धि मम क्षुद्र ।

अति अगाध मुनि कहत हैं सुंदर ज्ञानसमुद्र^६ ॥ ४ ॥

१-प्रणाम करके । २-इस प्रकार । ३-वही । ४-एक—अभेद ज्ञान से, अथवा गुरु और संत भी ब्रह्मरूप हैं, अथवा सिद्धांत में गुरुवेद भी मिथ्या है केवल ब्रह्म ही सत्य है इस विचार से एकत्व का कथन उपयुक्त है । ५-विचार, कहने मात्र में तीन भिन्न भिन्न पदार्थ हैं परंतु विवेक दृष्टि से भावना अद्वैत ब्रह्म ही की होती है अर्थात् ब्रह्म जो अपना आत्मा है, उसी को नमस्कार होता है । ६-यह उक्ति 'रघुवंश' के 'बड़े सूर्यप्रभवो वंशः' इत्यादि का स्मरण दिलाती है—ज्ञान की समुद्र से तुलना, उसकी अगाधता, रत्नवत्ता आदि हेतुओं से दी गई है ।

(३)

चौपाई छंद

ज्ञान-समुद्र ग्रंथ अब भार्षी ।
बहुत भाँति मन महि अभिलाषी ॥
यथाशक्ति हौं वरनि सुनाऊँ ।
जो सद्गुरु पहिं आज्ञा पाऊँ ॥ ५ ॥

सोरठा छंद

है यह अति गंभीर^२ उठत लहरि^३ आनंद की ।
मिष्ट सुयाको^४ नीर सकल पदार्थ^५ मध्य है ॥ ६ ॥

इंदव छंद

जाति जिती^६ सब^७ छंदनि की बहु सीप भई इहिं सागर माहीं ।
है तिनमें मुक्ताफल अर्थ, लहै उनकौं हित सौं अवगार्हीं ॥

१-पाता हूँ । 'जो' इस शब्द का अर्थ 'जो कुछ' 'जैसी कि' ऐसा होना उचित है, इसका अर्थ 'यदि' ऐसा नहीं करना चाहिए । २-गहरा । अंतर्गत वर्णित विषयों से तथा अगाध होने से । ३-समुद्र में लहरें (हिलोरे) भी होनी चाहिएँ सो इस ज्ञानसमुद्र में आनंद ही की लहरें हैं । इसी से विभागों का उल्लास नाम दिया है । ४-मीठा । पृथ्वी के समुद्र का जल तो खारा होता है । इस समुद्र में विशेषता वा अधिकता वा उत्कृष्टता यह है कि जल इसका मीठा (अर्थात् अमृत) है । ज्ञान को अमृत की उपमा भी दी जाती है । ५-सारे । सिद्धांत में ज्ञान से बाहर कोई भी चिंतनीय पदार्थ नहीं है । कथा-प्रसिद्ध समुद्र-मथन में कतिपय पदार्थ ही मिलना संभव हुआ, इस ज्ञान के समुद्र-मथन से यावन्मात्र पदार्थों की प्राप्ति होती है, यह विशेषता है । ६-जितनी । ७-'सब' शब्द से बहुत का अर्थ लेना । जो प्रशस्त वा विख्यात छंद हैं उनमें से प्रायः सब । ८-पैरे अर्थात् मनन करे ।

सुंदर पैठि सकै नहिं जीवत दै डुबकी^१ मरिजीवहिं^२ जाहीं।

जे नर जान कहावत हैं, अति गर्व भरे तिनकी गम नाहीं ॥ ७ ॥

[ग्रंथ की सार्थकता कहकर उसके अधिकारी का लक्षण कहते हैं ।]

जिज्ञासु लक्षण । सर्वैया छंद ।

जे गुरुभक्त विरक्त जगत सौं है जिनकै संतनि कौ भाव ।

वै यज्ञास उदास रहत हैं गनत न कोऊ रंक न राव ॥

वाद विवाद करत नहिं कबहुँ वस्तु जानिबे कौ अति चाव ।

सुंदर जिनकी मति है ऐसी ते पैठहिंगे या दरियाव ॥ ८ ॥

छप्पय छंद

सुत कलत्र निज देह आपुकों बंधन जानत ।

छूटौ कौन उपाय इहै उर अंतर आनत ॥

जन्म मरन की शंक रहै निसि दिन मन माहीं ।

चतुराशी के दुःख नहीं कछु बरने जाहीं ॥

इहि भांति रहै सोचत सदा संतनि को पूछत फिरै ।

को है ऐसो सद्गुरु कहीं जो मेरौ कारज करै ॥ ९ ॥

[जिज्ञासु ज्ञानप्राप्ति के निमित्त सद्गुरु को खोजता है । यह कहकर गुरु की उपयोगिता और आवश्यकता चौपट्या छंद में कहते हैं कि सीधा रास्ता गुरु बिना नहीं मिलता है न भक्ति मिलती, न संशय मिटता और न ज्ञान की प्राप्ति होती । अंततोगत्वा सद्गति की प्राप्ति भी गुरु पर निर्भर है । इसी को त्रोटक छंद करके भी कहा है । फिर उसी का सार मनहर छंद से बताते हैं ।]

१-चुबकी, गोता । २-गोताखोर-“मुरजीवा” की नाईं प्रथम मरण मांडे फिर जीवे ।

मनहर छंद

गुरु के प्रसाद^१ बुद्धि उत्तम दिशा को ग्रहे^२ ।

गुरु के प्रसाद भव दुःख विसराइए ॥

गुरु के प्रसाद प्रेम प्राप्ति हू अधिक बाढ़ै ।

गुरु के प्रसाद रामनाम गुन गाइए ॥

गुरु के प्रसाद सब योग की युगति^३ जाने ।

गुरु के प्रसाद शून्य^४ में समाधि लाइए ॥

सुंदर कहत गुरुदेव जो कृपाल होहिं ।

तिनके प्रसाद तत्त्वज्ञान^५ पुनि पाइए ॥ १२ ॥

[इसी को दोहा छंद में साररूप और ज्ञानप्रकाश को सूर्यवत् गुरु को निमित्त कहकर अब गुरु के लक्षण बताते हैं कि गुरु कैसे होने चाहिएँ ।]

गुरु-लक्षण । रोला छंद

चित्त ब्रह्म लयलीन नित्य शीतल हि सुहिर्दय^६ ।

क्रोधरहित सब साधि^७ साधुपद^८ नाहिं निर्दय^९ ॥

अहंकार नहिं लेश महान^{१०} सबनि सुख दिजय ।

शिष्य परण्य^{११} विचारि जगत महिं सो गुरु किजय ॥ १४ ॥

१-प्रसन्नता, कृपा । २-दिशा = गति । ग्रहे = ग्रहण करे । ३-युक्ति, कुंजी, क्रिया । ४-निर्विकल्प समाधि । ५-तत्त्वज्ञान—शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति । ६-हृदय । ७-साधन वा कर्म करके । ८-साधु के पद वा स्थान (दरजा—कक्षा) के अर्थ गुणसमूह । नाहिं 'साधुपद' के साथ लगाने से—साधु के योग्य वा अर्थ कर्मशेष नहीं रहा । अथवा 'नाहिं' एक रखे तो 'कदापि नहीं' ऐसा अर्थ । ९-अत्यंत दयामय । १०-महान सुख सबको दीजे (देवे) । ११-गरखकर । परीक्षा कर ।

छप्पय छंद

सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय ।
 तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ^१ विराजय ॥
 सुखनिधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै ।
 सारासार विवेक सकल मिथ्या भ्रम भानै^२ ॥
 पुनि भिद्यंते हृदि ग्रंथि कौं छिद्यंते^३ सब संशय ।
 कहि सुंदर सो सद्गुरु सही चिदानंदधन चिन्मयं^४ ॥ १५ ॥

पमंगम छंद

शब्द ब्रह्म^५ परब्रह्म^६ भली विधि जानई ।
 पंच तत्व गुन तीन मृषा^७ करि मानई ॥
 बुद्धिमंत सब संत कहैं गुरु सोइ रे ।
 और ठौर शिष जाइ भ्रमैं जिन^८ कोइ रे ॥ १६ ॥

[इसी खोज को नंदा आदि छंदों में पुनः कहकर गुरु की प्राप्ति वर्णन करते हैं । जिज्ञासु को गुरु यथारुचि प्राप्त हो गया तो फूले अंग न समाया । गुरु-दर्शन कर कृतकृत्य हुआ और विनीत भाव से प्रणाम कर उसी आनंद की धुन में प्रार्थना करने लगा ।]

१-“ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः”—गीता । कूटस्थ = निर्लिप्त, अटल । २-किसी किसी पुस्तक में ‘मानै’ पाठ है । भानै = प्रकाश सूर्यसम । ३-संस्कृत के बहुवचन पाठ ही धर दिए हैं । आदर-सूचकता में काटते-मिटते हैं । ४-निरामय-पद-प्राप्ति की अवस्था में शुद्ध चेतन का जो विशेषण सो ही गुरु का लिखा है । ५-वेद शास्त्र । ६-तिर्यगात्मा । ७-मिथ्या । ८-मत ।

शिष्य की प्रार्थना । अर्द्धभुजंगी

अहो देव स्वामी अहं^१ अज्ञ^२ कामी ।
 कृपा मोहि^३ कीजै अभैदान^४ दीजै ॥ १ ॥
 बड़े भाग्य मेरे लहे अंग्रि^५ तेरे ।
 तुम्हें देखि जीजै अभैदान दीजै ॥ २ ॥
 प्रभू हों अनाथा गहौ मोर हाथा ।
 दया क्यों न कीजै अभैदान दीजै ॥ ३ ॥
 दुखी दीन प्राणी कहौ ब्रह्म वाणी ।
 हृदै प्रेम भीजै अभैदान^६ दीजै ॥ ४ ॥
 यती जैन^७ देखे सबै भेष पेष ।
 तुम्हें चित्त धीजै अभैदान दीजै ॥ ५ ॥
 फिरौ देश देशा किये दूरि केशा ।
 नहीं यों पतीजै अभैदान दीजै ॥ ६ ॥
 गयो आयु सारो^८ भयो सोच भारो ।
 वृथा देह छीजै अभैदान दीजै ॥ ७ ॥

१-मैं । २-अज्ञानी, मूर्ख । ३-संस्कृत की 'मम कृपा' का अनु-
 वाद । मोहि = मुझ पै । ४-संशय सागर के जन्ममरण रूपी डर से
 मुक्त कीजिए सो स्वात्मानुभव से प्राप्त होता है । ५-चरण । ६-भीगै ।
 ७-अनीश्वरवादी सांख्य के अनुयायी । यहाँ चोज यह है कि जिज्ञासु
 को सर्व मतांतर का यहाँ तक कि जैन मत तक का देख भाल कर लेनेवाला
 दरसाया है । ८-सर्व । तमाम आयु जाने से यह दरसाया कि शिष्य
 बड़ी उम्र का है, बालक नहीं ।

करो मौज ऐसी रहै बुद्धि वैसी ।

सुधा^१ नित्य पीजै अभैदान दोजै ॥ ८ ॥ २८॥

[शिष्य की इस सच्ची प्रार्थना को सुन, उसकी जिज्ञासा का निश्चय कर जान लिया कि यह अधिकारी है, वे उस पर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे ज्ञानदान का वरदान दिया । शिष्य संतुष्ट हुआ और अब उसने अपने संशय-विपर्यय की निवृत्ति के लिये गुरु से सविनय प्रश्न किए जिनके गुरु ने प्रसन्न हो उत्तर दिए सो ही दिखाते हैं ।]

शिष्य का प्रश्न । पढ़ड़ो छंद

कर जोरि उभय शिष करि प्रणाम ।

तब प्रश्न करी^२ मन धरि विराम^३ ॥

हौं कौन कौन यह जगत आहि^४ ।

पुनि जन्म मरण प्रभु कहहु काहि ॥ ३१ ॥

श्रीगुरुवाच । उत्तर । बोधक छंद

है चिदानंदघन ब्रह्म तूं सोई ।

देह संयोग जीवत्व भ्रम होई ॥

जगत हू सकल यह अनछतौ^५ जानौ ।

जनम अरु मरण सब स्वप्न^६ करि मानौ ॥ ३२ ॥

शिष्य उवाच । गीतक छंद

जो चिदानंद स्वरूप स्वामी ताहि भ्रम कहि क्यों भयो ।

तिहि देह के संयोग हूँ जीवत्व मानिर^७ क्यों लयो ॥

१-ज्ञानरूपी अमृत । २-प्रश्न शब्द को स्त्रीलिंग माना है । ३-धीरज ।

४-है । ५-अन = नहीं, छतौ = होता । ६-प्रतीत होनेवाला, अर्थात् जैसा दीखता है वैसा वास्तव में नहीं है । ७-मानकर । माना ।

यह अनछत्तौ संसार कैसै जो प्रत्यक्ष^१ प्रमानिए ।
पुनि जन्म मरण प्रवाह कबकौ स्वप्न करि क्यों जानिए ॥ ३३ ॥

श्रीगुरुवाच । दोहा छंद
भ्रम ही कौं भ्रम^२ ऊपज्यौ चिदानंद रस एक ।
मृगजल^३ प्रत्यक्ष देखिए तैसे जगत विवेक ॥ ३४ ॥

चौपाई छंद
निद्रा महि सूतौ है जौ लौं । जन्म मरण कौ अंत न तौ लौं ।
जागि परें तें सुप्त^४ समाना । तब मिटि जाइ सकल अज्ञाना ॥ ३५ ॥

शिष्य उवाच । सौरठा छंद
स्वामिन् यह संदेह जागै सोवै कौन सो ।
ये तो जड़ मन देह भ्रम को भ्रम कैसे भयो ॥ ३६ ॥

[जब शिष्य ने बुद्धि की मलिनता के कारण प्रज्ञावाद रूपी प्रश्न किए तो गुरु ने कारण की निवृत्ति के निमित्त प्रथम अंतःकरण के मल-विशेष आवरण दोषों के मिटाने का प्रयोजन यों कहा ।]

श्रीगुरुवाच । कुंडलिया छंद
शिष्य कहाँ लौं पूछि^५ मैं तो उत्तर दीन ।
तब लग चित्त न आइ^६ है जब लग हृदय मलीन ॥

१-प्रत्यक्ष का सुख । २-अविद्याजन्य उपाधि । ३-मृगतृष्णा वस्तुतः कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जैसा दिखता है । विपरीत ज्ञान के रूप में प्रत्यक्ष जल सा दिखाई देता है । ऐसे ही वस्तुतः जगत् है नहीं, परंतु सत्य भासता है । ४-स्वप्न—अथवा अविद्या का लय वा नाश ज्ञानोत्पत्ति से हो जाने पर जगत् स्वप्न सा प्रतीत होगा ।

जब लग हृदय मलीन यथारथ^१ कैसे जानै ।
 भ्रमैं त्रिगुन मय बुद्धि^२ आपु नाहिन पहचानै ॥
 कहिबो सुनबो करौ ज्ञान उपजै न जहाँ लौं ।
 मैं तो उत्तर दियो पूछिहै शिष्य कहा लौं ॥ ३७^३ ॥

(२) भक्ति-निरूपण

[अथ शिष्य मन की शुद्धि के उपाय पूछता है और गुरु उसको बताता है कि इसके तीन उपाय प्रधान हैं—भक्ति, हठयोग और सांख्य ज्ञान । सो इस उल्लास में भक्ति का वर्णन है । शिष्य के फिर पूछने पर गुरु नवधा भक्ति प्रेमलक्षणा पराभक्ति को क्रमशः कहता है ।]

श्रांगुरुवाच । सवैया छंद

प्रथमहि नवधा भक्ति कहत हौं नव प्रकार हैं ताके भेद ।
 दशमी प्रेमलक्षणा कहिए सो पावै जो है निर्वेद ॥
 पराभक्ति है ताके आगै सेवक सेव्य न होइ विछेद ।
 उत्तम मध्य कनिष्ठ तीन विधि सुंदर इनतै मिटिहैं खेद ॥४॥

[इस पर शिष्य ने प्रत्येक भेद को विशेष रूप से सुनने की उत्कंठा प्रगट की । उत्तम मध्यम कनिष्ठ प्रकार की क्या रीति होती है सो पूछा तो गुरु ने कहना प्रारंभ किया ।]

१-पढ़ने में यथारथ ऐसा लिखा गया । २-बुद्धि वा महत्तत्त्व सत्-
 रज-तम से व्याप्त है । देश काल निमित्त के आधार बिना कोई वस्तु
 ज्ञान बुद्धि वा मन में हो नहीं सकता । ३-कुंडलिया के आदि में
 'पूछिहै' पीछे आया है और अंत में पहले ।

श्रीगुरुवाच । चौपाई छंद
 सुनि शिष नउधा भक्ति विधानं ।
 श्रवण कीर्त्तन समरण जानं ॥
 पादसेवनं अर्चन वंदन ।
 दासभाव सख्यत्व समर्पन ॥ ६ ॥

१—श्रवण । चंपक छंद

शिष तोहि कहाँ श्रुति बानी^१ । सब संतनि^२ साखि बखानी ।
 द्वै रूप ब्रह्म के जानै । निर्गुण अरु सगुन पिछानै ॥११॥
 निर्गुन निजरूप नियारा । पुनि सगुन संत अवतारा ।
 निर्गुन की भक्ति सु-मन सौँ । संतनि की मन अरु तन सौँ ॥१२॥

यंकाग्र हि चित्त जु राखै ।
 हरिगुन सुनि सुनि रस चाखै ॥
 पुनि सुनै संत के बैना ।
 यह श्रवण भक्ति मन चैना ॥ १३ ॥

२—कीर्त्तन

हरि गुन रसना^२ मुख गावै ।
 अतिसै करि प्रेम बढ़ावै ॥

१—वेदवाक्य । उपनिषदों में तथा संहिताओं में भी ब्रह्म के सगुण निर्गुण रूप का विचार है । वेदांत में ईश्वर शब्द से सगुण ब्रह्म ही लिया गया है । २—संत शब्द से ऋषि मुनि महात्मा का अर्थ है जिनको ब्रह्मानंद की प्राप्ति हुई और जिन्होंने 'तद्दर्शनात्' ऐसे ऐसे वाक्यों से उसकी पुष्टि की है । साध = साक्षी, प्रमाण वाणी । ३—जिह्वा । मुख कहने से उच्चारण के करण को बलवान् होना जताया है ।

(१२)

यह भक्ति कीर्त्तन कहिये ।
पुनि गुरु प्रसाद तै' लहिये ॥ १४ ॥

३—स्मरण

अब समरन दोइ प्रकारा ।
इक रसना नाम उचारा ॥
इक हृदय नाम ठहरावै ।
यह समरन भक्ति कहावै ॥ १५ ॥

४—पादसेवन

नित चरण कँवल महि लोटै ।
मनसा करि पाव पलोटै ॥
यह भक्ति चरन की सेवा ।
समुभावत है गुरु देवा ॥ १६ ॥

५—अर्चना । गीता छंद

अब अरचना को भेद सुनि शिष देऊँ तोहि बताइ ।
आरोपिकै तहँ भाव^१ अपनौ सेइए मन लाइ ॥
रचि भाव को मंदिर अनूपम अकल मूरति माहिं ।
पुनि भावसिंघासन विराजै भाव बिनु कछु नाहिं ॥ १७ ॥
निज भाव की तहाँ करै पूजा, बैठि सनमुख दास ।
निज भाव की सब सौँज^२ आनै, नित्य स्वामी पास ॥

१—‘भावो हि विद्यते देवाः’ इस प्रमाण से अपने प्रिय इष्ट को अपने मनोराज्य का स्वामी बनाकर अंतःकरण में ध्यान करे । २—सामग्री पूजन की ।

पुनि भाव ही को कलस भरि धरि, भावनीर न्हवाइ ।
 करि भाव ही के बसन बहु विधि, अंग अंग बनाइ ॥ १८ ॥
 तहँ भाव चंदन भाव केसरि भाव करि घसि लेहु ।
 पुनि भाव ही करि चरचि स्वामी तिलक मस्तक देहु ॥
 लै भाव ही के पुष्प उत्तम गुहै माल अनूप ।
 पहिराइ प्रभु कौं निरखि नख सिख भाव पेंवै धूप ॥ १९ ॥
 तहँ भाव ही लै धरै भोजन भाव लावै भोग ।
 पुनि भाव ही करि कैं समर्थैं सकल प्रभु कैं योग ॥
 तहाँ भाव ही कौ जोइ दीपक भाव घृत करि सीचि ।
 तहाँ भाव ही की करै थाली धरै ताके बीचि ॥ २० ॥
 तहाँ भाव ही की घंट झालरि संख ताल मृदंग ।
 तहाँ भाव ही के शब्द नाना रहै अतिसै रंग ॥
 यह भाव ही की आरती करि करै बहुत प्रनाम ।
 तब स्तुति बहु विधि उच्चरै धुनि सहित लै लै नाम^१ ॥ २१ ॥

[यह केवल मानसिक पूजा का विधान लिखा है । क्योंकि कर्मेन्द्रिय से पूजन होता है यह तो प्रसिद्ध ही है । वही विधान मन द्वारा कह दिया गया है । मन की शुद्धि के लिये ही पूजन उपासना रखी गई है । फिर आरती के साथ स्तुत्यष्टक दिया है । उसी का एक छंद लिखते हैं ।]

१--यह जानने की बात है कि दादूजी का अटल सिद्धांत था कि परमात्मा की प्राप्ति बाह्य पदार्थों के विचार से नहीं हो सकती । अपने अंदर ही खोजना चाहिए । इस बात को उन्होंने और उनकी संप्रदाय के महात्माओं ने बड़े बल के साथ प्रतिपादन किया है । इनकी ब्रह्म

अथ स्तुति । मोतीदाम छंद

अहो हरिदेव न जानत सेव । अहो हरिराइ परौ तव पाइ ॥
सुनों यह गाथ गहौ मम हाथ । अनाथअनाथअनाथ अनाथ ॥२२॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

६—वंदना । लीला छंद

वंदन दोई प्रकार कहैं शिष संभलियं^१ ।
दंड समान करै तन सौं तन दंड^२ दियं ॥
त्यों मन सौं तन मध्य प्रभू कर^३ पाइ परै ।
या विधि दोइ प्रकार सुवंदन भक्ति करै ॥ ३१ ॥

७—दास्यत्व । हंसाल छंद

नित्य भय सौं रहे हस्त जोरें कहै ।
कहा प्रभु मोहि आज्ञा सु होई ॥
पलक पतिव्रता पति वचन खंडै नहीं ।
भक्ति दास्यत्व शिष जानि सोई ॥ ३२ ॥

८—सख्यत्व । डुमिला छंद

सुनि शिष्य सखापन तोहि कहों, हरि आतम कै नित संग रहै ।
पल छाड़त नाहिं समीप सदा, जित ही जित को यह जीव वहै ॥
अब तू फिरिकैं हरि सौं हित राखहि, होइ सखा दृढ़ भाव गहै ।
इम सुंदर मित्रन मित्र तजै, यह भक्ति सखापन वेद कहै ॥३३॥

संप्रदाय कहाती है । बाह्य प्रतीक मूर्त्ति आदि के पूजनादि का विधान इनके यहाँ नहीं रखा गया है ।

१-सँहलना । २-दंडवत् साष्टांग करना । ३-कर=के ।

८ आत्मसमर्पण । कुंडली छंद
 प्रथम समर्पन मन करै, दुतिय समर्पन देह ।
 तृतिय समर्पन धन करै, चतुः समर्पन गेह ॥

गेह दारा धन, दास दासी जन ।

वाज हाथी गन, सर्व दै यौ भन ॥

और जे मे मन, है प्रभु ते तन ।

शिष्य बानी सुन, आतमा अर्पन ॥ ३४ ॥^१

[यह नवधा भक्ति का प्रकार हो चुका जिसको कनिष्ठा भी कहते हैं । अब शिष्य के पूछने पर प्रेमलक्षणा वा मध्यमा भक्ति का गुरु वर्णन करते हैं ।]

श्रीगुरुवाच । इंदव छंद
 प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौं तब भूलि ग्यौ सबही घरवारा ।
 ज्यौं उनमत्त फिरै जित ही तित नैंकु रही न शरीर सँभारा ॥
 स्वास उस्वास उठै सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा ।
 सुंदर कौन करै नवधा विधि छाकि पर्यौ रस पी मतवारा ॥ ३८ ॥

नाराय^२ छंद

न लाज कानि लोक की, न वेद कौ कहाँ करै ।

न शंक भूत प्रेत की, न देव यत्त तैं डरै ॥

सुनै न कान और की, दृशै न और अक्षणा^३ ।

कहै न मुख और बात, भक्ति प्रेमलक्षणा ॥ ३९ ॥

१-कुंडलिया छंद से कुछ भेद है । कुंडली में दाहा के पीछे चंदाना छंद आया है जिसको विमोहा कहते हैं । २-नाराच छंद को नाराय लिखा है । ३-आँख से (अक्षिणा तृतीया का रूपांतर) ।

रंगिका छंद

निसि दिन हरि सौं चित्तासक्ति, सदा ठग्यौ सो रहिए ।
कोउ न जानि सकै यह भक्ति, प्रेमलक्षणा कहिए ॥ ४० ॥

विज्जुमाला छंद

प्रेमाधीना छाक्या डोलै । क्यों का क्यों ही बानी बोलै ।
जैसैं गोपी भूली देहा । ताकौं चाहै जासौं नेहा ॥ ४१ ॥

छप्पय छंद

कबहुँ कै हँसि उठै नृत्य करि रोवन लागय ।
कबहुँ गढ़द कंठ शब्द निकसै नहि आगय ॥
कबहुँ हृदय उमंगि बहुत उच्चय सुर गावै ।
कबहुँ कै मुख मौनि मग्न ऐमैं रहि जावै ॥
तौ चित्त वृत्य हरि सौं लगी सावधान कैमैं रहै ।
यह प्रेमलक्षणा भक्ति है शिष्य सुनिहिं सद्गुरु कहै ॥ ४२ ॥

मनहर छंद

नीर बिनु मीन दुखी चीर बिनु शिशु जैसैं ।
पीर में औषध बिनु कैसैं रह्यो जात है ॥
चातक ज्यों स्वाति बूंद चंद कौं चकोर जैसैं ।
चंदन की चाहि करि सर्प अकुलात है ॥
निर्धन ज्यों धन चाहै कामिनी कौं कंत चाहै ।
ऐसी जाकै चाहि ताकौं कछू न सुहात है ॥
प्रेम की प्रभाव ऐसी प्रेम तहाँ नेम कैसो ।
सुंदर कहत यह प्रेम ही की बात है ॥ ४३ ॥

चौपइय। छंद

यह प्रेम भक्ति जाकै घट होई, ताहि कछू न सुहावै ।
पुनि भूष वृषा नहिं लागै वाकौ, निस दिन नोंद न आवै ॥
मुख उपरि पीरी स्वासा सीरी, नैनहु नीभर लायौ ।
ये प्रगट चिन्ह दीसत हैं ताके, प्रेम न दुरै दुरायौ ॥ ४४ ॥

देहा छंद

प्रेम भक्ति यह मैं कही जानैं विरला कोइ ।

हृदय कलुषता^१ क्यों रहै जा घटि ऐसी होइ ॥ ४५ ॥

[इस प्रकार प्रेमलक्षणा के लक्षण सुन मममग्न हो शिष्य ने गुरु से पराभक्ति (उत्तमा) के जानने की उत्कंठा प्रगट की, तो गुरु ने उसकी श्रद्धा जानकर पराभक्ति का कहना प्रारंभ किया ।]

अथ पराभक्ति^२ । इंदव छंद

सेवक सेव्य मिल्यौ रस पीवत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदा हीं ।
ज्यों जल बीच धर्यौ जलपिंड सुपिंडरु नीर जुदे कछु नाहीं ॥
ज्यों दृग मैं पुतरी दृग एक नहीं कछु भिन्न सु भिन्न दिखाहीं ।
सुंदर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमात्म माहीं ॥ ४६ ॥

छप्पय छंद

श्रवण बिना धुनि सुनय नैन बिन रूप निहारय ।

रसना बिन उच्चरय प्रशंसा बहु बिस्तारय ॥

१-पाप वासना । २-पर शब्द का अर्थ दूर, ऊँचा, सूक्ष्म वा बलवान् का है तथा श्रेष्ठ का भी है ।

(१८)

नृत्य चरन बिन करय, हस्त बिन ताल बजावै ।
 अंग बिना मिलि संग बहुत आनंद बढ़ावै ॥
 बिन सीस नवै तहँ सेव्य कौं सेवक भाव लिये रहै ।
 मिलि परमात्म सौं आत्मा पराभक्ति सुंदर कहै ॥५०॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

तोटक छंद

हरि में हरिदास विलास करै । हरि सौं कवहूँ न बिछोह परै ॥
 हरि अन्नय^१ त्यों हरिदास सदा । रस पीवन कौं यह भाव जुदा ॥५४॥

मनहर छंद

तेजोमय स्वामी तहँ सेवक हू तेजोमय,
 तेजोमय चरन कौं तेज सिर नावई ।
 तेजोमय सब अंग तेजोमय मुखारविंद,
 तेजोमय नैननि निरखि तेज भावई ॥
 तेजोमय ब्रह्म की प्रशंसा करै तेज मुख,
 तेज ही की रसना गुनानुवाद गावई ।
 तेजोमय सुंदर हू भाव पुनि तेजोमय,
 तेजोमय भक्ति कौं तेजोमय पावई ॥ ५५ ॥

(३) अष्टांगयोग-निरूपण

[द्वितीयोहास में वर्णित मन की शुद्धि के तीन साधनों—भक्ति,
 योग और सांख्यज्ञान—में से भक्ति का वर्णन सुनकर, अब शिष्य योग-

१-अन्नर, अखंड, नित्य, अमर ।

मार्ग गुरु से पृच्छता है । उत्तर में गुरु अष्टांगयोग को कहते हैं । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, और इनके अंतर्भूत प्रकार भी कहते हैं ।]

दश प्रकार के यम

श्रीगुरुवाच । छप्पय छंद

प्रथम अहिंसा सत्यहि जानि स्तंय सु त्यागै ।
ब्रह्मचर्य दृढ़ ग्रहै क्षमा धृति सौ अनुरागै ॥
दया बड़ौ गुन होइ आर्जव हृदय सु आनै ।
मिताहार पुनि करै शौच नीकी विधि जानै ॥
ये दश प्रकार के यम कहे हठ प्रदीपिका ग्रंथ महि ।
सो पहिलैं हीं इनकाँ ग्रहै चलत यांग के पंथ महि ॥८॥

(१) अहिंसा के लक्षण । दोहा

मन करि दोष न कीजिए वचन न लावै कर्म ।
घात न करिए देह सौं इहै अहिंसा धर्म ॥९॥

(२) सत्य के लक्षण । सोरठा

सत्य सु दोइ प्रकार, एक सत्य जो बोलिए ।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है ॥१०॥

(३) अस्तेय के लक्षण । चौपाई

सुनिए शिष्य अवहिं अस्तेयं । चोरी द्वै प्रकार की हेयं ।
तनु की चोरी सबहिं बखानै । मन की चोरी मन ही जानै ॥११॥

(४) ब्रह्मचर्य के लक्षण । पमंगम छंद
 ब्रह्मचर्य इहिं भाति भली विधि पालिए ।
 काम सु अष्ट^१ प्रकार सही करि टालिए ॥
 बाँधि काछ दढ़ वीर-जती नहिं होइ रे ।
 और बात अब नाहिं जितेंद्रिय कोइ रे^२ ॥ १२ ॥

(५) क्षमा के लक्षण । मालती छंद
 क्षमा अब सुनहिं शिष मोसौ । सहनता कहहुँ सब तोसौ ॥
 दुष्ट दुख देहिं जो भारी । दुसह मुख बचन पुनि गारी ॥ १५ ॥
 कहे नहिं चोभ कौं पावै । उदधि महिं अभि बुझि जावै^३ ॥
 बहुरि तन त्रास दे कोऊ । क्षमा करि सहै पुनि सोऊ ॥ १६ ॥

(६) धृति^४ के लक्षण । इंदव छंद
 धीरज धारि रहैं अभि-अंतर जौ दुख देहहिं आइ परै जू ।
 बैठत ऊठत बोलत चालत धीरज सौं धरि पाव धरै जू ॥
 जागत सोवत जीमत पीवत धीरज ही धरि योग करै जू ।
 देव दयंतहि भूतहि प्रेतहि कालहु सौं कबहुँ न डरै जू ॥ १७ ॥

(७) दया के लक्षण । तोटक छंद
 सब जीवनि के हित की जु कहै । मन वाचक काय दयालु रहै ॥
 सुखदायक हू सम भाव लियें । शिष जानि दया निरवैर हियें ॥ १८ ॥

१-आठ प्रकार के मैथुन त्याग को ब्रह्मचर्य का प्रधान अंग कहा है ।
 २-केवल लंगोट लगाने से यति नहीं हो सकता किंतु उक्त अष्ट प्रकार
 मैथुन त्याग ही से । ३-क्षमारूप समुद्र में क्षोभ (क्रोध—चिढ़न) रूपी
 आग पड़ते ही बुझ जावे । ४-अविचलता—किसी विकार वा विघ्न से
 न घबराना—शांति और ध्यावस और निर्भीकता से सहज काम करना ।

(८) आर्ज्जव लक्षण । चौपइया छंद

यह कोमल हृदय रहै निसि वासर बोले कोमल बानी ।
पुनि कोमल दृष्टि निहारै सबकों कोमलता सुखदानी ॥
ज्यों कोमल भूमि करै नीकी विधि बोज वृद्धि है आवै ।
त्यों इहै आर्ज्जव लक्षण सुनि शिष योग सिद्धि कों पावै ॥१६॥

(९) मिताहार के लक्षण । पद्वडी छंद

जो सात्विक अन्न सु करै भक्ष ।
अति मधुरम चिकण निरखि अन्न ॥
तजि भाग चतुर्थय^१ ग्रहै सार ।
सुनि शिष्य कह्यो यह मिताहार ॥ २० ॥

(१०) शौच के लक्षण । चर्पट छंद

बाह्याभ्यंतर मज्जन करिए, मृतिका जल करि वपुमल हरिए ।
रागादिक त्यागै हृदि शुद्धं, शौच उभय विधि जानि प्रबुद्धं ॥२१॥

[अष्टांगयोग का पहला अंग (दश) यम वर्णन करके, अब दूसरे अंग नियम का वर्णन करते हैं । ये दोनों स्तंभरूप हैं । साधु की सच्ची कसौटी यम नियम ही है ।]

अथ नियम वर्णन

श्रीगुरुवाच । छप्पय छंद

तप संतोष हि ग्रहै बुद्धि आस्तिक्य सु आनय ।
दान समुक्ति करि देइ मानसी पूजा ठानय ॥

१-अपनी तृप्ति जितने अन्न से हो उसका चौथाई भाग कम खाय ।

बचन सिद्धांत सु सुनय लाज मति दृढ़ करि राखय ।

जाप करय मुख मौन तहाँ लग बचन न भाषय ॥

पुनि होम करै इहि विधि तहाँ जैसी विधि सद्गुरु कहै ।

ये दश प्रकार के नियम हैं भाग्य बिना कैसे लहै ॥ २३ ॥

[अब प्रत्येक नियम का लक्षण अलग अलग कहते हैं ।]

(१) तप के लक्षण । पायका छंद

शब्द स्पर्श रूपं त्यजणं । त्यों रस गंध नाहीं भजणं ।

इंद्रिय स्वादं ऐसैं हरणं । सो तप जानहुँ नित्यं मरणं^१ ॥ २४ ॥

(२) संतोष के लक्षण । हंसाल छंद

देह कौ प्रारब्ध^२ आय आपै रहै,

कल्पना छाड़ि निश्चित होई ।

पुनि यथालाभ कौ वेद मुनि कहत हैं,

परम संतोष शिष जानि सोई ॥ २५ ॥

(३) आस्तिकता के लक्षण । सवैया छंद

शास्त्र वेद पुरान कहत हैं, शब्द ब्रह्म कौ निश्चय धारि ।

पुनि गुरु संत सुनावत सोई, बार बार शिष ताहि विचारि ॥

होइ कि नाहीं शोच मति आनहिं, अप्रतीति हृदये तैं टारि ।

करि विस्वास प्रतीति आनि डर, यह आस्तिक्य बुद्धि निरधारि ॥ २६ ॥

१-नित्य अपने आप-अहंकार-को मारने (दमन) का अभ्यास करना तप है। २-भोग्य कर्म-जो पूर्वकृत कर्मसंस्कार रूप अवश्य भोक्तव्य होता है।

(४) दान के लक्षण । कुंडलिया छंद

दान कहत हैं उभय विधि, सुनि शिष करहि प्रवेश ।
 एक दान कर^१ दीजिए, एक दान उपदेश ॥
 एक दान उपदेश सु तौ परमारथ होई ।
 दूसर जल अरु अन्न बसन करि पोषै कोई ॥
 पात्र कुपात्र विशेष भली भू निपजय धानं ।
 सुंदर देखि बिचारि उभय विधि कहिए दानं ॥ २७ ॥

(५) पूजा के लक्षण । त्रिभंगी छंद

तौ स्वामी संगी, देव अभंगा, निर्मल अंगा, सेवै जू ।
 करि भाव अनूपं, पाती पुष्पं, गंधं धूपं, सेवै जू ॥
 नहिं कोई आशा, काटै पाशा, इहि विधि दासा, निःकामं ।
 शिष ऐसैं जानय, निश्चय आनय, पूजा ठानय, दिन जामं^२ ॥ २८ ॥

(६) सिद्धांत श्रवण के लक्षण । कुंडलिया छंद

बानी बहुत प्रकार है, ताकौ नाहिन अंत ।
 जोई अपने काम की, सोइ सुनिए सिद्धंत ॥
 सोइ सुनिए सिद्धंत संत सब भाषत बोई ।
 चित्त आनि कै ठौर सुनिय नित प्रति जे कोई ॥
 यथा हंस पय पिवै रहै ज्यों कौ ल्यों पानी ।
 ऐसैं लेहु विचारि शिष्य बहु विधि है बानी ॥ २९ ॥

(७) हो के लक्षण । गीता छंद
 लज्जा करै गुरु संत जन की, तौ सरै सब काज ।
 तन मन डुलावै नाहिं अपनौ, करै लोकहु लाज ॥
 लज्जा करै कुल कुटुंब की, लच्छण^१ लगावै नाहिं ।
 इहिं लाज तें सब काज होई, लाज गहि मन माहि ॥ ३० ॥

(८) मति के लक्षण । सवइया छंद ।
 नाना मुख संसार जनित जे, तिनहि देखि लोलुप^२ नहिं होइ ।
 स्वर्गादिक की करिय न इच्छा, इहामुत्र^३ त्यागै सुख दोइ ॥
 पूजा मान बढ़ाई आदर, निंदा करै आइकैं कोइ ।
 या प्रकार मति निश्चल जाकी, सुंदर दृढ़मति कहिए सोइ ॥ ३१ ॥

(९) जाप के लक्षण । पमंगम छंद
 जाप नित्यव्रत धारि करै मुख मौन सौं ।
 येक दोइ घटि काजु ग्रहै मन पौन सौं ॥
 ज्यों अधिक्य कछु होइ, वड़ौ अति भाग है ।
 शिष्य तोहि कहि दीन्ह भलौ यह माग^४ है ॥ ३२ ॥

(१०) होम के लक्षण । गीता छंद
 अब होम उभय प्रकार सुनि शिष, कहीं तोहि बषानि ।
 इक अग्नि मंहि साकल्य होमै, सो प्रवृत्ती जानि ॥
 जो निवृत्ति यज्ञास^५ होई, ताहि औरन खोम^६ ।
 सो ज्ञान अग्नि प्रजालि नीकैं, करै इंद्रिय होम ॥ ३३ ॥

१-दाग । लांछन । २-लीन, रत । ३-इह - यहाँ का । अमुत्र = पर-
 लोक का । ४-मार्ग, रास्ता । ५-निवृत्ति-संसारत्यागी जिज्ञासु । ६-पाठांतर

[इस तरह नियम भी दशों कह दिए । यहाँ तक यम नियम दो पूर्व अंग योग के हो चुके । अब तीसरा अंग आसन बताते हैं । आसन क्रिया का हठयोग में बड़ा माहात्म्य है । आसनों के यथार्थ साधन से वीर्य स्थिर, स्वास्थ्य दृढ़, रोगादिक शमन, शरीर निर्मल, निर्विकार, वात-पित्तकफादि प्रकोप रहित होकर प्राणायामादि के उपयोगी बन जाता है । चित्त की शांति में सहायता मिलती है । आसनों की संख्या चौरासी लाख बताई है । परंतु प्रति लाख एक आसन को मुख्य लेकर अंततोगत्वा चौरासी आसन छांट रखे हैं । परंतु इस कलिकाल में इन चौरासी का ज्ञान और साधन भी जीवों को भार ही है । इसलिये सुंदरदासजी ने तो दो आसन—सिद्धासन और पद्मासन—वर्णन कर काम को हलका कर दिया । इन आसनों का प्रकरण हठप्रदीपिका, योगचिंतामणि आदि ग्रंथों में वर्णन किया है । परंतु गुरुगम्य है ।]

सिद्धासन के लक्षण । मनहर छंद

येड़ी वाम पाँव की लगावै सींवनि के बीचि,
वाही जोनि ठोर ताहि नीकै करि जानिए ।
तैसे ही युगति करि विधि सौं भलै प्रकार,
मेढहू के ऊपर दत्तन पाँव आनिए ॥
सरल^१ शरीर दृढ़ इंद्रिय संयम^२ करि,
अचल ऊर्ध्व दृश्य भ्रू^३ के मध्य ठानिए ।
मोक्ष के कपाट^४ कौं उघारत अवश्यमेव,
सुंदर कहत सिद्ध आसन बखानिए ॥४०॥

सोम—खेम से अभिप्राय कर्तव्य का प्रतीत होता है ।

१—देह को कड़ा न रखै । २—मन सहित इंद्रियों का निरोध विषयों से । ३—भवारि । ४—किवाड़—परदा, द्वार ।

पद्मासन कं लक्षण । छप्पय छंद

दक्षिण उरु^१ उप्परय प्रथम वामहिं पग आनय ।

वामहिं उरु उप्परय तबहि दक्षिण पग ठानय^२ ॥

दोऊ कर पुनि फेरि^३ पृष्टि पीछै करि आवय ।

दृढ़ कै ग्रहै अंगुष्ट चिबुक^४ वत्तस्थल^५ लावय ॥

इहिं भाँति दृष्टि उन्मेष^६ करि अग्र नासिका राखिए ।

सब व्याधि हरण योगीन^७ की पद्मासन यह भाषिए ॥ ४१ ॥

[सिद्धासन और पद्मासन को कहकर प्राणायाम के वर्णन के पूर्व नाड़ी और चक्रों का तथा वायु का कुछ कुछ निर्देश करते हैं । नाड़ी अनेक (१०६ वा १०७) हैं, उनमें दश प्रधान हैं और दश में भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन अग्रवर्ती हैं । इड़ा वा चंद्र नाड़ी बाईं तरफ और बाये स्वर से संबंध रखती है । पिंगला वा सूर्य दाहिनी तरफ और दाहिने स्वर से संबंध रखती है । इड़ा पिंगला के मध्य सुषुम्ना वा अग्नि मध्यमवर्ती वा मेरुदंड तथा इड़ा पिंगला के अभाव सम्मेलन रूप होती है । इस तीसरी नाड़ी के साधन वा स्थिरता को ही योगी अपना लक्ष्य करते हैं । इसी का जानना कठिन है और इसी से योगसिद्धि मिलती है । दश प्रकार के पवन ये हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान पाँच तो ये और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये पाँच अन्य हैं । उनके स्थान कर्म बताते हैं । यथा—]

१—जाँघ । २—रखे । ३—दाहिने हाथ से बायाँ पाँव और बायें हाथ से दाहिना पाँव । ४—५—ठोड़ी को छाती से मिलावै । ६—पलक नीची करे । ७—अन्य पुरुषों की भी व्याधि हर सकते हैं परंतु योगियों की विशेष करके, क्योंकि उन्हीं के हित के लिये शिवजी ने इनका उपदेश किया है ।

दश वायु स्थान कर्म वर्णन । कुंडलिया छंद
 प्राण हृदय मंहि बसत है गुद मंडले अपान ।
 नाभि समानहिं जानिएँ कंठहि बसै उदान ॥
 कंठहिं बसै उदान व्यान व्यापक घट^१ सारै ।
 नाग करय उर्द्वर^२ कूर्म सो पलक उधारै ॥
 कृकल सु उपजे लुधा देवदत्तहिं जृभाण^३ ।
 मुयें धनंजय रहै पंचपूरब सो प्राण ॥ ४८ ॥

[दश वायुओं को कहकर पञ्चचक्रों का निर्देश करते हैं—१-आधार, २-स्वाधिष्ठान, ३-मणिपूरक, ४-अनाह, ५-विशुद्ध, ६-आज्ञा ये छः चक्र हैं । इनके स्थान, आकार, वर्ण, देवता, लक्षण, कोष्टक से जानने चाहिएँ । इन चक्रों के नाम निर्देशादि से यह प्रयोजन है कि प्राणायामादि साधनों से इन चक्रों को भेदन करके सुषुम्ना मार्ग से समाधिसुख की प्राप्ति होती है । अब प्राणायाम की विधि दिखाते हैं ।]

प्राणायाम क्रिया । दोहा छंद
 इड़ा नाड़ि पूरक करै, कुंभक राखै माहि ।
 रेचक करिए पिंगला, सब पातक कटि जाहि ॥ ५७ ॥

प्राणायाम की मात्रा । सौरठा छंद
 बीज^४ मंत्र संयुक्त, षोडश पूरक पूरिए ।
 चवसठि कुंभक उक्त, द्वात्रिंशति^५ करि रेचना ॥ ५८ ॥

चौपाई छंद
 बहुरि विपर्यय^६ ऐसै धारै । पूरि पिंगला इड़ा निकारै ॥
 कुंभक राखि प्राण कौं जीतै । चतुर्वार अभ्यास व्यतीतै ॥ ५९ ॥

१-शरीर । २-डकार । ३-जम्हाई । ४-ॐकार, वा जो अपने गुरु का दिया मंत्र हो । ५-बत्तीस । ६-उल्टा ।

[इस प्रकार प्राणायाम की विधि कही । प्रथम दहने नथने को अँगूठे से दबाकर बाँधे से स्वास इतनी देर खींचे कि सोलह बार ॐकार मन में बुल जाय । यह पूरक हुआ । फिर बाँधे नथने को फौरन अनामिका उँगली से दबाकर छाती में स्वास इतनी देर रोके कि ६४ बार ॐकार मन में बुल जाय । यह कुंभक हुआ । फिर दहने नथने पर से अँगूठा धीरे धीरे हटाता जाय और स्वास आहिस्ता आहिस्ता निकाले इतनी देर में कि ३२ बार ॐकार बुल जाय । यह रेचक हुआ । एक ॐकार या एक चुटकी जितनी देर में बुले वा बजे इस काल को मात्रा कहते हैं । फिर इसी तरह उलटा प्राणायाम करे । पिंगला से पूरक करके बीच में कुंभक रखकर इड़ा से रेचक करे । इस तरह चार बार प्राणायाम के जोड़ करे । इस अभ्यास को बढ़ाने से ही प्रत्याहार तक पहुँचना होता है । गोरक्षनाथ ने मोऽहं का जाप और पूरक कुंभक रेचक में बारह बारह मात्रा—समान मात्रा—पे प्राणायाम करना बताया है । इन मात्राओं की संख्या अभ्यास में दूनी—२४—करने से मध्यम प्राणायाम, और तिगुनी—३६—करने से उत्तम प्राणायाम कहा है । इसके उपरांत कुंभक प्रकार, नाद, मुद्रा और बंध के नाम गिनाए हैं जिनकी उपायो गिता योग में प्रायः होनी है ।]

सौरठा लंद

कुंभक अष्टसु विद्धि^१ मुद्रा दशहि प्रकार की ।

बंध तीन तिनि मद्धि उत्तम साधन योग के ॥ ६४ ॥

[कुंभक आठ ये हैं—सूर्यभेदन, उज्जाई, शीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छना, केवल । दश मुद्रा ये हैं—महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्यान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीत-करणी, वज्रोली, शक्तिचालन । अष्ट कुंभक के साधन हो जाने पर

और मुद्राओं का भी अभ्यास हो तो दश प्रकार के क्रमशः नाद सुनाई देते हैं । इसी को अनाहत नाद कहते हैं जो बिना कारण, प्रयास वा उद्योग के स्वयं भासता है । इसी का अपभ्रंश “अनहदनाद” है । नाद ये हैं—भ्रमर गुंजार, शंखध्वनि, मृदंगवाद्य, ताल शब्द, घंटानाद, वीणाध्वनि, भेरिनाद, दुंदुभिनाद, समुद्रगर्जना, मेघघोष । आगे इंद्रियों के प्रत्याहार का नामोल्लेख किया है । फिर पंचतत्त्व की पांच धारणाओं का वर्णन दिया है सो जानने ही योग्य है । उनमें से एक धारणा आकाशतत्त्व की नमूने को दी जाती है ।]

आकाशतत्त्व की धारणा । चौपइया छंद

अब ब्रह्मरंध्र आकाश तत्त्व है सुभ्र^१ वर्तुलाकारं^२ ।

जहँ निश्चय जानि सदाशिव तिष्ठति अक्षर सहित हकारं ॥

तहँ घटिका पंच प्राण करि लीनं परम मुक्ति की दाता ।

सुनि शिष्य धारणा व्योम तत्त्व की योगग्रंथ विख्याता ॥७४॥

[तदनंतर ध्यान चार प्रकार के कहते हैं—पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ और रूपातीत । ये चारों मानों सीढ़ियां हैं—उत्तरोत्तर ध्यान की वृद्धि का क्रम है । पदस्थ ध्यान की रीति कोई चित्र, मूर्ति या वर्ण का स्वेच्छा वा रुचि से ध्यान करना । पिंडस्थ ध्यान में पट्चक्रों का ध्यान । रूपस्थ ध्यान में नाना ज्योतिस्वरूपों का विकाश और रूपातीत में शून्य वा लय ध्यान है—यहाँ ज्ञाता ज्ञेय, ध्याता ध्येत, आधार आधेय रूपी सब भेद मानों पिघलकर एक हो जाते हैं—यही स्वात्मज्ञान रूपी लय है, यही महा आनंदवन है । सुंदरदासजी का रूपस्थ ध्यान वर्णन चमत्कारी और विख्यात है सो ही लिखते हैं—]

१-देदीप्यमान—चमकदार । २-गोल सा आकार ।

रूपस्थ ध्यान । नाराय छंद

निहारि के त्रिकूट मांहि विस्फुलिंग^१ देखिहै ।
 पुनः प्रकाश दीपज्योति दीपमाल पेषिहै ॥
 नक्षत्रमाल विज्जुलीप्रभा प्रत्यक्ष होइहै ।
 अनंत कोंटि सूर चंद्र ध्यान मध्य जोइहै ॥ ७६ ॥
 मरीचिका^२ -ममान सुभ्र और लक्ष जानिए ।
 भलामल^३ समस्त विश्व तेज मय बखानिए ॥
 समुद्र मध्य डूबिकै उधारि नैन दीजिए ।
 दशौ दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान कीजिए ॥ ८० ॥

[और रूपातीत ध्यान के वर्णन में एक अधिक रोचक छंद कहा है सो देते हैं—]

रूपातीत ध्यान । पद्धड़ी छंद

इहिं शून्य^४ ध्यान सम और नाहिं ।
 उत्कृष्ट ध्यान सब ध्यान मांहि ॥
 है शून्याकार जु ब्रह्म आपु ।
 दशहूँ दिश पूरण अति अमापु ॥ ८३ ॥
 यों करय ध्यान सायोज्य होइ ।
 तब लगै समाधि अखंड सोइ ॥

१-चिनगारियां जो तेजोमंडल से निकलती हैं । २-किरण प्रकाश-रेखा । ३-चकाचौंध करनेवाला भलामल तेज । ४-निर्विकल्प-समाधि की अवस्था में शून्यता की एक दशा होती है । यह निर्गुण वृत्ति की कक्षा है ।

पुनि उहै योग निद्रा कहाइ ।

सुनि शिष्य देउँ तोकौ बताइ ॥ ८४ ॥

[अंत में योग का आठवाँ अंग समाधि दिखाते हैं । यह वर्णन भी चमत्कारी है, इससे देते हैं ।]

समाधि वर्णन । गीतक छंद

सुनि शिष्य अबहिं समाधि लक्षण, मुक्त यांगी वर्त्तते ।

तहँ साध्य साधक एक होई, किया कर्म निवर्त्तते ॥

निरुपाधि नित्य उपाधि-रहितं इहै निश्चय आनिए ।

कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि बखानिए ॥ ८५ ॥

नहिं शीत उष्ण क्षुधा तृषा, नहिं मूर्छा^१ आलस रहै ।

नहिं जागरं नहिं सुप्र सुषुपति, तत्पदं यांगी लहै ॥

इम नीर महि गरि जाइ लवनं, येकमेक हि जानिए ।

कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि बखानिए ॥ ८६ ॥

नहिं हर्ष शोक न सुःख^२ दुःख, नहीं मान अमानया ।

पुनि मनौ इंद्रिय वृत्य नष्टं, गतं ज्ञान अज्ञानया^३ ॥

नहिं जाति कुल नहि वर्ण आश्रम, जीव ब्रह्म न जानिए ।

कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि बखानिए ॥ ८७ ॥

नहिं शब्द सपरश रूप रस नहिं गंध जानय रंच हूँ ।

नहिं काल कर्म स्वभाव है नहिं उदय अस्त प्रपंच हूँ ॥

१-मूर्छा ऐसा पड़ने से छंद ठीक होगा । २-छंद के निर्वाह के कारण ऐसा पड़ना होगा । ३-अमानयो, अज्ञानयो—संस्कृत के द्विवचन का अपभ्रंश ।

इमि क्षीर क्षीरे आज्य आज्ये जलं जलहि मिलानिए ।
 कल्लु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिए ॥ ८८ ॥
 नहि देव दैत्य पिशाच राक्षस भूत प्रेत न संचरै ।
 नहि पवन पानी अग्नि भय पुनि सर्प सिंघहिं ना डरै ॥
 नहि यंत्र मंत्र न शस्त्र लागहिं यह अवस्था गानिए^१ ।
 कल्लु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिए ॥ ८९ ॥

[इस प्रकार अष्टांग योग साधन करनेवाला युक्त योगी होता है और ब्रह्म को पाना है । अब चतुर्थोल्लास में सांख्य के ज्ञान का वर्णन करते हैं ।]

(४) सांख्यनिरूपण

[शिष्य ने अष्टांग योग का वर्णन सुनकर गुरु को कृतज्ञता प्रकट करके, अब सांख्य ज्ञान को अपने अमध्वंस के निमित्त गुरु से जानने की प्रार्थना की । तो गुरु ने कृपा कर सांख्य का सार कहना प्रारंभ किया ।]

श्रीगुरुवाच । द्रुमिला छंद
 सुनि शिष्य यह मत सांख्यहि कौ,
 जु अनात्म आत्म^२ भिन्न करै ।
 अन-आत्म है जड़ रूप लिए नित,
 आत्म चेतन भाव धरै ॥

१-गान से क्रिया—गाइए के अर्थ में । २-यह आत्म और अनात्म—जड़ और चैतन्य—का भेद सांख्य ही में नहीं वेदांत में भी वैसा ही वर्णित है । भेद यही है कि सांख्य में जो प्रधान (प्रकृति) की प्रधानता है उसी को वेदांत में अनुचित प्रतिपादन किया है क्योंकि वेदांत में प्रकृति मिथ्या और चेतन ही मुख्य है ।

अन-आतम सूक्ष्म शूल सदा,
 पुनि आतम सूक्ष्म शूल परै ।
 तिनकौ निरनै अब तोहि कहौ,
 जिनि जानत संशय शोक हरै ॥४॥

कुंडलिया छंद

पुरुष प्रकृतिमय जगत है ब्रह्मा कीट पर्यंत ।
 चतुर्खानि^१ लौं सृष्टि सब शिव शक्ती^२ वर्तत ॥
 शिव शक्ती वर्तत अंत दहुँवनि को नाहीं ।
 एक आहि चिद्रूप एक जड़ दीसत छाहीं^३ ॥
 चेतनि सदा अलिप्त रहै जड़ सौं नित कुरुषं^४ ।
 शिष्य समुक्ति यह भेद भिन्न करि जानहु पुरुषं ॥ ५ ॥

[यह सुनकर शिष्य ने पूछा कि आपने पुरुष को तो चैतन्य बताया और प्रकृति को जड़ और पुरुष को प्रकृति से भिन्न भी समझने को कहा, तो फिर यह जगत् कैसे पैदा हुआ । गुरु उत्तर देते हैं]

श्रीगुरुवाच । छप्पय छंद

पुरुष प्रकृति संयोग जगत उपजत है ऐसै ।
 रवि दर्पण^५ दृष्टांत अग्नि उपजत है तैसै ॥

१-जरायुज, अंडज, स्वेदज और उर्ध्वज । २-ब्रह्म = शिव, प्रकृति = शक्ति (पार्वती) । ३-"छायातपो"-श्रुति । ४-कु = पृथ्वी अर्थात् स्थूल पदार्थ, और रु = शब्द वा संयोग, खं = आकाश अर्थात् अखंड सर्वस्थूलव्यापक सूक्ष्म आकाशतत्त्व । जैसे सूक्ष्म आकाश सब स्थूल में व्यापक है और सर्व शब्द का आधार और कारण है और कार्य से अलिप्त है । ५-आतशी शीशे (लेंस) में सूर्य की किरण के केंद्र-समुदाय पर कोयला रूई आदि पदार्थ जलते हैं ।

सुई होहि चैतन्य यथा चंबक^१ के संग।

यथा पवन संयोग उदधि मैहि उठहि तरंगा ॥

अरु यथा सूर संयोग पुनि चक्षु^२ रूप कौं ग्रहत हैं ।

यो जड़ चेतन संयोग तैं सृष्टि उपजती कहत हैं ॥७॥

[अब प्रकृति पुरुष से कौन कौन तत्त्व पहिले पीछे किस क्रम से उत्पन्न हुए सोही सृष्टि-क्रम शिष्य पूछता है और गुरु उत्तर देते हैं]

श्रीगुरुवाच । दोहा छंद

पुरुष प्रकृति संयोग तै प्रथम भयो महत्त्व^३ ।

अहंकार तातैं प्रगट त्रिविध सुतम रज सत्व ॥ ८ ॥

गीता छंद

तिहि^४ तामसाहंकार तैं दश तत्व उपजे आइ ।

तैं पंच विषय रु पंच भूतनि कहौ शिष्य सुनाइ ॥

ये शब्द सपरस रूप रस अरु गंध विषय सुजानि ।

पुनि व्योम मारुत तेज जल क्षति महाभूत^५ बखानि ॥१०॥

(अब इन दसों के गुण कहते हैं)

छप्पय छंद

शब्द गुणो आकाश एक गुण कहियत जा महि^६ ।

शब्द स्पर्श जु वायु उभय गुण लहियहि तामहि ॥

१-चंबुक (मेगनेट) लोहे के तार आदि को आकर्षण कर उनमें गति उत्पन्न करता है । २-तेज के अभाव में अस्खि पदार्थों को नहीं देख सकती वरन तेज की साक्षी से पदार्थ साक्षात् होते हैं । ३-बुद्धि—प्रज्ञा । ४-पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश (पंच महाभूत) ।

शब्द स्पर्श जु रूप तीन गुण पावक माहीं ।

शब्द स्पर्श जु रूप रस जल चहुँ गुण आहीं ॥

पुनि शब्द स्पर्श जु रूप रस गंध पंचगुण अवनि है ।

शिष्य इहै अनुक्रम जानि तूं सांख्य सु मत ऐसै कहै ॥१२॥

अथ पंचतत्त्व स्वभाव । चौपइया छंद

यह कठिन स्वभाव अवनि को कहिए द्रावक उदकहि जानहुँ ।

पुनि उष्ण सुभाव अग्नि महि वर्तय चलन पवन पहिचानहुँ ॥

आकाश सुभाव सुथिर कहियत है पुनि अवकाश लपावै ।

ये पंचतत्त्व के पंच सुभावहि सद्गुरु बिना^१ न पावै ॥१३॥

राजसाहंकार । चौपइया छंद

अथ राजसाहंकार तें उपजी दश इंद्रिय सु बताऊँ ।

पुनि पंच वायु तिनकैं समीप ही यह व्योरी समुभाऊँ ॥

अरु भिन्न भिन्न हैं क्रिया सु तिनकी भिन्न भिन्न है नामं ।

सुनि शिष्य कहौ नीकैं करि तौसौं ज्यों पावै विश्रामं^२ ॥१४॥

छप्पय छंद

अवण तुचा दृग घ्राण रसन पुनि तिनि कैं संगी ।

ज्ञान सु इंद्रिय पंच भई अप अपने रंगी ॥

वाक्य पानि^३ अरु पाद उपस्थ गुदा हू कहिए ।

कर्मसु इंद्रिय पंच भली विधि जाने रहिए ॥

१-तत्त्वों के गुणों को योग द्वारा पहिचानना गुरु और साधन गम्य है । यथा स्वरोदय साधन से तत्त्वों के गुण और क्रिया आदि की पहिचान प्रसिद्ध है । २-इस तत्त्व-ज्ञान से विश्राम अर्थात् चित्त की शांति होती है सब संशय निवृत्त हो जाता है । ३-पाणि = हाथ ।

सुनि प्राणापान समान हूं व्यानोद्धान सु वायु हैं ।
दश पंच रजोगुण तें भए क्रिया शक्ति कौं पायु^१ हैं ॥१५॥

सात्विकाहंकार । गीतक छंद

अथ सात्विकाहंकार तें मन बुद्धि चित्त अहं भये ।

पुनि इंद्रियन के अधिष्ठाता^२ देवता बहु विधि ठये ॥

दिग्पाल मारुत^३ अर्क^४ अश्विनि^५ वरुण जानसु इंद्रियं ।

पुनि अग्नि इंद्र उपेंद्र मित्र जु प्रजापति कर्मेन्द्रियं^६ ॥१६॥

दोहा छंद

शशि विधि अरु क्षेत्रज्ञ पुनि रुद्र सहित पहिचानि ।

भये चतुर्दश^७ देवता ज्ञानशक्ति यह जानि ॥ १७ ॥

[तीनों गुणों से सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति की उत्पत्ति कही जाती है तथा सूक्ष्म और स्थूल कारण शरीर से उत्पन्न हैं । स्थूल देह में प्रधान पंच महाभूत पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश हैं । इनका पंचीकरण शास्त्रों में विस्तार से वर्णित है । यथा—अस्थि में पृथ्वीतत्व, त्वचा में जलतत्व, मांस में अग्नितत्व, नाड़ियों में वायुतत्व और रोमावली में आकाशतत्व प्रधान हैं इत्यादि अन्य शरीरांशों के विषय में भी कहा है । और दूसरे प्रकार से जैसे—गुद कर्मेन्द्रिय और नासा ज्ञानेंद्रिय पृथ्वीतत्व

१-पाई जाती है । अथवा क्रिया और शक्ति का पाया (स्तंभ) हैं । २-प्रत्येक इंद्रिय का एक देवता माना गया है सो कोई कल्पित बात नहीं है । जो इंद्रियों की क्रिया और स्वभाव पर एकांत विचार करते हैं उनको परमात्मा की विचित्र शक्तियां वहां निश्चय प्रतीत होती हैं । शक्ति ही देवता हैं । ३-पवन । ४-सूर्य । ५-अश्विनीकुमार । ६-वाक्य आदि पंच कर्मेन्द्रिय के क्रमशः देवता पांच ये हैं जो कहे गए । ७-मन आदि चार देवता शशि आदि हैं ।

से; चरण कर्मेन्द्रिय और लोचन ज्ञानेन्द्रिय ये दोनों तेज (अग्नि) से हैं इत्यादि । फिर ज्ञानेन्द्रिय आदि त्रिपुटियाँ कही हैं—यथा श्रोत्र तो अध्यात्म और शब्द अधिभूत तथा दिशा इसका देवता (अधिदैव) त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत और वायु इसका देवता—इत्यादि । इसी तरह कर्मेन्द्रिय त्रिपुटी कही है । यथा जिह्वा तो अध्यात्म, वचन अधिभूत और अग्नि इसका देवता इत्यादि । आगे अहंकार अर्थात् अंतःकरण त्रिपुटी को बताया है—यथा मन अध्यात्म, संकल्प अधिभूत और चंद्रमा इसका देवता है । इत्यादि । अनंतर स्थूल सूक्ष्म (लिंग शरीर स्थूल शरीर) के तत्त्वों की गणना तथा संख्या को कहते हैं ।]

लिंग शरीर । चौपाई छंद

नव तत्त्वनि कौ लिंग प्रबंधा । शब्द स्पर्श रूप रस गंधा ॥
मन अरु बुद्धि चित्त अहंकारा । ये नव तत्व किए निर्द्धारा ॥४५॥

दोहा छंद

पंद्रह तत्व स्थूल वपु, नव तत्त्वनि कौ लिंग ।

इन चौबीसहुँ तत्त्व को, बहु विधि कब्यो प्रसंग ॥४६॥

चौपइया छंद

शिष्य यं चौबीस तत्व जड़ जानहु, तिनके क्षेत्र सु कहिए ।
पुनि चेतन एक और पञ्चमीमहि, सांख्यहि मत सौँ लहिए ॥
(सो) है क्षेत्रज्ञ सर्व कौ प्रेरक, पुनि साची बहु जानहु ।
(यह) प्रकृति पुरुष कौ कार्यो निर्णय सद्गुरु कहै सु मानहु ॥४७॥

[उपरांत चारों अवस्थाओं का वर्णन करने हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया । प्रत्येक अवस्था के संघात (जिन तत्त्वसमूह से उसकी बनावट है), गुण विशेष, अवस्था का अभिमानी, देवता, भोग्य, स्थान. वाणीभेद. शरीर भेद. इन संज्ञाओं से विवरण किया

है। यह क्रम सांख्य और वेदांत दोनों ही के ग्रंथों में आता है। सो सुंदरदासजी ने बड़े ही विचार और अनुभव से स्पष्ट करके लिखा है।

(१) जाग्रत अवस्था में—व्यष्टि में स्थूल देह, समष्टि में विराट्। देह के संघात रूप पंचतत्त्व, पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, पंच विषय जिनके हेतु रूप पंचतन्मात्रा है, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार, और उन सबके चौदह देवता, प्राणादि पंच और नागादि पंच यों दस वायु, सत्व, रज, तम तीनों गुण, काल कर्म स्वभाव, इन सबके साथ जीव सचेत रहकर लिंग शरीर रूप कर्त्ता धर्त्ता रहता है। इसमें विश्व अभिमानी और ब्रह्मा देवता, रजोगुण प्रधान, स्थूल भोग्य होता है, नयन को स्थान कहा है, और वैखरी वाणी वर्त्तती है।

(२) स्वप्नावस्था में—संघात तो उपर्युक्त है, परंतु लिंग शरीर की प्रधानता से है। समष्टि में वही हिरण्यगर्भ नाम कहाता है। तैजस अभिमानी होता है। सतो गुण प्रधान और विष्णु देवता। वासना भोग्य होती है। कंठ इसका स्थान कहा जाता है, मध्यमा वाणी।

(३) सुषुप्ति अवस्था में—सब तत्व लीन हो जाने हैं, लिंग शरीर भी नहीं केवल कारण शरीर ही तत्त्व रहता है। यह गाढ़ निद्रा है। प्राज्ञ अभिमानी होता है। अव्याकृत तमो गुण प्रधान। शिव देवता। आनंद स्वरूप भोग्य होता है। पश्यंती वाणी और हृदय स्थान होता है।

(४) तुरीयावस्था में—चेतन तत्त्व (कारण शरीर भी लय) हो जाता है। कोई गुण भी नहीं वर्त्तता। कोई उपाधि या वृत्ति भी नहीं। स्वस्वरूप अभिमानी होता है। सोऽहं देवता और परमानंद भोग्य, मूर्द्धा (शिर) स्थान और परावाणी रहते हैं। इन चारों अवस्थाओं को चार छंदों और उनके समाहार को एक इंदव छंद में कह दिया है। सो ही देते हैं।]



जाग्रत् अवस्था । चंपक छंद

मिलि सबहिन को संघाता । यह जाग्रदवस्था ताता ॥५४॥
 सा आहि विश्व अभिमानी । तहँ ब्रह्मादेव प्रमानी ॥
 है राजस गुण अधिकारा । पुनि भोगस्थूल पसारा ॥५५॥
 सा कहिय नयन स्थानं । वाणी वैखर्या जानं ॥
 यह जाग्रदवस्था निर्णय । सुनि शिष्य सुप्र अब वर्णय ॥५६॥

स्वप्न अवस्था । चौपइया छंद

दशवायु प्राण नागादिक कहियहि, पंचसु इंद्रिय ज्ञानं ।
 पुनि पंचकर्म इंद्रिय जे आहीं, तिनकी वृत्य बखानं ॥
 अरु पंच विषय शब्दादिक जानहु, अंतहकरण चतुष्टय ।
 पुनि देव चतुर्दश हैं तिन माँही, सब इंद्रिय संतुष्टय ॥५७॥
 यह कालहु कर्म स्वभाव सकल मिलि, लिंग शरीर कहावै ।
 शिष्य नाम हिरण्यगर्भ पुनि ताकौ, तेजोमय तनु पावै ।
 अब स्वप्न अवस्था याकौ कहिए सा तैजस अभिमानी ।
 तहँ सत गुण विष्णु देवता जानहु भोग वासना ठानी ॥५८॥
 पुनि कंठस्थान मध्यमा वाचा जीवात्मा समेतं ।
 शिष्य सुप्न अवस्था कीयौ निर्णय समुक्ति देखि यह हेतं ॥५९॥

सुषुप्ति अवस्था । छप्पय छंद

सुषुप्ति कारण देह तत्व सब ही तहँ लीनं ।
 लिंग शरीर न रहै घोर निद्रा वसि कीनं ॥
 प्राज्ञा अभिमानीजु, अव्याकृत तमगुण रूपा ।
 ईश्वर तहँ देवता, भोग आनंद स्वरूपा ॥

पुनि पश्यंति वाणी गुप्त हृदय स्थानक जानिए ।

यह कहत जु सुषुपति अवस्था शिष्य सत्य करि मानिए ॥६०॥

तुरीया अवस्था । चर्पट छंद

तुर्यावस्था चेतन तत्त्व स्वस्वरूप अभिमानीयत्व ।

परमानंद भोगं कहियं, सोहं देवं सदा तह लहियं ॥६१॥

सर्वोपाधि विवर्जित मुक्तं त्रिगुणातीतं साक्षी उक्तं ।

मूर्द्धनि स्थिति पुरा पुनि वाणी, तुर्यावस्था निश्चय जांणी ॥६२॥

चारों अवस्थाओं का समाहार । इंदव छंद

जाग्रत रूप लिये सब तत्त्वनि, इंद्रिय द्वार करै व्यवहारो ।

स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व कौ, मानत है सुख दुःख अपारो ॥

लीन सबै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कछु घोर अंधारो ।

तीन^१ कौ साक्षी रही तुर्यातत सुंदर सोई स्वरूप हमारो ॥६३॥

(५) अद्वैतनिरूपण

[भक्ति, योग और सांख्य इन तीनों के सिद्धांत सुन, तथा सांख्य में तुरीया अवस्था तक जान, अथच तुरीयातीत का संकेत पाकर, शिष्य की रुचि उसही के जानने और अद्वैत के वर्णन को सुनने की हुई । तो उसने कृतज्ञता और नम्रतापूर्वक गुरुदेव से प्रार्थना की । गुरु ने प्रसन्न हो उसकी प्रार्थना मान, कहना प्रारंभ किया । शिष्य के वेदांत परिपाटी से श्रवण मनन निदिध्यासन किए हुए और ज्ञाननिष्ठा में परायण होने से, वह अधिकारी हो चुका है । इसी से गुरु प्रसन्नता-पूर्वक उसे महाज्ञान का आदेश देते हैं ।]

१-तीनों अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—का ज्ञाता और वर्त्तनेवाला ।

श्रीगुरुवाच । दोहा छंद

तुरिया साधन ब्रह्म कौ अहं ब्रह्म यौ होइ ।

तुरियातीतहि^१ अनभवै हूंतूं रहै न कोइ ॥७॥

इंदव छंद

जाप्रत तौ नहिं मेरे विपै कछु, स्वप्नसु तौ नहिं मेरे विपै है ।

नाहिं सुषोपति मेरे विपे पुनि, विश्वहु तैजस प्राज्ञ पपै^२ है ॥

मेरे विपै तुरिया नहिं दीसत, याही तै^३ मेरौ स्वरूप अपै^३ है ।

दूर ते^४ दूर परैं ते^४ परैं अति सुंदर कोउ न मोहि लपै^४ है ॥८॥

[शिष्य ने जब सुना कि ब्रह्म ता अति 'परे' है तो उसे संदेह हुआ और उसने गुरु से पूछा कि 'उरै' क्या है ? गुरु उस ही का उत्तर देते हैं । और इस ही को विन्मर से समझाने के लिये प्रागभाव, अन्योऽन्याभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यंताभाव का समावेश करते हैं ।]

श्रीगुरुवाच । दोहा छंद

उरै परै कछु वै नहीं वस्तु रही भरपूर ।

चतुरभाव तोसौं कहौं तब भ्रम है^५ दूर ॥९॥



चतुरभाव की सूचनिका । सबइया छंद

मृतिका मांहीन अभाव घटनि कौ, प्रागभाव यह जानि रहाय ।

ता मृतिका के भाजन बहु विधि, अन्यो अन्यो भाव गहाय ॥

१-यह तुरीय नाम चतुर्थ अवस्था से भी आगे जो निर्गुण और निर्विकल्प शुद्ध चेतन ब्रह्म है वही अद्वैत अनिर्वचनीय है । यह महा वेदांत का कथन है । २-पपै = पार्श्व—इधर उधर की ओर । अर्थात् पृथक् । ३-अक्षय, अर्थात् क्षयहीन, सब विकार वा गुण से रहित । ४-क्योंकि बुद्धि से जानने योग्य नहीं ।

मृतिका मध्य लानता सबकी, यह प्रध्वंसा भाव लहाय ।
न कछु भयौ न अब कछु द्वै है, यह अत्यन्ताभाव कहाय ॥ १३ ॥

प्रागभाव^१ वर्णन । मनहर छंद

पहिलैं जब कछुव न होतौ प्रपंच यह,
एक ही अखंड ब्रह्म विश्व को अभाव है ।
जैसे काठ पाहन सुलभ अति देखियत,
तिन मैं तौ नहीं कछु पूतरी बनाव है ॥
जैसे कंचन की रासि कंचन विसेषियत,
ताहू मध्य नहीं कछु भूषण प्रभाव है ।
जैसे नभ माहिं पुनि बादर न जानियत,
सुंदर कहत शिष्य इहै प्रागभाव है ॥ १४ ॥

अन्योऽन्या^२भाव । सवइया छंद

एक भूमि तै भाजन बहु विधि, कंडा करवा हँडिया माट ।
चपनी ढकन सराव गगरिया, कलश कहाली नाना घाट ॥
नाम रूप गुन जूवा^३ जूवा, पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट ।
सुंदर कहत शिष्य सुनि ऐसे अन्यो अन्या भाव विराट ॥ १५ ॥

[इसी प्रकार ताम्र, लोहा, कपास (रुई), वृत्त, जल, अग्नि, वायु, आकाश इतने पदार्थों से बने हुए विकारों (वस्तुओं) का वर्णन रुचिर छंदों में किया है ।]

१-निमित्त कारण वा समवाय कारण से कार्य के प्रगट होने से पूर्व जो कार्य का न होना । २-अनेक कार्यों वा एक-कारणजनित पदार्थों का परस्पर एक दूसरे में न होने की प्रतीति । ३-जुदा जुदा—पृथक् पृथक् ।

प्रध्वंसाभाव^१ । चौपइया छंद

यह भूमि विकार भूमि महि लीन, जलविकार जल माँही ।
पुनि तेज विकार तेज महि मिलिहै, वायु वायु मिलि जाँही ॥
आकाश विकार मिलै आकाशहि, कारण रहै निदानं ।
शिष्य यह प्रध्वंसाभाव सु कहिए, जौ है सो ठहरानं ॥ २३ ॥

अत्यंतभाव । मनहर छंद

इच्छाही न प्रकृति न महत्तत्त्व अहंकार,
त्रिगुण न शब्दादि व्योम आदि कोइ है ।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आहि,
सूक्ष्म न शूल पुनि एक हो न होइ है ॥
स्वेदज न अंडज जरायुज न उद्भिज,
पशु ही न पक्षी ही पुरुष ही न जोइ है ।
सुंदर कहत ब्रह्म ज्यों कौ त्यों ही देखियत,
न तौ कछू भयौ अव है न कछु होइ है ॥ २५ ॥

छप्पय छंद

कहत शशा कै शृंग आँखि किनहूँ नहि देखे ।
बहुरि कुसम आकाश सु तौ काहू नहि पेखे ॥

१-बने बनाए कार्य्य वा पदार्थ, आकार वा रूप में बिगड़ जायँ, टूट फूट जायँ और अपने जनक समवाय वा निमित्त के रूप वा द्रव्य में परिवर्तित हो जायँ । सर्व प्रपंच एक ही मूल कारण में ऐसा लय हो जाय कि उस एक ही कारण को छोड़ और कुछ न रहे । यह अवस्था लय के अतिरिक्त तुरीयातीत कला में भी होती है ।

त्या ही वंध्यापुत्र पिंघूरै भूलत कहिए ।
 मृग जल माहें नीर कहूँ ढूँढ़त नहिं लहिए ॥
 रजु माहिं सर्प नहिं कालत्रय, शुक्ति रजत सी लगत है ।
 शिष यह अत्यन्ताभाव सुनि ऐसे ही सब जगत है ॥२६॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दोहा छंद

यह अत्यन्ताभाव है यह ई तुरियातीत ।
 यह अनुभव साक्षात् यह यह निश्चय अद्वीत ॥४०॥
 नाहीं नाहीं करि कह्यो है है कह्यो बखानि ।
 नाहीं है कै मध्य है सो अनुभव करि जानि^१ ॥४१॥
 यह ही है परि यह नहीं नाहीं है है नाँहि ।
 यह ई यह ई जानि तू यह अनुभव या माहि ॥४२॥
 अब कछु कहिवे कौं नहीं कहैं कहाँ लौं बैन ।
 अनुभव ही करि जानिए यह गूँगे की सैन ॥४३॥

[इस प्रकार शिष्य निश्चीत हो, जगत् को स्वप्नवत् जानने लगा,
 और अपनी शुद्ध अवस्था को देख पूर्व अवस्थाओं की निवृत्ति पर
 आनंदयुक्त आश्चर्य्य सा प्रगट कर अपने भाव का गुरु के सामने वर्णन
 करने लगा ।]

^१—ब्रह्म ऐसा ही है ऐसा इदंता ज्ञान और ब्रह्म यह नहीं है वा
 ऐसा नहीं है यह अभाव ज्ञान दोनों ही तत्त्वज्ञान में संभव नहीं हो
 सकते । इससे है और नहीं के बीच अर्थात् अनिर्ध्वचनीय तीसरी रीति
 ही उपयुक्त है । सो केवल स्वात्मानुभव पर निर्भर है और वह अनुभव
 कहने में आता नहीं ।

चर्पट छंद^१

काहं^२ कत्वं कच संसारः, कच परमार्थः कच व्यवहारः ।
 कच मे जन्मं कच मे मरणं, कच मे देहः कच मे करणं^३ ॥४६॥
 कच मे अद्वय कच में द्वैतं, कच मे निर्भय कच मे भीतं^४ ।
 कच माया कच ब्रह्मविचारः, कच मे प्रवृत्तिहि निवृत्ति विकारः ॥४७॥
 कच मे ज्ञानं कच विज्ञानं, कच मे मन निर्विष विष^५ जानं ।
 कच मे तृष्णा क वितृष्णत्वं^६, कच मे तत्त्वं कच हि अतत्त्वं ॥४८॥
 कच मे शास्त्रं कच मे दत्तः^७, कच मे अस्तिहि नास्तिहि पक्षः ।
 कच मे कालः कच मे देशः, कच गुरु शिष्यः कच उपदेशः ॥४९॥
 कच मे ग्रहणं कच मे त्यागः, कच मे विरतिः कच मे रागः ।
 कच में चपलं कच निस्पंदं^८, कच मे द्वंद्वं कच निर्द्वंद्वं ॥५०॥
 कच मे बाह्याभ्यंतर भासं^९, कच अध ऊर्ध्वं तिर्यं^{१०} प्रकाशं ।
 कच मे नाडी^{११} साधन योगं, कच मे लक्ष विलक्ष^{१२} वियोगं^{१३} ॥५१॥

१-श्रीशंकराचार्य जी के स्तोत्रों के ढंग का यह वर्णन संस्कृत और
 भाषा सम्मिलित है । २-क=कहाँ । कहीं को=कौन का अर्थ भी
 बनता है । ३-अवयव का इंद्रियादि । ४-भीतत्वं=डर । ५-विष-
 रूपी विषय से रहित । ६-वैतृष्यत्व=तृष्णा न रहना । ७-दत्तता ।
 ८-स्पंद गति का न होना । ९-शरीर से भिन्न वा बाहर अनात्मा का
 ज्ञान, तथा अंदर का बाहर के पदार्थों से भिन्न होने का ज्ञान ।
 १०-तिर्यं=तिर्यक, तिरछा । ऊँचा, नीचा, आगे पीछे, तिरछा सीधा
 आदि सापेक्ष ज्ञान केवल प्रकृतिजन्य गुण हैं । ११-इडा पिंगला आदि
 योगविद्या की नाडियाँ । १२-लक्ष्य योग, अथवा स्वेष्टाचार योगक्रिया ।
 १३-वियोग=विशेष योग साधन ।

कच नानात्वं कच एकत्वं, कच में शून्याशून्य समत्वं ।
यो अवशेषं सो ममरूपं, बहुना किं उक्तं च अनूपं^१ ॥५२॥

[गुरु ने शिष्य में यह निश्चय अनुभव जानकर कहा कि हे शिष्य इस ज्ञान की प्राप्ति से तू निर्भय निर्लेप और निर्दोष होकर ब्रह्मज्ञानी हुआ है । उपरांत जीवनमुक्त पुरुष का लक्षण वा महत्त्व कहकर ग्रंथ का फल और रचना काल देकर वे ग्रंथ समाप्त करते हैं ।]

दोहा छंद

निरालंब निर्वासना इच्छाचारी येह ।
संस्कार पवनहि फिरै शुष्क पर्ण ज्यों देह^२ ॥५७॥
जीवन्मुक्त सदेह तूँ लिप्त न कबहूँ होइ ।
तेकों सोई जानि है तव समान जे कोइ ॥



१- अनूप है, जिसकी उपमा वा सादृश्य के लिये कोई पदार्थ नहीं इसलिये बहुत कहने से भी क्या होगा । २-यह साखी सुंदरदासजी के मुख से उनके अंत समय में भी निकली थी । उस समय वही प्रबल वृत्ति उनकी थी जो ज्ञान-समुद्र की समाप्ति के समय थी । अर्थात् देह की उत्पत्ति वासना संस्कार से संभव है, जप तप और ज्ञान से सब कर्म और वासना निवृत्त हो गई तो आत्मानुभव जो हुआ सो एक निरालंब (निराधार-निर्लेप) और वासनारहित संज्ञा है ऐसी अवस्था-वाले का फिर जन्म नहीं हो सकता । इसकी इच्छा केवल मोक्षेच्छा थी सो पूर्ण होने से इच्छानुसार आचार हुआ अर्थात् ब्रह्मवत् वा ब्रह्मलीन हो गया ।

सुंदर ज्ञानसमुद्र कौ पारावार न अंत ।

विषयी भागै भुभुकि कै पैठै कोई संत ॥६२॥

❀

❀

❀

संवत सत्रह सै गए वर्ष दसोतर और ।

भाद्रव सुदि एकादशी गुरुवासर शिरमौर ॥६५॥

ता दिन संपूरण भयौ ज्ञानसमुद्र सु ग्रंथ ।

सुंदर औगाहन करै लहै मुक्त को पंथ ॥६६॥

(२) अथ लघु ग्रंथावलि

(१) सर्वांगयोग^१ ग्रंथ

प्रपंच प्रहार

[इस “सर्वांग योग” नामक ग्रंथ में ग्रंथकर्ता सुंदरदासजी भक्ति, हठ और सांख्य इन तीन पर संक्षेप से कहते हैं । इन ही विषयों का निरूपण “ज्ञानसमुद्र” में कुछ विस्तार से किया है । विषय की एकता वा समानता रहने पर भी कई बातों का भेद है । अनुमान होता है कि ‘सर्वांगयोग’ का निर्माण ‘ज्ञानसमुद्र’ से पूर्व ही हुआ हो । यह ‘पंचेंद्रियचरित्र’ से पूर्व आया है जो संवत् १६६१ में बना था और ज्ञानसमुद्र सं० १७१० में रचा गया था । ज्ञानसमुद्र को क्रम में सबसे प्रथम रखने में इसकी उत्कृष्टता ही कारण प्रतीत हो सकती है परंतु रचनाकाल नहीं ।

आदि में भक्तियोग, हठयोग और सांख्ययोग के आचार्यों के नाम और फिर प्रत्येक योग के चार चार भेद दिए हैं । प्रथम ‘उपदेश’ (अध्याय) में ‘प्रपंचप्रहार’ नाम देकर अनेक मतों की विडंबना मात्र और उनकी अनावश्यकता तथा स्वप्रतिपाद्य योगत्रिक् की प्रधानता का वर्णन किया है । ज्ञानसमुद्र में इन ही अंगों की पुष्टता हो गई है और वह इस ग्रंथ से पूर्व आ चुका है, इससे विस्तार से नहीं देंगे ।]

१—‘योग’ शब्द सांख्य आदि शब्दों के साथ जुटाना पुराना ढंग है कुछ सुंदरदासजी पर निर्भर नहीं है । गीता के अध्यायों में योग शब्द का प्रचुर प्रयोग है । प्रतीत होता है कि योग से तात्पर्य ‘मार्ग’ वा ‘विधि’ का है । ‘सर्व’ शब्द के होने से मुख्य मुख्य योग के अंग अभिप्रेत हैं ।

दोहा छंद

बंदत हैं गुरुदेव के नित चरणांबुज दोइ ।
 आत्मज्ञान परगट भयौ संशय रहौ न कोइ ॥ १ ॥
 भक्तियोग हठयोग पुनि सांख्य सुयोग विचार ।
 भिन्न भिन्न करि कहत हैं तीनहुँ को विस्तार ॥ २ ॥

(भक्तियोग के आदि आचार्य्य^१)

सनकादिक नारद मुनि शुक अरु ध्रुव प्रह्लाद ।
 भक्तियोग सो इन कियौ सद्गुरु कै जो प्रसाद ॥ ३ ॥

(हठ योग के पूर्वाचार्यों के नाम^२)

आदिनाथ मत्स्येंद्र अरु गोरष चर्पट मीन ।
 काणेरी चोरंग पुनि हठ सुयोग इनि कीन ॥ ४ ॥

(सांख्य के आद्याचार्य्य^३)

ऋषभदेव अरु कपिल मुनि दत्तात्रेय वशिष्ट ।
 अष्टावक्र रु जडभरत इनकै सांख्य सुदृष्ट ॥ ५ ॥

१-नारद, शांडिल्य आदि भक्तिसूत्रादि, शांडिल्य विद्या आदि के प्रसिद्ध आचार्य्य हैं और ध्रुव प्रह्लाद आदि भक्त शिरोमणि हुए हैं ।
 २-हठयोग के आचार्यों के नाम हठ-प्रदीपिका में ये हैं—आदिनाथ, याज्ञवल्क्य, गोरक्ष, मत्स्येंद्र, भर्तृहरि, मंथान, भैरव, कंथडि, चर्पट, कानेरी, निथ्यनाथ, कपाली, टिंटीणी, निरंजन आदि । ३-अनीश्वर-वादी और ईश्वरवादी सांख्य यों दो प्रकार का है । ऋषभ देवादि पूर्व अनीश्वरवादी विख्यात हैं और कपिल, पंचशिख उत्तर सांख्य के । प्रसिद्ध छः ईश्वरवादी दर्शन ये हैं—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदांत, मीमांसा ।

[भक्तियोग चार प्रकार के—भक्तियोग, मंत्रयोग, लययोग, चरचा-योग । हठयोग चार प्रकार के—हठयोग, राजयोग, लक्ष्ययोग, अष्टांग-योग । सांख्ययोग के भी इसी तरह ४ प्रकार हैं—सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग, अद्वैतयोग । आगे चलकर दूसरे तीसरे चौथे उपदेशों में प्रत्येक का कुछ कुछ वर्णन दिया है । इनके अतिरिक्त अन्य उपायों और मतमतांतरों को मिथ्या कहकर बताया है ।]

दोहा छंद

इन विन और उपाय हैं सो सब मिथ्या जानि ।

छह दरसन अरु छयानबे^१ पाषंड कहूं बषानि ॥१५॥

[भक्ति योगादि के अतिरिक्त अन्य उपायों की उपेक्षा करते हुए ग्रंथकर्ता ३८ चौपाइयों में विस्तार से उनकी गणना और वर्णन करते हैं । इस गणना में यंत्र, मंत्र, टोना, टामन सिद्धि दिखाने में धूर्तता, दान और कर्म का आडंबर, थोथे पांडित्य की मत्सरता, तपश्चर्या, व्रत और दंभ भरे पाखंडियों का ठगना, जैनी ठूठियों की मलिनता, कापालिक और शाक्तों की भ्रष्टता, सिद्धियाँ दिखाने को अनेक कायाकष्ट और कर्तव्यियों का दिखाना, अनेक साधू वेष धारण कर ठग विद्याओं का करना इत्यादि बहुत सी बातें संयुक्त की गई हैं । परंतु ब्रह्मचर्यादि आश्रम और संध्यावंदनादि नित्यनैमित्तिक कर्मों आदि का भी नामोल्लेख हुआ है, परंच यह कोई कटाक्ष नहीं किंतु इन शास्त्र-विहित कर्मों के अनुष्ठान में यदि ज्ञान की हीनता और योग की न्यूनता रहे तो यही त्याज्य वा हेय है । उदाहरण के लिये कुछ चौपाइयाँ देते हैं । इन सब ही चौपाइयों में 'केचित्' शब्द का प्रयोग बहुत हुआ है ।]

१—यहाँ 'पाषंड' से प्रतिकूल मत से प्रयोजन है । सर्वदर्शन-संग्रह आदि ग्रंथों में अनेक मतों का दिग्दर्शन है ।

चौपई छंद

केचित्^१ कर्म स्थापहि जैना । केश लुचाइ करहिं अति फैना ॥
 केचित् मुद्रा पहिरे कानं । कापालिका^२ भ्रष्ट मत जानं ॥१८॥
 केचित् नास्तिक वाद प्रचंडा । तेतौ करहिं बहुत पापंडा ॥
 केचित् देवी शक्ति मनावै^३ । जीव हनन करि ताहि चढावै ॥१९॥
 केचित् मलिन मंत्र आरार्ध^४ । वसीकरण उच्चाटन सार्ध^५ ॥
 केचित् मुये मसान जगावै^६ । थंभन मोहन अधिक चलावै ॥२१॥
 केचित् तर्कह शास्त्र पाठी । कौशल विद्या पकरहिं काठी ॥
 केचित् वाद विविध मत जानै । पढ़ि व्याकरण चातुरी ठानै ॥२६॥
 केचित् कर धरि भित्ता पावै^७ । हाथ पूछि जंगल काँ धावै ॥
 केचित् घर घर माँगहि टुका । बासी कूसी रूपा सूका ॥३०॥
 केचित् धोवन धावन^८ पीवै^९ । रहै मलीन कहौ क्यो जीवै ॥
 केचित् मता अघोरी^{१०} लीया । अंगीकृत दोऊ का कीया ॥३२॥
 केचित् अभष भषत न सँकाही । मदिरा मांत मांस पुनि षाहीं ॥
 केचित् वपुरे दूधाधारी । षांड पोपरा दाष छुहारी ॥३३॥
 केचित् चिर्कट^{११} बीनहि पंथा । निर्गुन रूप दिखावै कंथा ॥
 केचित् मृगछाला बाघंबर । करते फिरहिं बहुत आडंबर ॥३७॥
 केचित् मेघाडंबर बैठे । शीतकाल जलसाई पैठे ॥
 केचित् धूमपान करि भूले । औंधे होइ वृच्छ सौ भूले ॥४०॥

१-कितने ही पुरुष अथवा कोई कोई । २-कापालिक—वाम मार्ग
 और शक्त भैरव लोग हैं । ३-ओसवालों में ढूँडिया ऐसा करते हैं ।
 ४-वाम मार्ग से भी हीनतर मत है । ५-चिधड़े ।

केचित् तृण की सेज बनावै । केचित् लैं कंकरा बिछावै ॥
 केचित् व्रतहि गहैं अति गाढ़े । द्वादश वर्ष रहैं पग ठाढ़े ॥४४॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दोहा छंद

बहुत भाँति मत देषि कै, सुंदर किया विचार ।

सद्गुरु के जु प्रसाद ते, भ्रमें नहीं सुलगार ॥५०॥

(ख) भक्तियोग

[भक्ति का वर्णन ज्ञानसमुद्र की भाँति नहीं है—न तो नवधा का वर्णन, न प्रेमलक्षणा, और न परा का उल्लेख है । किंतु जो कुछ लिखा है उससे अर्चना (नवधा का एक भेद) प्रतीत होती है । हाँ इस भक्तियोग के सारे योग रूपी महल का स्तंभ कहा है और योगियों की नाईं विरक्ति आदि की आवश्यकता होने की बात आई है । प्रथम दृढ़ वैराग्य धारण कर, अटल विश्वास के साथ त्यागी बने, जितेन्द्रिय और उदासीन रहे, घर में रहे चाहे वन में जाय परंतु माया, मोह, कनक, कामिनी, आशा, तृष्णा को छोड़ दे । शील, संतोष, दया, दीनता, क्षमा, धैर्य धारण करे, मान माहात्म्य कुछ न चाहे, सकल संसार को आत्मदृष्टि से देखे । एक निरंजन देव ही की पूजा करे । उसका प्रकार इस तरह लिखा है ।]

चौपाई छंद

मन माहैं सब सौँज^२ सुथापै । बाहर के बंधन सब कापैं^३ ॥

शून्य सुमंदिर अधिक अनूपा । तामहिं मूर्ति जोति स्वरूपा ॥८॥

सहज सुखासन बैठे स्वामी । आगे सेवक करे गुलामी ॥

संजम उदक स्नान करावै । प्रेम प्रीति के पुष्प चढ़ावै ॥६॥
 चित चंदन लै चरचै अंगा । ध्यान धूप धेवै ता संग ॥
 भोजन भाव धरै लै आगै । मनसा वाचा कछू न माँगै ॥१०॥
 ज्ञान दोष आरती उतारै । घंटा अनहद शब्द बिचारै ॥
 तन मन सकल समर्पन करई । दीन होइ पुनि पायनि परई ॥११॥
 मग्न होइ नाचै अरु गावै । गदगद रोमांचित होइ आवै ॥
 सेवक भाव कहे नहिं चौरै । दिन दिन प्रीति अधिक ही जोरै ॥१२॥

[इस प्रकार अपने अंतरभूत इष्टदेव की निरंतर भक्ति और सेवा वैसे ही करे जैसे प्रतिव्रता स्त्री अपने पति की । यही उसकी अनन्यता है ।]

मंत्रयोग

[इसके आगे भक्तियोग का दूसरा अंग मंत्रयोग वर्णन करते हैं । मंत्रयोग के कहने से यह प्रयोजन है कि प्रथम “वैखरी वाणी के द्वारा मंत्र को स्वीकृत कर मध्यमा वाणी से उसको बारं बार दोहरावे, मुख से शब्द उच्चारण न होने पावे । जैसे शब्द के कहने से उसके अर्थ का प्रतिपाद्य ग्राह्य होता है इसी तरह से ब्रह्म के द्योतक शब्द से उसका प्रतिपाद्य ब्रह्म ही लिया जायगा, शब्दोच्चारण के अभ्यास से वैखरी और मध्यमा द्वारा मन के अंतर भी अंतर्हित ब्रह्म की धारणा बढ़ती जायगी, मध्यमा की पुष्टि से पश्यंति में अभ्यास का प्रवेश होगा और फिर पश्यंति का पुष्टि से ‘परा’ वाणी में अभ्यास का निवेश होता जायगा, जैसे बाह्य स्थित आकार वा कल्पित मूर्ति के ध्यान से मनोनिग्रह बिना प्रयास ही होने लग जाता है उसी तरह से मंत्र जाप से चित्त निरोध होता है, भेद इतना ही है कि वहाँ चाक्षुर्बुद्धि प्रधान है और यहाँ कर्णेंद्रिय प्रधान है और वैखरी और मध्यमा वाणियाँ कर्मेंद्रियवत् सहायता करती हैं । निराकार वस्तु का सहसा ध्यान में आ जाना कोई खेल नहीं है,

इसलिये उस तरफ बढ़ने के लिये पूजा, जप आदि उपाय सीढ़ी की तरह से हैं, इसी लिये ये भक्ति वा योग के अंग माने गए हैं। इसी को महात्मा सुंदरदास जी भक्तियोग के अंतर्गत कर सूक्ष्मता से कहते हैं।]

चौपई छंद

सुगम उपाई और सद^१ रोजो। राम मंत्र कौं जौ ले षोजी ॥
 प्रथम श्रवण सुनिगुरु के पासा। पुनि सो रसना करै अभ्यासा ॥२३॥
 ता पीछे हिरदै में धारै। जिह्वा रहित मंत्र उच्चारै ॥
 निस दिन मन तासों रहै लागो। कबहुँ नैक न टूटै धागो ॥२४॥
 पुनि तहाँ प्रकट होइ रंकारा^२। आपुहि आपु अखंडित धारा ॥
 तन मन बिसरि जाइ तहाँ सोइ। रोमहि रोम राम धुनि होइ ॥२५॥
 जैसे पानी लौन मिलावै। ऐसैं ध्वनि महिं सुरति समावै^३ ॥
 राम मंत्र का इहै प्रकारा। करै आपुसे लगै न वारा ॥२६॥

लययोग

[मंत्रयोग की संक्षेप विधि कह चुकने पर लययोग को अनेक दृष्टांतों से निरूपण करते हैं। लय अर्थात् तल्लीनता भक्ति का एक प्रौढ़ भाव वा दशा है। जब मन उपास्य वा इष्ट में मग्न हो जाता है तो उसकी दशा अन्य षडार्थों से सिमटकर वहीं स्थित रहती है। जिन पुरुषों की

१-सद्य + राजी = नित्य नई और ताजी आमदनी वा आय। २-
 तागा तार। ३-रंकार की ध्वनि—अनाहत शब्द की भांति अभ्यासवश भीतर आप ही आप गूँज होने लगती है। रामायण में आया है कि हनुमानजी के शरीर में 'राम' नाम रोम रोम में था। तद्वत् भजन के प्रभाव से ऐसा होना असम्भव नहीं। जो कुछ हो सो करने से हो सकता है। ४-'सुरति' शब्द का प्रयोग कबीर आदि महात्माओं ने 'भुक्ति' शब्द से लौ या ध्यान के अर्थ में किया है।

प्रकृति ही भगवत्कृपा वा अपने संस्कारों से भक्तिमय होती है उनको थोड़े प्रयास वा अल्प संसर्ग ही से लय की प्राप्ति होने लग जाती है । परंतु जिनको ऐसी सामग्री उपस्थित न हो उनको परमात्मा से भक्तियोग की प्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिए और उसके लिये यथासाध्य प्रयत्न करना चाहिए । बोल चाल में लय को 'लौ लगाना' कहते हैं, यह लय मन की वृत्ति का तारतम्य है जो प्रकाश रूप से भी वाणी, कर्म और लक्षण से भी प्रगट होता है । पपीहे की नाई रसना से रटना स्वाभाविक रीति से स्वयं होने लगेगी । जैसे कुंज पत्ती घोंसले को छोड़ कहीं भी जाय, कलुआ अंडों को छोड़ कहीं भी जाय परंतु दृष्टि वा मन अंडों ही में लगा रहेगा । जैसे बाळक, साँप वा हिरन, गान वा वाद्य सुन, स्तब्ध हो जाता है, बांसापर नट की जैसी वृत्ति होती है, सिर पर गागर धरे पनिहारी का ध्यान गागर ही में लगा रहता है, बछड़े को छोड़ गाय जंगल में जाती है, बच्चे को छोड़ माँ दूर चली जाती है परंतु जी अपना अपने बच्चे में निरंतर लगा रहता है, इसी प्रकार हरिभक्तजनों का मन अपने प्रिय इष्टदेव भगवान् में ही लिपटा रहता है । यथा—]

चौपई छंद

जैसे कुंभ लेइ पनिहारी । सिरि धरि हंसै देइ कर तारी ॥
 सुरति रहै गागरि कै मंभा । यौं जन लय लावै दिन संभा ॥३४॥
 जैसे गाइ जंगल कौं धावै । पानी पिवै घास चरि आवै ॥
 चित्त रहै बछरा कै पास । ऐसी लय लावे हरिदासा ॥३५॥
 ज्यों जननी गृह काज कराई । पुत्र पिंघूरै^१ पौढ़त भाई ॥
 उर अपनै तै छिन न बिसारै । ऐसी लय जन कौ विस्तारै ॥३६॥

सब प्रकार हरि सौं लै लावै । होइ विदेह परम पद पावै ॥
छिन छिन सदा करै रस पाना । लय तै होवै ब्रह्म समाना १ ॥ ३८ ॥

चर्चायोग

[जैसे 'लय योग' प्रेमलक्षणा भक्ति से कुछ मिलता जुलता है, वैसे ही चर्चायोग को जिसको अब कहेंगे, नवधा भक्ति के कीर्तन से बहुत कुछ मिला सकते हैं । इसी प्रकार मंत्र योग की स्मरण से कुछ कुछ तुलना कर सकते हैं । प्रभु के अपार गुण और उसकी अपार लीला को दृष्टि द्वारा देखकर बारं बार हृदय में आनंदपूर्वक उनके संस्कार जमावे । व्यावहारिक दृष्टि से अथात् स्थूल में सुगम, साध्य, परंतु सूक्ष्म और अध्यात्म में उस मार्ग में जानेवालों के लिये कुछ दुःसाध्य परंतु परागति देनेवाला है । अपने अंतःकरण में उस महान् सृष्टि के महान् कर्त्ता भर्ता की जब मानसिक चर्चा का तार बँधता है और उस विवेचना से जो आनंद प्राप्त होता है उसमें मग्न होकर भक्त अपने स्वामी के विषय में कैसे कैसे विचार बांधता है सो ही चर्चा योग का रूप बना करता है । उसी के उदाहरण रूप कुछ छंद सुंदरदास जी के वचनमृत द्वारा सुनिए ।]

चौपई छंद

अव्यक्त पुरुष अगम्य अपारा । कैसैं कै करिये निर्धारा ॥
आदि अंति कछु जाय न जानी । मध्य चरित्र सु अकथ कहानी ॥
प्रथमहिं कीनों अँकारा । तातैं भयो सकल विस्तारा ॥
जावत यह बीसै ब्रह्मंडा । सातोँ सागर अरु नव खंडा ॥ ४२ ॥
चंद सूर तारा दिन राती । तीनहुँ लोक सृजै बहुभाँती ॥

चारि खानि^१ करि सृष्टि उपाई । चौरासी लष जातिबनाई ॥४३॥

* * * *

चर्चा करौं कहाँ लग स्वामी । तुम सब ही के अंतरजामी ॥

सृष्टि कहत कछु अंत न आवै । तेरा पार कौन घाँ पावै ॥४७॥

तेरी गति तूही पै जाने । मेरी मति कैसे जु प्रवाने ॥

कीरी पर्वत कहा उचावै । उदधिथाह कैसे करि आवै ॥ ४६ ॥

[इस प्रकार भक्तियोग, मंत्रयोग, लययोग और चर्चायोग समाप्त कर ग्रंथकर्ता सुंदरदास जी कहते हैं—]

दोहा छंद

ये चारों अंग भक्ति कं, नौधा इनहीं माँहि ।

सुंदर घट महिं कीजिए, बाहरि कीजै नाहिं^२ ॥५१॥

(ग) योग प्रकरण

हठयोग

[भक्ति का प्रकरण कहकर अब योग का प्रकरण कहते हैं । इस प्रकरण के भी चार विभाग ग्रंथकर्ता ने किए हैं अर्थात् हठयोग, राजयोग, लक्ष्ययोग और अष्टांगयोग । इनमें पहले हठयोग को कहते हैं । “हठ-योग-प्रदीपिका” के अनुसार हठ का वर्णन ज्ञानसमुद्र ग्रंथ में हो चुका है, यहाँ केवल दिग्दर्शन मात्र है । हठयोग का अधिकारी किसी धर्मात्मा राजा के देश में विधिपूर्वक मठ बनाकर यथाविधि गुरु द्वारा हठ का

१-चार खान = जरायुज, अंडज, स्वदेज और उद्भिज । २-क्योंकि बाहर जो कुछ है वह अनित्य और मिथ्या माया है । भीतर अंतरात्मा अपने संवित् द्वारा नित्यता के साथ प्रतीत होता है ।

साधन करे, स्वास जीते, यम नियम का साधन रखे, युक्ताहार बिहार होकर रहे। सुंदरदास जी ने भोजन का विधान भी दिया है। योग के षट् कर्मों से नेती, धोती, बस्ती तथा त्राटक, नौली मुद्रा, कपालभाती आदि से शरीर की नाड़ियों को शुद्ध करे। निरंतर अभ्यास से आनंद और सिद्धियाँ प्राप्त होंगी।

चौपई छंद

यह षट् कर्म सिद्धि के दाता । इन तैं सूक्ष्म होय सुगाता ॥१०॥
आँउँ पित्त कफ रहै न कोई । नख सिख लौं वपु निर्मल हाई ॥
सदाभ्यास तैं होय सुछंदा । दिन दिन प्रगटै अति आनंदा ॥११॥

राजयोग

[हठ योग द्वारा मन, शरीर और नाड़ियों को शुद्ध किया हुआ योगी राजयोग के साधन में तत्पर होवे। राजयोग का मार्ग कठिन है। बिना समझे उसमें आनंद नहीं मिलता। राजयोगी उर्द्धरेवा होकर वीर्य का मस्तक वा शरीर में स्तंभन करके अजर काय हो जाता है फिर मनोनिग्रह में तत्पर हुआ शनैः शनैः ब्रह्मानंद को पाने लगता है। जलकमलवत् आप अपने से अलिप्त, लुधा, पिपासा, निद्रा, शीत, ऊष्णादिक उसके वशवर्ती होते हैं। राजयोगी के कुछ लक्षण और उसकी कुछ विभूति के लक्षण सुंदरदासजी ने दिए हैं। यथा—]

चौपई छंद

सदा प्रसन्न परम आनंदा । दिन दिन कला बधै ज्यूँ चंदा ॥
जाकौ दुख अरु सुख नहिं होई । हर्ष शोक व्यापै नहिं कोई ॥१७॥
अग्नि न जरै न बूडै पानी । राजयोग की यह गति जानी ॥

अजर अमर अति वज्र शरीरा । खड्गधार कछु बिधै न धीरा ॥
 जाकौं सब बैठे ही सृभै । अरु सबहिन की भाषा बूझै ॥
 सकल सिद्धि आज्ञा महि जाके २ । नवनिधि सदा रहै ढिग ताके ॥
 मृत्यु लोक महि आपु छिपावै । कबहुँक प्रकट सुहोय दिखावै ॥
 हृदै प्रकाश रहै दिन राती । देखै ज्योतिस्तेल बिन बाती ॥२३॥

लक्ष्ययोग

[लक्ष्ययोग में किसी निश्चित वा कल्पित पदार्थ पर दृष्टि वा मन की वृत्ति लगाई जाती है । इसका साधन सुगम है । योग के ग्रंथों में तथा स्वरोदय के अंग में इसका वर्णन आया है यथा 'अधोलक्ष्य' नासिका के अग्र पर दृष्टि का ठहराना इससे मन की चंचलता रुकती है । 'उर्ध्वलक्ष्य' आकाश में दृष्टि रखना इससे कई प्रकार की रोशनियाँ और गुप्त पदार्थ दिखने लगते हैं । 'मध्यलक्ष्य' मन में किसी पुरुष विशेष का विचार करे इससे सात्विक वृत्ति बढ़ती है । 'बाह्यलक्ष्य' पाँचों तत्वों को साधन करे जैसा कि इसका विस्तार स्वरोदय में लिखा है । 'अंतर्लक्ष्य' ब्रह्म नाड़ी के अभ्यास से प्रकाश का हृदय में उत्पन्न करना । 'ललाट लक्ष्य' एक बड़े चमकते हुए तारे को ललाट में कल्पना करके देखना । इससे शरीर के रोग निवृत्त होते हैं, और कई गुण भी प्राप्त होते हैं, इसी तरह 'त्रिकुटी लक्ष्य' में लाल रंग के भौरे के समान का ध्यान करे इससे जगत्प्रिय बनेगा ।]

अष्टांगयोग

[अष्टांग योग में—यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (ये) अंतर्गत हैं । इनका विस्तृत वर्णन 'ज्ञानसमुद्र'

१—कई एक महात्मा कई वाणियाँ जानते वा बोलते सुने गए हैं इसका कारण यह योग ही है । २—राजयोग और हठयोग से सिद्धियों का मिलना सुप्रसिद्ध है । ३—ज्योतिस्वरूप परमात्मा का प्रकाश ।

के तृतीयोच्छ्वास में आ चुका है, इसलिये यहाँ पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं । समाधि के विषय में एक दो चौपाइयाँ देते हैं]

समाधि लक्षण । चौपाई छंद

अब समाधि ऐसी विधि करई । जैसे लौन^१ नीर महि गरई ॥
मन इंद्रो की वृत्ति समावै । ताको नाम समाधि कहावै ॥४६॥
जीवात्म परमात्मा होई । समरस करि जग एकै होई ॥
बिसरै आप कछू नहि जानै । ताको नाम समाधि बखानै ॥५०॥



सांख्ययोग

[सांख्ययोग का वर्णन ज्ञान समुद्र के चौथे उच्छ्वास में कर दिया है इसलिये यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं । इसमें केवल नाम मात्र ही चौबीस तत्त्वों की गणना कर दी है । आत्म अनात्म का भेद, आत्म क्षेत्रज्ञ और शरीर क्षेत्र बताया है । सांख्ययोग के ४ प्रकार हैं—सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग और अद्वैतयोग । इनका भिन्न भिन्न वर्णन किया है, जिसमें से सांख्ययोग का वर्णन ऊपर लिख चुके हैं नमूने की चौपाई देते हैं]

चौपाई छंद

यह चौबीस तत्त्व बंधानं । भिन्न भिन्न करि कियो वषानं ॥
सब को प्रेरक कहिए जीव । सो क्षेत्रज्ञ निरंतर सीबर ॥ ८ ॥

१—लौन की पूतरी (पुतली) का आख्यान सुप्रसिद्ध है । समुद्र से लवन होता है, लवन से बनी मूर्ति समुद्र में पिघलकर कुछ शेष नहीं रहती, इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा में उपाधि दूट जाने पर लीन हो जाता है । २—शिव—केवल, साची मात्र ।

सकल वियापक अरु सर्वग । दीसै संगी आहि असंग ॥
 सार्चा रूप सबन तै न्यारा । ताहि कछूनहिं लिपै विकारा ॥१०॥
 यह आत्म अन-आत्म निरना । समझै ताकू जरा न मरना ॥
 प्राण्य सुमत याही सौं कहिए । सत गुरु बिना कहौ क्यों लहिए ॥

ज्ञानयोग

[“ज्ञानयोग में यह सिद्धांत निरूपण किया है कि आत्मा कारण है, और विश्व कार्य है, अर्थात् यह सृष्टि आत्मामय है आत्मा ही से इसका विकाश और आत्मा ही में इसका लय है। सुंदरदास जी ने अनेक उदाहरण दिए हैं जिनसे आत्मा और संसार का आभेद सा समझ में आता है और आत्मा विश्व का निमित्त कारण तथा उपादान कारण भी है।” दया—]

चौपाई छंद

ज्यों अंकुर ते तरु विस्तारा । बहुत भांति करि निकसी डारा ॥
 शाषा पत्र और फर फूला । यों आत्मा विश्व को मूला ॥ १४ ॥
 जैसे उपजे वायु बभूरा । देषत के दीसैं पुति भूरा^१ ॥
 आंटी छूटें पवन समाहीं । आत्म विश्व भिन्न यों नाहीं ॥ १६ ॥
 जैसे उपजे जल के संगी । फेन बुदबुदा और तरंगा ॥
 ताही मांझ लीन सो होई । यों आत्मा विश्व है सोई ॥१८॥

१-भँवर—अमर सा । अथवा भूरे वा भूसरे रंग का । बगूले की आकृति आकाश में जल के भँवर की सी प्रतीत होती है और मिट्टी आदि के मिलने से रंग भी पृथक् हो जाता है ।

ब्रह्मयोग

[“ब्रह्मयोग” में इस सिद्धांत का प्रतिपादन है कि जीव को ब्रह्म के साथ उस अभेद अज्ञान का निज अनुभव द्वारा, साक्षात्कार हो जाय, कि जो वेदांत के महावाक्य ‘अहं ब्रह्मास्मि’ से, तथा अपरोक्ष वृत्ति द्वारा प्रकाशित होता है । यथा—]

चौपाई छंद

ब्रह्मयोग का कठिन विचारा । अनुभव बिना न पावै पारा ॥२५॥
 ब्रह्मयोग प्रति दुर्लभ कहिए । परचा^१ होइ तबहिं तौ लहिए ॥
 ब्रह्मयोग पावै निःकामी^२ । भ्रमत सु फिरै इंद्रियारामी^३ ॥२६॥
 आयु ब्रह्म कछु भेद न आनै । अहंब्रह्म ऐसै करि जानै ॥
 अहं परात्पर अहं अखंडा । व्यापक अहं सकल ब्रह्मंडा ॥३०॥

अद्वैतयोग

[अद्वैतयोग में वह गुणातीत अवस्था वर्णन की है जो शुद्ध ब्रह्म के निरूपण में “नेति नेति” कहकर उपनिषदों में वर्णन की गई है । इसी प्रकार का वर्णन ‘ज्ञानसमुद्र’ ग्रंथ में भी आ चुका है । यहाँ केवल बानगी मात्र देते हैं । यथा—]

चौपाई छंद

अब अद्वैत सुनहु जु प्रकासा । नाहं नत्वं नां यहु भासा^४ ॥

१-परिचय-अनुभव । २-भाषा में कहीं कहीं संधि नहीं भी करते हैं । ३-बहिर्मुख इंद्रियों से उधर जाना असंभव है । ४-आभास, प्रकाश—यह सृष्टि जो भासमान है ।

नहिंप्रपंचतहाँनहींपसारा^१ । नतहाँसृष्टिनसिरजनहारा^२ ॥३७॥
 न तहाँ सत रज तम गुन तीना । न तहाँ इंद्रिय द्वारन कीना ॥
 न तहाँ जाग्रत सुप्रन धरिया । न तहाँ सुषुप्ति न तहाँ तुरिया ॥४६॥

दोहा छंद

ज्ञे^३ ज्ञाता नहिं ज्ञान तहँ, ध्ये ध्याता नहिं ध्यान ।
 कहनहार सुंदर नहीं, यह अद्वैत वषान ॥५०॥

(२) पंचेंद्रिय चरित्र ग्रंथ

[“पंचेंद्रिय चरित्र” ग्रंथ में ६ उपदेश हैं, जिनमें से ज्ञान इंद्रियों के वर्णन में पांच और समाहार में एक । प्रत्येक इंद्रिय का स्थानापन्न एक ऐसा पशु वा जंतु लिया है कि जिसमें उस इंद्रिय की प्रबलता होती है । उस प्रबलता के अधीन होकर उस पशु की जो दुर्गति होती है उसी का एक आख्यान के साथ वर्णन किया है । इस प्रकार के दृष्टांत संस्कृत-साहित्य में बहुत स्थानों में मिलते हैं । इस प्रकार इंद्रियों और मन की विषय-लोलुपता का अच्छा परिचय हो जाता है । इसी से परोपकारी महात्मा सुंदरदासजी ने ऐसे आख्यानों को एकत्र कर, भाषा-काव्य कर दिया है । इसमें प्रथमोपदेश में काम-इंद्रिय वा स्पर्श के वश होकर हाथी वन में से पकड़ा गया यह आख्यान है । दूसरे में भ्रमरचरित्र है, सुगंधप्रिय भ्रमर घ्राण-इंद्रिय के वश हो कमल में बंद होकर मारा गया । तीसरे में मीनचरित्र है, स्वादुलोलुप

१-फैलाव, सृष्टि । २-क्योंकि कर्त्तापन गुणोपहित होने से होता है ।
 ३-ज्ञेय = जानी जाय सो वस्तु । किसी वस्तु के ज्ञान में तीन बातें अवश्य हों—एक वह पदार्थ, उसका जाननेवाला और जानने की क्रिया जिसके द्वारा ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध हो । इसी प्रकार ध्यान में है ।

मछली रसना-इंद्रिय के फंदे में पड़ शिकारी की बंसी के कांटे से उलझ कर प्राण खो बैठती है। इसी प्रकार मर्कट, बाजीगर के फंदे में पड़ा और शृंगीकृपि का तप वेश्या द्वारा भंग हुआ, (ये दो आख्यान और भी हैं)। चतुर्थ उपदेश में पतंगचरित्र है, रूप का प्रेमी पतंग (जंतु) चक्षु-इंद्रिय की प्रबलता के अधीन होकर, दीपक में पड़कर जल जाता है। पंचम उपदेश में मृगचरित्र का वर्णन किया है, श्रोत्र-इंद्रिय की प्रबलता के कारण नाद-रस में निमग्न होकर मृग वधिक के तीर से मारा गया, तथा इसी नाद के आनंद से सर्प भी गारुड़ी के हाथ लगा। छठे उपदेश में मनुष्य के सर्व पांचों ज्ञान-इंद्रियों के वशीभूत होने पर साधारण तथा विशेष रीति से उपदेश वर्णन किया है और इंद्रिय दमन के विषय में स्पष्ट रूप से कहा है। अब छहों उपदेशों से कुछ कुछ छंद साररूप दिष्ट जाते हैं]

(क) गजचरित्र । चंपक* छंद

गज क्रीडत अपने रंगा, बन में महमत्त अनंगा ॥
 बलवंत महा अधिकारी, गहि तरवर लोई उपारी ॥ ३ ॥
 इकु मनुष तहाँ कोउ आवा, तिहि कुंजर देश न पावा ॥
 उन ऐसी बुद्धि बिचारी, फिरि आवा नग्र मभारी ॥ ८ ॥
 तब कह्यौ नृपति सौं जाई, इक गज बन माँझ रहाई ॥ १० ॥
 जौ लै आवै गज भाई, दैहौ तब बहुत बधाई ॥ ११ ॥
 तब बिदा होई घर आवा, मन में कलु फिकरि उपावा ॥ १५ ॥
 तब बुद्धि विधाता दीनी, कागद की हथनी कीनी ॥ १६ ॥
 तब दूत तहाँ लै जाहीं, गज रहत जहाँ बन माझों ॥ १८ ॥

* यह सखी छंद १४ मात्रा का होता है और अंत में यगण या मगण होता है ।

तहाँ खंदक कीना जाई, पतरे तृण दीन छवाई ।
तृण ऊपरि मृतिका नाषी, तब ऊपरि हथिनी राषी ॥२०॥
हथनी को देखि स्वरूपा, सठ धाइ परयो अंध कूपा ॥२२॥

दोहा छंद

धाइ परगौ गज कूप में, देख्या नहीं बिचारि ।
काम-अंध जानै नहीं, कालबूत^१ की नारि ॥ २३ ॥

[हाथी जब फँस गया, तो कुछ दिन उसको भूखा रखकर
मद उसका उतार दिया गया और फिर उसे राजा के पास ले आए। और
वह वहाँ बाँधा गया ।]

गज भया काम बसि अंधा, गहि राजदुवारै बंधा ।
गज काम अंध गहि कीना, इहि काम बहुत दुख दीना ॥३५॥

दोहा

काम दिया दुख बहुत ही, बन तजि बंध्या ग्राम ।
गज बपुरे की को कहै, विश्व नचाया काम ॥ ३६ ॥

[अब यहाँ ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, चंद्रमा, पराशर मुनि, शृंगी ऋषि,
बालि, रावण, विश्वामित्र, कीचक आदि के आख्यानसूचक वाक्य
कहे हैं ।]

दोहा छंद

गज व्यवहारहि देषि करि, वेगहि तजिए काम ।
सुंदर निस दिन सुमरिए, अलष निरंजन राम ॥४५॥

१—जो कुछ अंदर भरा जाय—भरत । बनावट ।

(ख) भ्रमरचरित्र । दोहा छंद

बैठत भ्रमर कली कली, चंचल चपल सुभाव ।

त्रिपति^१ न होइ सुगंध मैं, फिरत सु अपने चाव ॥ १ ॥

[फूल फूल पर बास लेता लेता भौरा तृप्त न हुआ । निदान उड़ते उड़ते वह लालची कमल के पुष्प पर पहुँचा । उसकी सुगंध से मस्त होकर उसही में जमा रहा । सूर्यास्त होने पर कमलदल संपुटित हो गए । अलि भी उसमें बंद हो गया । आनंद से विचरने लगा ।—]

चंपक छंद

मन मैं यौ करत बिचारा, सब रात पिऊँ रस सारा ।

उड़ि जाऊँ होइ जब भोरा, रजनी आऊँ इहिँ ठौरा ॥७॥

यहु उत्तम ठौर सुवासा, इहँ करिहौं सदा बिलासा ।

हम बैठे पुष्प अनेका, कोउ कमल समान न एका ॥ ८ ॥

[रात भर इसी ध्यान में रहा । दिन उगने से पहले उस सरोवर पर एक हाथी जल पीने आया । जल पीकर क्रीड़ा करते करते कमलों को उखाड़ उखाड़कर अपनी पीठ पर मारने लगा । वह कमल भी सूँढ़ आ गया जिसमें वह भौरा था । बस कमल को पीठ पर दे मारा, फिर पाँव से कुचला । भौरों का भी अंदर चुरकट हो गया । सुगंध-जोलुप अलि के यों प्राणोंत हुए ।]

चंपक छंद

जिन गंध विषै मनु दीना, ते भए भ्रमर ज्यों छीना ।

जिनके नासा बसि नाहीं, ते अलि ज्यों देषु विलाहीं^२ ॥१६॥

१—तृप्ति—संतुष्टि । २—विलीयमान हो जाते हैं—नाश हो जाते हैं ।

(ग) मीनचरित्र । दोहा छंद

मीन मग्न जल में रहै, जल जीवन जल गोह ।

जल बिछुरत प्राणहिं तजै, जल सौँ अधिक सनेह ॥१॥

[अपने निवास भवन में मछली आनंदपूर्वक रहती विचरती थी । किसी का कुछ खटका नहीं था । दैवात् एक धीवर बंसी की डोर में काँटा और मांस की 'बेट' लगाकर आया । बेट को अपना भक्षण जान अज्ञान मछली ने उसको खाया तो काँटे से गला छिद गया । निकालने को बहुत कुछ छटपटाई । ऊपर डोरा हिलते ही बंसी खिंची । मछली जल से बाहर आई और उसके प्राण पखेरु उड़ गए । जिह्वा के स्वादवश मीन का यों अंत हुआ । धीवर मछली को ले गली गली बेचता फिरा ।]

चंपक छंद

सठ स्वाद माहिं मन दीना, जिह्वा घर घर का कीना ।

जिस^१ गहिरे ठौर ठिकाना, सो रसना स्वाद बिकाना ॥१॥

[मछली की तो हुई सो हुई । एक बंदर स्वादवश पकड़ा गया । बाजीगर ने पृथ्वी में मटकी गाड़ उसमें कुछ खाने को रखा, बंदर ने अंदर हाथ डाला, बाहर न निकाल सका और चिल्लाया तो बाजीगर ने पहुँचकर गले में रस्सी डाल बांध लिया और वह उसे घर घर नचाता फिरा ।]

जो जिह्वा नहीं सँभारा, तौ नाचै घर घर बारा ।

यह स्वाद कठिन अति भाई, यह स्वाद सबनि को षाई ॥२॥

[बंदर की भी क्या चलाई, शृंगी ऋषि महात्यागी थे, वन में रह फल फूल खा घोर तप करते थे । इंद्र ने तपभंग करने को वृष्टि बंद कर दी । राजा ने दैवज्ञों के कहने से ऋषि को बुलाने का उपाय किया ।

(६८)

एक वेश्या ने वन में आकर ऋषि को स्वाद की चाट पर चढ़ाकर उनको वश में कर उनका तप भंग कर दिया ।]

जो रसना स्वाद न होई, तो इंद्रो जगै न कोई ॥ ६५ ॥

दोहा

मीन चरित्र विचारि कै, स्वाद सबै तजि जीव ।

सुंदर रसना रात दिन, राम नाम रस पीव ॥ ६६ ॥

(घ) पतंगचरित्र

[दीपक की ज्योति पर, चक्षु-इंद्रिय के वश हो, पतंग ऐसा पड़ता है कि उसे अपनी देह की कुछ सुधि नहीं रहती, और दीपक में पड़कर भस्म भी हो जाता है ।]

दोहा छंद

देह दीप छवि तेल त्रिय, बाती बचन बनाइ ।

बदन ज्योति दृग देषि कै, परत पतंगा आइ ॥ १ ॥

[पतंग यह कहाँ समझता है कि जिसमें वह पड़ता है, सो अग्नि है । इस दृष्टि का इतना बल है कि बुद्धि नष्ट हो जाती है अपने आपे की समझाल भी नहीं रह सकती है ।]

चंपक छंद

यह दृष्टि चहुँ दिश धावै, यह दृष्टिहि षता षवावै ।

यह दृष्टि जहाँ जहँ अटकै, मन जाइ तहाँ तहँ भटकै ॥ ५ ॥

कोइ योगी जती सन्यासी, वैरागी और उदासी ।

जो देह जतन करि राखै, तो दृष्टि जाइ फल चाखै ॥ ८ ॥

[दूसरी भाँति विचार से, डाइन की दृष्टि बुरी होती है, उसके पड़ने से किसी बच्चे को दुःख हुआ, तो डाइन की लोगों ने दुर्दशा की,

मूँड़ मुँड़ा, मुख काला कर, नाक काट, गदहे पर चढ़ा, गली बाजार फिरा, बाहर निकाला । यह दृष्टि (नजरेबंद) लगाने का फल हुआ ।]

यह सकल दृष्टि की बाजी, सब भूले पंडित काजी ।

यह दृष्टि कठिन हम जाना, देवासुर दृष्टि भुलाना ॥ २० ॥

कोई संत दृष्टि यह आवै, सब ठौर ब्रह्म पहिचानै ।

कहै सुंदरदास प्रसंगा, यह देशि चरित्र पतंगा ॥ २१ ॥

दोहा छंद

देशि चरित्र पतंग का, दृष्टि न भूलहु कोइ ।

सुंदर रमिता राम कौं, निसि दिन नैनहुँ जोइ ॥ २२ ॥

(ङ) मृगचरित्र

[हरिन सुंदर नाद पर ऐसा आसक्त हो जाता है कि शत्रु मित्र का भी भेद उसको नहीं भासता । किसी वन में एक मृग बड़ा ही चंचल और अपनी “मौज” से चरता और विचरता रहता था । एक व्याध उधर आ निकला और उसने ऐसा सुंदर नाद बजाया कि मृग की सुध बुध बिसर गई । जब बधिक ने यह हाल देखा तो तीर मार उसका काम तमाम किया । कर्णेंद्रिय के वश होकर नाद के रस की फांसी में फँसकर मृग ने अपने प्राणही खोए ।]

चंपक छंद

यह नाद विषै मन लावै, सो मृग ज्यों नर पछितावै ।

इहिं नाद विषै जौ भीना, सो होइ दिनै दिन छीना ॥ २३ ॥

[इसी प्रकार नाद के वश होकर सर्प भी पकड़े जाते हैं । इससे जाना गया कि कर्णेंद्रिय के विषय से अर्थात् नाद या स्वर से जीव मोहित हो जाता है ।]

(७०)

चंपक छंद

यह नाद करै मन भंगा, यह नाद करै बहु रंगा ।
यहि नाद माहिं इक ज्ञान^१, तिहि समुझै संत सुजान ॥ २१ ॥

दोहा छंद

मृग चरित्र उपदेश यहु, नाद न रीझहु जान ।
सुंदर यह रस त्याग के, हरिजस सुनिए कान ॥ २३ ॥

(च) पंचेंद्रिय-निर्णय

[अब पंचों इंद्रियों के समुदाय रूप से वर्णन करते हैं और उनके प्रभाव, बल और स्वभाव के निरोध के फल, और अनवरोध के दोष, तथा इंद्रिय-दमन से मनुष्य-जन्म का साफल्य वर्णन करते हैं ।]

दोहा छंद

गज अलि मीन पतंग मृग, इक इक दोष बिनाश ।
जाके तन पंचों बसै, ताकी कैसी आश ॥ १ ॥

चंपक छंद

अब ताकी कैसी आसा, जाकै तन पंच निवासा ।
पंचों नर कै घट माहैं, अपना अपना रस चाहैं ॥ २ ॥
इन पंचों जगत नचावा, इन पंच सबनि कौं षावा ।
ए पंच प्रबल अति भारी, कोउ सकै न पंच प्रहारी^२ ॥ ६ ॥

१—अनाहद नाद से अभिप्राय है जो समाधि अवस्था में होता है ।

२—दमन करे ।

ए पंचौं पोवै लाजा, ए पंचौं करहिं अकाजा ।
ए पंच पंच दिशि दैरै, ए पंच नरक में बोरै ॥ ७ ॥

दोहा छंद

पंचौं किनहु न फेरिया, बहुते करहिं उपाइ ।
सर्प सिंह गज बसि करै, इंद्रिय गही न जाइ ॥ ११ ॥

[इन पांचों इंद्रियों के वशीभूत होकर मनुष्य पाखंडी साधुओं का भेष बनाकर कोई तो पंचाग्नि से, कोई चौड़े बैठकर वर्षा, शीत, और घाम से, कोई निरंतर खड़े रहने से, कोई मौनादि व्रत धारण करने से देह को वृथा कष्ट देते हैं, और कोई हिमालय में गलकर, और काशी करोतादि से देह को नाश करते हैं । वास्तव में तो पांचों इंद्रियों को मारना यही सच्चा तप है । जिसने इनको जीत लिया है उसने सबको जीत लिया है । जिसने इनको दमन किया है वही सच्चा साधु है, यती है, पीर है और वही भगवान् का प्रिय है । इंद्रियों को दमन करने की विधि भी कह दी गई है ।]

चंपक छंद

कोउ साधू यह गति जानै, इंद्रिय उलटी^१ सब आनै ।
इनि श्रवना सुने हरिगाथा, तब श्रवना होहिं सनाथा ॥३७॥
हरि दर्शन कौं दृग जोवै, ए नैन सफल तब होवै ।
हरि चरण कमल रुचि घ्राण, यह नासा सफल बषाण ॥३८॥
इहिं जिह्वा हरि गुन गावै, तब रसना सफल कहावै ।
इहिं अंग संत को भेटै, तब देह सकल दुष भेटै ॥३९॥

१—अंतर्मुखी करे, विषयों से खींचकर अंतर्गामी करे । भगवत् संबंधी विषय को इनका अवलंब बना दे ।

कछु और न आनै चीतै^१, ऐसी बिधि इंद्रिय जीतै ।
 यह इंद्रिन कौ उपदेशा, कोउ समुझै साधु संदेशा^२ ॥४०॥
 यह पंच इंद्रिन कौ ज्ञाना, कोउ समुझै संत सुजाना ।
 जो सीपै सुनै रु गावै, सो राम भक्ति फल पावै ॥४१॥
 यह संवत सोलह सैका, नवका पर करिए एका^३ ।
 सावन बदि दशमी भाई, कविवार कह्या समुझाई ॥४२॥

(३) सुख समाधि ग्रंथ

[महात्मा सुंदरदास जी बत्तीस अर्द्ध सवैया वृत्तों में सुख समाधि का निज अनुभव वर्णन करते हैं । जैसा कि सत्याचार्य स्वामी श्री शंकराचार्य आदि वेदांत-प्रवर्तकों ने इस ज्ञान को, सुख समाधि को, अनिर्घचनीय आनंद और अलौकिक सुख बताया है वैसे ही यह महात्माजी भी उसके वर्णन की चेष्टा करते हैं । वस्तुतः “सुख का सोना” समाधिनिष्ठ होना ही है, जैसा कि कहा है, “शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठः” — सुख से कौन सोता है ? जो समाधिनिष्ठ होता है । इस सुख का स्वाद ‘गूँगे के गुड़’ के समान है, घृत के स्वाद को कोई नहीं बता सकता, यद्यपि सब कोई खाते हैं । परम तत्व की प्राप्ति और स्वात्मानुभव का आनंद जब प्राप्त होता है तो स्वयमेव कर्म उसी तरह छूट जाते हैं जैसे साँप की केचुली । वह अंतरवृत्ति और मस्ती कुछ अलबेली ही होती है । यही सबसे ऊँची वस्तु है, और घने मोल की वस्तु है, कि जिसके मिल जाने पर वा जिसकी प्राप्ति के अर्थ संसार तुच्छ समझा

१—चित्त में । २—उपदेश की सैन । ३—संवत् १६६१, श्रावण बदि १०, शुक्रवार । ४—शंकराचार्यकृत प्रश्नोत्तर माखिका ।

जाकर छोड़ दिया जाता है । नमूने के तौर पर स्वामी सुंदरदासजी इस सुख को कैसा वर्णन करते हैं सो दिखाते हैं—]

अर्द्ध सवइया छंद

आत्म तत्व विचार निरंतर कियौ सकल कर्म को नाश ।
 घी^१ सौं घौंटी रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ ५ ॥
 कौण करै जप तप तीरथ व्रत कौण करै यम नेम उपास ।
 घी सौं घौंटी रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ ७ ॥
 अर्थ धर्म अरु काम जहाँ लों मोक्ष आदि सब छाड़ी आस ।
 घी सौं घौंटी रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ १२ ॥
 बार बार अब कासौं कहिए हूवौ हृदय कँवल विगास ।
 घी सौं घौंटी रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ २० ॥
 अंधकार मिटि गयौ सहज ही बाहरि भीतरि भयौ उजास ।
 घी सौं घौंटी रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ २१ ॥
 जाकौं अनुभव होइ सुजाणै पायौ परमानंद निवास ।
 घी सौं घौंटी रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ २४ ॥

(४) स्वप्नप्रबोध ग्रंथ

[इस स्वप्नप्रबोध ग्रंथ में स्वामी सुंदरदासजी ने यह दिखलाया है कि जैसे कोई मनुष्य सोता हुआ स्वप्न में अनेक पदार्थ और विचित्र

१—घृत का जैसा अनिर्घचनीय आस्वादन होता है और उसके खाने से जो आनंद की वृत्ति होती है । घृत का धोरा मुख, गले और पेट में बहुत काल तक रहता है । वैसाही समाधि का सुख प्रतीत होता है ।

बातें देखता है और जब तक स्वप्न रहता है सबको सत्य और यथार्थ समझता है, परंतु जब जागता है तो जागृत अवस्था की अपेक्षा स्वप्न अवस्था को मिथ्या समझता है क्योंकि स्वप्न में जैसा भासता था वैसा जागृत में विद्यमान नहीं मिलता, वैसे ही वह स्थूल संसार परम तत्त्व रूपी जागृत अवस्था प्राप्त होने पर सापेक्षतया स्वप्न सा मिथ्या वा जादू की भाँति अयथार्थ प्रतीत होता है । जिनको अंतर्दृष्टि वा लिंग-शरीर वा कारण-शरीर की सिद्धि प्राप्त हो जाती है उन ही को इस बात का आभास होने लग जाता है, फिर जिनको परम शुद्ध तत्त्व निजानंद अवस्था मिल जाती है उनको तो क्यों नहीं हस्तामलकवत् दिखता होगा । अब स्वामीजी की उक्ति का सार देने हैं ।]

दोहा छंद

स्वप्न मैं मेला भयौ स्वप्न मैंहि बिछोह ।
 सुंदर जाग्यौ स्वप्न ते, नहीं मोह निर्मोह ॥ १ ॥
 स्वप्न मैं राजा कहै, स्वप्न ही में रंक ।
 सुंदर जाग्यौ स्वप्न ते, नहीं साथरो^१ प्रयंक ॥ ५ ॥
 स्वप्न चौरासी भ्रम्यौ, स्वप्न जम की मार ।
 सुंदर जाग्यौ स्वप्न ते, नहीं डूब्यौ नहीं पार ॥ ११ ॥
 स्वप्न मैं सुख पाइयौ, स्वप्न पायौ दुःख ।
 सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, ना कछु दुःख न सुख ॥ १५ ॥
 स्वप्न मैं यम नेम ब्रत, स्वप्न तीरथ दान ।
 सुंदर जाग्यौ स्वप्न ते, एक सत्य भगवान ॥ १६ ॥

स्वप्नै में भारत भयौ, स्वप्नै यादव नाश ।
 सुंदर जाग्यौ स्वप्नै ते, मिथ्या बचन विलास ॥२४॥
 स्वप्न सकल संसार है, स्वप्ना तीनहु लोक ।
 सुंदर जाग्यौ स्वप्न ते, तब सब जान्यौ फोक^१ ॥२५॥

(५) वेदविचार ग्रंथ

[स्वामी सुंदरदासजी ने २१ दोहों में वेद भगवान् को त्रिकांड रूप वृक्ष के रूपक में ऐसा उत्तम वर्णन किया है और उस वृक्ष के कर्म रूपी पत्र, भक्ति रूपी पुष्प, ज्ञान रूपी फल ऐसी सुंदरता से लगाकर दिखाए हैं कि उसकी अधिक काट छांट करना मानों उस वृक्ष की शोभा बिगाड़ना है । इसलिये हम इसका अधिकांश उद्धृत करते हैं ।]

दोहा छंद

वेद प्रगट ईश्वर बचन, तामहिं फेर न सार ।
 भेद^२ लहै सद्गुरु मिलें, तब कछु करै विचार ॥ २ ॥
 वेद वृक्ष^३ करि वर्णियाँ, पत्र पुष्प फल जाहि ।
 त्रिविध^४ भांतिशोभितसघन, ऐसो तरु यह आहि ॥ ४ ॥

१-तुच्छ, तृण । (मारवाड़ में फोक एक छुद्र पोडा वा घास होता है जिसको ऊँट खाते हैं और जिसके फूल का साग होता है, परन्तु यह घास बलहीन होता है) । फोकट = मिथ्या, यह अर्थ भी है । २-गुह्य और ठेठ पते की बातें बिना सच्चे गुरु के प्राप्तव्य नहीं । ३-वेद को प्रायः वृक्षरूप शास्त्रों में वर्णन किया है । ४-त्रिकांडवेद, विष्णुसंहिता है-कर्म, उपासना और ज्ञान ।

एक बचन हैं पत्र सम, एक बचन हैं फूल ।
 एक बचन हैं फल समा, समभि देषि मति भूल ॥ ५ ॥
 कर्म पत्र करि जानिए, मंत्र^१ पुष्प पहिचानि ।
 अंत ज्ञान फल रूप है, कांड तीन यौ जानि ॥ ६ ॥
 विषयो देष्यौ जगत सब, करत अनीति अधर्म ।
 इंद्रिय लंपट लालचो, तिनहिं कहै विधिकर्म ॥ ७ ॥
 जौ इन कर्मनि कौं करै, तजै काम आसक्ति ।
 सकल समपै^२ ईश्वरहिं, तब ही उपजै भक्ति ॥ १६ ॥
 कर्म पत्र महिं नीकसै, भक्ति जु पुष्प सुवास ।
 नवधा विधि निस दिन करै, छांडि कामना आस ॥ १७ ॥
 पोछै बाधा कछु नहिं, प्रेम मगन जब होइ ।
 नवधा कु तब थकि रहै, सुधि बुधि रहै न कोइ ॥ १८ ॥
 तब ही प्रगटै ज्ञान फल, समभै अपना रूप ।
 चिदानंद चैतन्य घन, व्यापक ब्रह्म अनूप ॥ १९ ॥
 वेद वृत्त यौ बरनियौ, याही अर्थ विचारि ।
 कर्म पत्र ताकै लगै, भक्ति पुष्प निर्धारि ॥ २० ॥
 ज्ञान सुफल ऊपर लग्यौ, जाहिं कहै वेदांत ।
 महा बचन निश्चै धरै, सुंदर तब है शांत^३ ॥ २१ ॥

१—यहां मंत्र से उसका कार्य उपासन भी अंगीकृत होगा । २—सुंदर दासजी ने अद्वैतवादी होकर भी कर्म, उपासना को भी कैसा निभाया और आवश्यक कहा है, न कि मूर्ख वेदांतियों की नाईं इन उपयोगी साधनों का तिरस्कार किया है ।

(६) उक्त अनूप ग्रंथ

[२१ दोहों के छोटे से ग्रंथ “उक्त अनूप” में यह दिखलाया है कि शरीर तमोगुण, रजोगुण, सतोगुणान्वित है, आत्मा नित्य मुक्त है, असंग है, केवल भ्रम ही से शरीर में आत्मा का संग माना गया है । जैसे स्थिर प्रतिबिम्ब जल के हिलने से हिलता हुआ दिखता है वैसे ही त्रिगुणात्मक देह में निश्चल आत्मा चंचल सा देख पड़ता है, जड़ के संबंध में चेतन भी ऐसा प्रतीत होता है मानों इसकी चेतन सत्ता खो गई । जब तमोगुण और रजोगुण अथवा इनके साथ सतोगुण मिश्रित रहता है तो उत्तरोत्तर दुष्कर्म, दुःख, उद्यम, सुख और कर्म तथा यज्ञादि शुभ-कर्म की वांछादि उत्पन्न होती हैं, परंतु जब शुद्ध सात्विक वृत्ति उत्पन्न होती है तब कर्म और वासना, क्या इस लोक की और क्या परलोक की, छूट जाती है; यदि वासना रहती भी है तो मुक्ति की । और किसी सद्गुरु को पाकर उससे पूछने पर वह ऐसे शिष्य को उपयुक्त जानकर “भली भूमि में दीजिए तब वह निपजै पेत” इस आधार पर उसको सत्य उपदेश कर देता है और अल्प काल में ही ऐसे शुद्ध हृदय में निज स्वरूप का स्मरण होकर वह कृतार्थ हो जाता है ।]

तासों सद्गुरु यों कह्यो, तू है ब्रह्म अखंड ।

चिदानंद चैतन्य घन, व्यापक सब ब्रह्मंड ॥१५॥

उनि वह निश्चय धारि कै, मुक्त भयौ तत्काल ।

देख्यौ रजु कौ रजु तहाँ, दूरि भयौ भ्रम व्याल^१ ॥१६॥

शुद्ध हृदय में ठाहरै, यह सद्गुरु कौ ज्ञान ।

अजर^२ वस्तु कौ जारि कै, होइ रहै गलतान ॥१७॥

१-सर्प । २-जो वस्तु अक्षय प्रतीत होती थी परंतु वास्तव में ऐसी न थी, जैसे देह वा अहंकार आदि ।

कनक पात्र में रहत है, ज्यों सिंहनि कौ दुद्ध ।
 ज्ञान तहाँ ही ठाहरै, हृदय होइ जब शुद्ध ॥२०॥
 शुद्ध हृदय जाकौ भयो, उहै कृतारथ जानि ।
 सोई जीवन मुक्त है, सुंदर कहत बषानि ॥२१॥

(७) अद्भुत उपदेश ग्रंथ

[मन और इंद्रियों को विषयों से रोकने वा बचाने के लिये जो विलक्षण उपदेश की विधि २७ दोहा छंदों में कही है उसी का नाम “अद्भुत उपदेश” ग्रंथ रखा है ।]

परमात्म सुत आतमा, ताकौ सुत मन धूत^१ ।
 मन के सुत ये पंच^२ हैं, पंचौ भए कपूत ॥ २ ॥
 परमात्म साक्षी रहै, व्यापक सब घट माहिं ।
 सदा अखंडित एकरस, लिपै छिपै कछु नाहिं ॥ ६ ॥
 ताकौ^३ भूल्यौ आतमा, मन सुत सौं हित दीन्ह ।
 ताके सुख सुख पावही, ताके दुख दुख कीन्ह ॥ ७ ॥
 मनहित बंध्यौ पंच सौं, लपटि गयौ तिन संग ।
 पिता आपनो छाडि कै, रच्यौ सुतन कै रंग ॥ ८ ॥
 ते सुत मद मातै फिरहिं, गनै न काहू रंच ।
 लोक वेद मरयाद तजि, निसि दिन करहिं प्रपंच ॥ ९ ॥

पंचौ दैरे पंच दिसि, अपने अपने स्वाद ।

नैनू^१ राच्यौ रूप सौं, श्रवनू राच्यौ नाद ॥ १० ॥

नथवा राच्यौ सुगंध सौं, रसनू रस बस होय ।

चरमू सपरस मिलि गयौ, सुधि बुधि रही न कोय ॥ १२ ॥

[ये पाँचों पुत्र पाँच ढंगों के वश पड़ गए, बहुत अधीन और दीन हो गए । किसी पूर्व पुण्य से सद्गुरु आ प्रगटे और “श्रवनू” को समझदार जानकर पास बुलाया और चुपके से कान में कहा कि तुमको ठग लिए फिरते हैं, वे तुम्हें लूटना मारना चाहते हैं, तुम्हारी कुशल नहीं है, जल्दी चेतो और अपने पिता (मन) से शीघ्र जाकर कहो । “श्रवनू” मन के पास आया और उसने उसको सब समाचार सुनाया । मन श्रवनू के साथ सद्गुरु के पास आया और उसने प्रार्थना की कि लुटेरों से बचाइए । सद्गुरु ने कहा कि यह श्रवनू तुम्हारा पुत्र तो ठीक है तुम्हारे अन्य ४ पुत्र कुपूत हैं उनको बुलाकर समझाओ कि एकमत होकर रहें और एक ठौर बैठें तो ठगों से छूट जायँ । उपाय यह है कि “नैनू” तो श्रीहरि के दर्शन में लगे तो “रूप” ठग भाग जाय, और “नथवा” हरिचरण कमलों की सुवास लिया करे तो “गंध” ठग जाता रहे, और “रसनू” हरि नाम को रटा करे तो “स्वाद” ठग चला जाय; और “चरमू” भगवत् से मिलने की रुचि रखा करे तो “स्पर्श” ठग पास न आवे और “श्रवनू” हरिचर्चा करे तो “नाद” ठग भाग जाय । इस उपाय से पुत्रों और पिता ने मिल हरि का भजन किया तो पाँचों ठगों से बच गए और गुरु ने प्रसन्न होकर निर्मल ज्ञान बताया ।]

तब सद्गुरु इनि सबनि कौं, भाष्यौ निर्मल ज्ञान ।

पिता पितामह परपिता, धरिए ताकौ ध्यान ॥ ५० ॥

१-इंद्रियों के ऐसे नाम मनुष्यों के पुत्रों के नामों से समोच्चार बनाकर दिए हैं ।

तब पंचाँ मन सौ मिलै, मन आतम सौ जाइ ।
 आतम पर आतम मिलै, ज्यौं जल जलहिं समाइ ॥५३॥
 अपने अपने तात सौ, बिछुरत है गए और ।
 सद्गुरु आप दया करी, लै पहुँचाए ठौर ॥५४॥
 प्रसरे हुए शक्तिमय, संकोचे शिव होइ^१ ।
 सद्गुरु यह उपदेश करि, किए वस्तुमय^२ सोइ ॥५५॥
 जैमैं ही उत्पति भई, तैसैं ही लयलीन ।
 सुंदर जब सद्गुरु मिले, जो होते सां कीन ॥५६॥

(८) पंच प्रभाव ग्रंथ

[यह छोटा सा ३० दोहों का ग्रंथ इस बात को दिखलाने को है कि भक्ति ब्रह्म की मानों पुत्री है और माया उस पुत्री की दासी है । जो पुरुष भक्ति से संबंध रखते हैं वे तो माना जाति में हैं और जो दासी से, वे जाति बाहरे ही हैं । तीनों गुणों के अनुसार भक्ति तीन प्रकार की, उत्तम, मध्यम, अधम होती है और चौथी अधमाधम गति जगत वा संसारी मायालिस पुरुषों की है । इन चारों में ऊपर शिरोमणि गति तुरीयातीत ज्ञानी की है । इस प्रकार पंच प्रभाव हैं । इनमें ज्ञानी सर्वोत्तम है । वह माया के गुणों से अलिप्त और असंग रहता है ।]

१-इस दार्शनिक युक्ति को विचारे और उच्चतम दर्शन की युक्ति को भी याद करे । भारत के विद्वानों में ये बातें स्वाभाविक सी होती हैं । आकुंचन प्रसारण का नियम स्थूल में ही नहीं सूक्ष्म में भी है । मनोनिरोध योग है सो पातंजल मुनि कितना पहले कह गए । यहाँ शक्ति = माया, सृष्टि । शिव = ब्रह्म, निर्गुण वस्तु । २-वस्तु = निर्गुण परात्पर परमात्मा ।

देह प्राण कौ धर्म यह शीत उष्ण चतुर् व्यास ।

ज्ञानी सदा अलिप्त है ज्यों अलिप्त आकास ॥२६॥

(८) गुरुसंप्रदाय ग्रंथ

इस ग्रंथ में प्रतिलोम रीति से अर्थात् स्वयं अपने आपसे लगा-
कर सुंदरदासजी ने अपने आदि-गुरु ईश्वर तक गुरुपरंपरा देकर अपनी
ब्रह्मसंप्रदाय का, किसी के प्रश्न के उत्तर में, परिचय दिया है । यह
प्रणाली अन्य किसी भी स्थल में नहीं मिलती । इसको दोहा चौपाई
में वर्णन किया है जिनकी संख्या ५३ है । प्रारंभ में स्वामीजी ने घोसा
नगरी में दादूजी के आने पर उनसे कैसे उपदेश ग्रहण कर शिष्यत्व को
पाया सो भी लिखा है ।]

प्रथमहिं कहौ अपनी बाता ।

मोहि मिलाया प्रेरि विधाता ।

दादूजी जब चौसह आए ।

बालपनै हम दरसन पाए ॥ ६ ॥

तिनके चरननि नायो माथा ।

उनि दीयो मेरे सिर हाथा ।

स्वामी दादू गुरु है मेरी ।

सुंदरदास शिष्य तिन कैगै ॥ ७ ॥

जयगोपालकृत 'दादू जन्मलीला परिचय', चतुरदासकृत 'धंभा
पद्धति', राघवदासकृत 'भक्तमाल' (जिसमें दादूजी की ब्रह्मसंप्रदाय का
भी विशेष ब्योरा है), हीरादासकृत 'दादूरामोदय' (संस्कृत का ग्रंथ)
इत्यादि में यह नामावली कुछ भी नहीं है ।

[दादूजी के गुरु वृद्धानंद* हुए। वृद्धानंद के गुरु कुशलानंद। आगे जो विस्तार से नामावली दी है वह इस प्रकार है—वीरानंद, धीरानंद, लब्ध्यानंद, समतानंद, क्षमानंद, तुष्टानंद, सत्यानंद, गिरानंद, विद्यानंद, नेमानंद, प्रेमानंद, गलितानंद, योगानंद, भोगानंद, ज्ञानानंद, निःकलानंद, पुष्कलानंद, अखिलानंद, बुद्ध्यानंद, रमतानंद, अब्ध्यानंद, सहजानंद, निजानंद, बृहदानंद, शुद्धानंद, अमितानंद, नित्यानंद, सदानंद, चिदानंद, अद्भुतानंद, अक्ष्यानंद, उजागर, अच्युतानंद, पूर्णानंद, ब्रह्मानंद। इसमें सुंदरदासजी से लगाकर ब्रह्मानंद तक ३८ नाम हैं। ब्रह्मानंद से चलने से ब्रह्मसंप्रदाय कहाई। यह सुंदरदासजी के कहने का अभिप्राय है।]

परंपरा परब्रह्म तै' आयौ चलि उपदेश।

सुंदर गुरु तै' पाइए गुरु बिन लहै न लेश ॥ ४८ ॥

(१०) गुन उत्पत्ति† नीसानी ग्रंथ

[इस छोटे से ग्रंथ में २० नीसानी छंदों से त्रिगुणात्मक सृष्टि का प्रसार, ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिगुण, मूर्ति, इंद्र और सुर, असुर, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, विद्याधर, भूत, पिशाच आदि की रचना, चंद्रमा, सूरज दो दीपक, नभ के वितान में तारों का जड़ाव, सात द्वीप नौ खंड में दिन रात की स्थापना, सागर और मेरु आदि अष्टकुली पर्वत जिनसे अनेक नदियों का निकास, अठारह भार वनस्पति और अनेक प्रकार के फल फूल और समय समय पर मेघों से पानी का बरसना, मनुष्य पशु

* जयगोपाल कृत 'दादूपरची' में इनका उल्लेख है।

† 'नीसानी' शब्द दो अर्थों में लगाया गया है—एक तो छंदनाम, दूसरे नीसानी (निशानी) = पहिचान, लक्षण।

पक्षी आदि, स्वेदज, जरायुज, अंडज, उद्भिज, खेचर, भूचर, जलचर, अगणित कीट पतंग, चौरासी लाख योनि की जीवाजून आदि सृष्टि उस कर्तार ने बैकुंठ से लगाकर शेषनाग पर्यंत विस्तार से बनाई है। इस सृष्टि को तो बना दिया और आप छुपकर सबमें व्यापक होकर भी प्रगट नहीं होता है परंतु फिर भी वह चेतन शक्ति घट घट में “छानी” नहीं रहती। यह पदार्थों के “हलन चलन” आदि से जाना जाता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि वह सब कुछ करता है, फिर भी लिप्त नहीं होता।]

छंद नीसानी

आपुन बैठे गोपि हूँ, व्यापक सब कानी^१ ।
 अद्ध^२ उर्द्ध दश हूँ दिशा, ज्यों शून्य समानी ॥ १८ ॥
 चेतनि शक्ति जहाँ तहाँ, घट घट नहिं छानी ।
 हलन चलन जाते भया, सो है सैनानी^३ ॥ १९ ॥
 जड चेतन द्वे भेद हैं, ऐसै समुझानी ।
 जड उपजै बिनसै सदा, चेतन अप्रवानी^४ ॥ २० ॥
 लिपै छिपै नहीं सब करै, जिन मंड मंडानी ।
 सुंदर अद्भुत देखिए, अति गति हैरानी^५ ॥ २१ ॥

१-ओर, तरफ । २-अधः, नीचे । ३-निशानी, पहिचान । ४-अकार वहाँ हस्त है । अप्रमान्य जिसको बाह्य युक्तियों से प्रमाणित वा सिद्ध नहीं कर सकते । ५-है और प्रगट नहीं, करता है और लिप्त नहीं, और बुद्ध्यादि से अग्राह्य है । इससे आश्चर्य्य है ।

(११) सद्गुरु महिमा नीसानी ग्रंथ

[२० नीसानी छंदों में सुंदरदासजी ने गुरु की महिमा को वर्णन किया है। सुंदरदासजी का काव्यकल्लोल सबसे अधिक दो स्थानों में देखने में आता है। एक तो गुरु की महिमा और दूसरे ब्रह्म वा ब्रह्मानंद के वर्णन में। यहाँ प्रत्येक नीसानी छंद उनके चित्त का उद्रेक प्रगट करता है वा सद्गुरु के सच्चरित्र का चित्र सा खँच देता है।]

* नीसानी छंद

राम नाम उपदेश दे, भ्रम दूर उड़ाया ।
 ज्ञान भगति वैराग हू, ए तीन दृढ़ाया ॥ ३ ॥
 माया मिथ्या साँपिनी, जिनि सब जग खाया ।
 मुख तै' मंत्र उचारि कै', उनि मृतक^१ जिवाया ॥ ५ ॥
 रवि ज्यों प्रगट प्रकाश में, जिनि तिमिर मिटाया ।
 शशि ज्यों शीतल है सदा, रस अमृत पिवाया ॥ ८ ॥
 अति गंभीर समुद्र ज्यों, तरवर ज्यों छाया ।
 बानी^२ बरिषै मेघ ज्यों, आनंद बढ़ाया ॥ १० ॥
 चंदन ज्यों पलटै बनी, द्रुम नाम गमाया ।
 पारस जैसै' परस तै', कंचन हूँ काया ॥ ११ ॥

॥ 'नीसानी' छंद—२३ मात्रा । १३ + १० का विश्राम । अंत में गुरु हो । इसको छंदाण्व में 'दृढ़पट' लिखा है । (छंदरत्नाबलि)

१—ज्ञानहीन पुरुष को 'ईशोपनिषद्' में आत्महन कहा है सो मृतक समान ही है । २—वास्तव में 'दादूवाणी' ऐसी ही गुणमयी है ।

कामधेन चिंतामनी, तरु कल्प^१ कहाया ।
 सबकी पूरै कामना, जिनि जैसा ध्याया ॥ १३ ॥
 सद्गुरु महिमा कहन कौं, मैं बहुत लुभाया ।
 मुख्य में जिभ्या^२ एकही, ताते पछिताया ॥ २० ॥

(१२) बावनी ग्रंथ

[पुराने कवियों में अकारादि क्रम से बावनी, ककहरा, कक्का, वा 'धारहखड़ी' नाम देकर एक छंद काव्य लिखने की प्रणाली थी । सुंदर-दासजी के ग्रंथों में भी यह बावनी प्रसिद्ध है । इसमें ५२ अक्षर इस प्रकार हैं, 'ॐ' न, मः, सि, ङ, के पांच और 'अ' से लेकर 'अः' तक (ऋ, ॠ, लृ, ॡ, छोड़कर) १२ और 'क' से लेकर 'ह' तक ३३, और 'च' और 'ज' (त्र को छोड़कर) २, इस प्रकार ५२ होते हैं । इस बावनी में ब्रह्म वर्णन और कई अध्यात्म पक्ष की बातें तथा नीति सम्मिलित वाक्य आ गए हैं । रचना में चमत्कार यह है कि अर्थ की गहनता के अतिरिक्त छंद में प्रायः ऐसे शब्द लाए गए हैं जिनके आद्यक्षर वे ही हैं जिनसे छंद प्रारंभ होता है । उदाहरणार्थ थोड़े से छंद देते हैं ।]

चौपई छंद

अकह^३ अगह^४ अति अमित अपारा ।

अकल^५ अमल अज अगम विचारा ॥

अलष अभेव^६ लखै नहिं कोई ।

अति अगाध अविनाशी सोई ॥ १० ॥

१-कल्पतरु = कल्पवृक्ष । २-जिह्वा = जवान । ३-कहने में न आ सके-अनिर्वाचनीय । ४-ग्रहण, प्राप्त करने योग्य नहीं । ५-माया-समान घटने बढ़ने की कला से रहित, निरवयव । ६-भेदरहित-सजातीय विजातीय स्वगत भेदशून्य ।

इत उत जित कित है भरपूरा ।
 इडा पिंगला ते^१ अति दूरा ॥
 इच्छा रहित इष्ट कौ ध्यावै ।
 इतनी जानै तौ इत पावै ॥ १२ ॥
 कका करि काया मैं वासा ।
 काया माहें कँबल प्रकासा ॥
 कँबल माहि करता कौ जोई ।
 करता मिले कर्म नहिं कोई ॥ २२ ॥
 जज्जा जाणत जाणत जाणै ।
 जतन करै तौ सहज पिछाणै ॥
 जोग जुगति तन मनहिं जरावै ।
 जरा न व्यापै ज्योति जगावै ॥ २६ ॥
 टट्टा टेरि कह्या गुरु ज्ञाना ।
 टूक टूक हूँ मरि मैदाना^१ ॥
 टगय^२ न टेक टूट नहि जाई ।
 टलै काल औरहिं कौं षाई ॥ ३२ ॥
 थथ्याथावर जंगम थाना ।
 थिरक^३ रह्या सब माहि समाना ॥
 थिरसु होइ थकियौ जिनि राहा ।
 थाहत थाहत मिलै अथाहा ॥ ३८ ॥

१-विषयादि शत्रुओं से ज्ञान के क्षेत्र में । २-मिटै, पिघलै ।

३-ठहरा हुआ ।

मम्मा मरि ममता मति आनै ।
 मोम होइ तब मरम हि जानै ॥
 मरदहि मान मैल होइ दूरी ।
 मन में मिलै सजीवनि मूरी^१ ॥ ४६ ॥
 रर्रा रती रती समझाया ।
 रे रे रंक सुमर लै राया ॥
 रमिता राम रह्या भरपूरा ।
 राषि हृदै पण^२ छाडि न सूरा ॥ ४८ ॥
 ससा सेत पीत नहि स्यामा ।
 सकल सिरोमनि जिसका नामा ॥
 संस्कार ते सुमिरै कोई ।
 सोधे मूल सुखी सो होई ॥ ५१ ॥
 हहा हँण हार पर राषै ।
 हरषि हरषि करि हरि रस चाषै ॥
 हाल हाल होइ हेत लगावै ।
 हँसि हँसि हंसै हंस मिलावै ॥ ५४ ॥
 करत करत अक्षर^३ का जौरा ।
 निशा^४ वितीत प्रगट भयौ भोरा ॥
 सुंदरदास गुरु मुषि जाना ।
 पिरै^५ नहीं तासौ मन माना ॥ ५७ ॥

१-जड़, जड़ी (औषधि) । २-प्रण, व्रत । ३-यहाँ अक्षर शब्द का श्लेष है—वर्ण (आंक) और अक्षय ब्रह्म । ४-निशा = अज्ञान । ५-क्षर शब्द के साथ इसका जोड़ सुंदर है । ब्रह्म सदा अक्षर है ।

दोहा छंद

चर माह अचर लष्या, सत् गुरु के जु प्रसाद ।

सुंदर ताहि विचार तै, छूटा सहज विषाद^१ ॥ ५८ ॥

(१३) गुरुदया षट्पदी ग्रंथ

[भगवत्पादाचार्य श्रीशंकराचार्य जी की षट्पदी जैसे प्रसिद्ध है वैसे ही दादूपंथियों और सुंदरदासजी के ग्रंथों के पढ़नेवालों में सुंदरकृत षट्पदी है । दोनों का विषय भिन्न है, सुंदरदासजी ने दादूजी के शिष्य होने से जो लाभ प्राप्त किया उसको वर्णन करते हुए दादूजी के सिद्धांत-ज्ञान और उनकी दया और महिमा का वर्णन कर दिया है । सुंदरदासजी ने १२ अष्टक बनाए जो इससे आगे आते हैं । यदि षट्पदी को भी इस संख्या में मिलावे तो १३ होते हैं, क्योंकि यह अष्टकों की चाल से मिलती जुलती सी है । षट्पदी छः त्रिभंगी छंदों में है । छोटी होने से यहाँ सारी उद्धृत करते हैं । और ३।४ छोड़कर अष्टकों के केवल एक एक दो दो नमूने ही देते हैं कि जिनसे उनका कुछ कुछ स्वाद जाना जा सके । १२ अष्टकों में से 'भ्रम-विध्वंस में' दादूजी के मत की महिमा है । और 'गुरुकृपा' में दादूजी का स्तोत्र ही है, ऐसे ही 'गुरुदेव महिमा' भी स्तोत्र ही है जिससे लोग गुरु को कैसा मानते हैं, यह प्रगट होता है और 'गुरु उपदेश' में दादूजी के उपदेश के महत्व को कहते हुए उनकी स्तुति कही गई है । ये चार अष्टक तो गुरु संबंधी हुए । 'रामजी', 'नाम' और 'ब्रह्मस्तोत्र' परमात्मा के नाम और ध्यान संबंधी हैं । 'आत्मा अचल' में आत्मा के अचल-

तादि लक्षण वर्णित हैं । 'पंजाबी' में पंजाबी बोली में परमज्ञान का उस ढंग से निर्देश है जैसे 'वेदांत के घर' पंजाब में लोग वर्णन किया करते हैं, सूफियों की सी चमक है । 'पीरपुरीद', 'अजब ख्याल' और 'ज्ञानमूलना' ये तीनों प्रायः सद् फारसी मिश्रित और 'रि'दाना तर्ज' पर कहे गए हैं और बड़े ही चटकीले हैं । भाषा में, संस्कृत के ढंग पर, स्तोत्रादि लिखकर भाषा की महिमा को स्वामी जी ने बढ़ा दिया है तथा संस्कृत न जाननेवालों का उपकार किया है ।]

दोहा छंद

अलष^१ निरंजन^२ बंदि कै गुरु दादू के पाइ ।
 दोऊ कर तब जोरि करि संतन कौं सिर नाइ ॥ १ ॥
 सुंदर तोहि^३ दया करी सतगुरु गहियौ हाथ ।
 माता^४ था अति मोहि मैं राता^५ विषया साथ ॥ २ ॥

त्रिभंगी छंद

तौ^६ मैं मतमाता विषयाराता बहिया जाता इम वाता^७ ।
 तब गोते षाता बूडत गाता होती घाता पछिताता ॥
 उनि सब सुखदाता काट्यौ नाता^८ आप विधाता गहिलेला^९ ।
 दादू का चेला चेतनि भेला^{१०} सुंदर मारग बूभेला^{११} ॥ १ ॥

१-लक्ष्य के अयोग्य—जिसको साक्षात् वा लक्ष्य में नहीं लाया जा सकै । २-निर्मल । ३-तुम्हको, तुम्ह पर । (यह प्रयोग विशेष ही है) । ४-मत्त-मस्त । ५-रक्त-रत-लीन । ६-यहाँ 'अथ' शब्द का सा प्रयोजन है—फिर, अब । ७-वात में वा हवा में अर्थात् अन्य मतांतरों की । ८-संसर्ग । ९-पकड़ा । १०-मिला हुआ । ११-समझा हुआ ।

तौ सतगुरु^१ आया पंथ बताया ज्ञान गहाया मन भाया ।
 सब कृत्तम^२ माया यौ समुभाया अलष लषाया सचुपाया ॥
 हैं फिरता धाया उनमुनि^३ लाया त्रिभुवनराया दतदेला^४ ।
 दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूभेला ॥ २ ॥
 तौ माया बट के^५ कालहि भटके^६ लैकरि पटके सब गटके^७ ।
 ये चेटक^८ नटके जानहि तटके^९ नैक न अटके वै सटके^{१०} ॥
 जी डोलत भटके सतगुरु हटके^{११} बंधन घटके काटेला^{१२} ।
 दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूभेला ॥ ३ ॥
 तौ पाई जरिया सिर पर धरिया विष ऊषरिया तन तिरिया ।
 जी अब नहिं डरिया चंचल थिरिया गुरु उच्चरिया सो करिया ॥
 तब उमग्यौ दरिया अमृत भरिया घट भरिया छूटौ रेला^{१३} ।
 दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूभेला ॥ ४ ॥
 तौ देख्यौ सीना^{१४} माँझ नगीना मारग भीना पग हीना ।
 अब है तू^{१५} दीना दिन दिन छीना जल बिन मीना यौ लीना ॥
 जीसौ परवीना रस में भीना अंतरि कीना मन मेला ।
 दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूभेला ॥ ५ ॥

१-दादू दयाल । २-कृत्रिम-मिथ्या । ३-उन्मनि मुद्रा से सिद्धि ।
 ४-दत्तात्रेय समान सिद्धि देनेवाला । ५-टूक टूक कर दिया । तोड़ा ।
 ६-भटक दिया—हटा दिया । ७-सबको गटकनेवाले को । ८-चमत्कार ।
 ९-पारंगत लोग । १०-निकल गए—नहीं रुके । ११-डपटे—रोके ।
 १२-काटे—तोड़े । १३-धार । १४-छाती—दिल—मन । १५-“तू” का
 पाठांतर ‘ते’ । ‘तू’ रहने से ‘दीना’ का अर्थ ‘दिया’ और ‘हैं’ का
 अर्थ ‘मैं’ होगा वा ‘मुझे’ । मुझे दिया सिद्धफल । अथवा ‘तू दीन हो
 जा’ यह अर्थ होगा ।

तौ बैठा छाजं^१ अंतरि गाजं रण में राजं नहिं भाजं ।
 जी कीया काजं जोड़ी साजं तोड़ी लाजं यह पाजं ॥
 उन सब सिरताजं तबहिं निवाजं आनँद आजं^२ अकेला^३ ।
 दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूभेला ॥ ६ ॥

(१४) भ्रमविध्वंस अष्टक

[८ त्रिभंगी छंदों का यह अष्टक है जिनके आदि में २ दोहे और अंत में २ छप्पय हैं । त्रिभंगी छंद का अंतिम पाद “दादू का चेला भरम पछेला सुंदर न्यारा है पेला” यह है । इस अष्टक में यह बात दिखाई है कि अनेक मतों को देखा और खोजा परंतु किसी से तृप्ति न हुई, सबको सदाप पाया । किसी भी मत से भ्रमरूपी तिमिर दूर न हुआ । सद्गुरु “दादू दयाल” के प्रसाद से आत्मज्ञान प्राप्त होकर प्रकाश उत्पन्न हुआ, मतमतांतर के वाद विवाद से छुटकारा मिला ।]

दोहा छंद

सुंदर देष्या सोधि कै, सब काहू का ज्ञान ।
 कोई मन मानै नहीं, बिना निरंजन ध्यान ॥ १ ॥
 षट दर्शन हम षोजिया, योगी जंगम शेष ।
 संन्यासी अरु सेवड़ा^४ पंडित भक्ता भेष ॥ २ ॥

त्रिभंगी छंद

तौ भक्तन भावै दूरि बतावै तीरथ जावै फिरि आवै ।
 जी कृत्तम गावै पूजा लावै रुठ दिढ़ावै बहिकावै ॥

१-सबसे ऊपर बैठकर छाजना सिराहना । २-आज-अब ।

३-न्यारा-भिन्न, अद्वय । ४-जती से बड़े-जैन यती वा साधु ।

अरु माला नावै^१ तिलक बनावै^२ क्या पावै^३ गुरु बिन गैला ।
 दादू का चेला भरम पछेला^४ सुंदर न्यारा हूँ पेला ॥ १ ॥
 तौ ये मति हरे सबहिन करे गहि गहि गेरे बहुतेरे ।
 तब सतगुरु टेरे^५ कानन मेरे जाते फेरे आधेरे ॥
 उन सूर सबेरे उदै किए रे सबै अँधेरे नासेला ।
 दादू का चेला भरम पछेला सुंदर न्यारा हूँ पेला ॥ ८ ॥

(१५) गुरु कृपा अष्टक

[१ दोहा और १ त्रिभंगी छंद इस तरह आठ युग्मों का अष्टक है और अंत में १ छप्पय है । यह दादूजी की दिव्य महिमा का स्तवन है, उनकी रचित वाणी की भी प्रशंसा आ गई है । जिन्होंने दादूजी का जीवनचरित्र वा उनकी वाणी को पढ़ा, सुना और समझा है, जिनको ब्रह्मविद्या का कुछ भी चस्का है और जिन्होंने योगियों और सत्तों की अपार गति का कुछ भी मर्म जाना है वे इन अष्टकों को पढ़ अत्युक्ति नहीं कहेंगे ।]

दोहा छंद

दादू सद्गुरु के चरण, अधिक अरुण^१ अरविंद^२ ।

दुःखहरण तारणतरण, मुक्तकरण सुखकंद ॥ १ ॥

१-नाम अथवा क्रियार्थ में धारै । २-अम पीछे रह गया, छूट गया जिसका । ३-बुलावे-शब्द सुनाया । ४-लाल अथवा अरुणोदय के से प्रकाशवाले । ५-कमल-चरणारविंद ।

(६३)

त्रिभंगी छंद

तौ चरण तुम्हारा प्राण हमारा तारण-हारा भव पोत' ।
ज्यौं गहै बिचारा लगै न वारा बिनश्रम पारा सो होतं ॥
सब मिटै अधारा होइ उजारा निर्मल सारा^२ सुखराशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ १ ॥

दोहा छंद

सद्गुरु सुधा समुद्र हैं, सुधामई हैं नैन ।
नख सिख सुधा स्वरूप पुनि, सुधा सु बरषत बैन ॥ ८ ॥

त्रिभंगी छंद

तौ जिनि की बानी अमृत बषानी संतनि मानी सुखदानी ।
जिनि सुनिकरि प्राणी हृदये आनी बुद्धि थिरानी उनि जानी ॥
यह अकथ कहानी प्रगट प्रवानी नाहिन छानी गंगा सी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनासी ॥ ९ ॥

छप्पय छंद

सद्गुरु ब्रह्म स्वरूप रूप धारहिं जग माहीं ।
जिनके शब्द अनूप सुनत संशय सब जाहीं ॥
उर महिं ज्ञान प्रकाश होत कछु लगे न वारा ।
अंधकार मिटि जाइ कोटि सूरज उजियारा ॥

१-नाव । चरणों को नाव की उपमा देना कवियों का काम ही है । मिलाओ 'विश्वेशपादांबुजदीर्घनौका' इत्यादि । २-सार-तथ्य वस्तु, ब्रह्मज्ञान ।

दादू दयाल दह दिशि प्रगट भगरि भगरि द्वै पष^१ थकी ।
कहि सुंदर पंथ प्रसिद्ध यह संप्रदाय परब्रह्म^२ की ॥ ६ ॥

(१६) गुरुउपदेश अष्टक

[१ दोहा और १ गीतक छंद ऐसे आठ युग्मों का अष्टक है ।
छंद का अंतिम चरण “दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रणाम
है” यह है । यह अष्टक भी गुरु महिमा संबंधी ही है परंतु इसमें
गुरु के ब्रह्मविद्या के उपदेश का वर्णन करते हुए महिमा कही है ।]

दोहा छंद

सुंदर सद्गुरु यौं कहै, याही निश्चय आनि ।
ज्यों कछु सुनिए देषिए, सर्व सुप्र करि जानि ॥ ५ ॥

*गीतक छंद

यह स्वप्न तुल्य दिषाई दिए जे स्वर्ग नरक बभै कहहिं ।
सुख दुःख हर्ष विषाद पुनि मानापमान सबै गहहिं ॥
जिनि जाति कुल अरु वर्ण आश्रम कहे मिथ्या नाम हैं ।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रणाम हैं ॥ ५ ॥

१—हिंदू और मुसलमान । २—दादूजी की संप्रदाय का नाम ब्रह्म-
संप्रदाय भी है । इससे माध्वी संप्रदाय को न समझा जावे । ब्रह्म-
संप्रदाय कहे जाने के दो कारण हैं—एक तो केवल ब्रह्म की उपासना
है, दूसरे दादूजी के गुरु वृद्धानंद का साक्षात् श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप होना
जन्मलीला में लिखा है ।

यह ‘हरिगीतिका’ छंद है २८ मात्राओं का, १६ + १२ पर विभाम ।

(१७) गुरुदेव महिमा स्तोत्र अष्टक

[आठ भुजंगप्रयातों का यह अष्टक है, आदि अंत में दो दो दोहे भी हैं । केवल गुरु (दादूजी) की महिमा का स्तवन है ।]

दोहा

परमेश्वर अरु परम गुरु, दोऊ एक समान ।

सुंदर कहत विशेष यह, गुरुते पावै ज्ञान ॥ १ ॥

छंद भुजंगप्रयात

प्रकाशं स्वरूपं हृदै ब्रह्मज्ञानं । सदाचार येही निराकार ध्यानं ।

निरीहं निजानंद जाने जुगादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ १ ॥

क्षमावंत भारी दयावंत ऐसे । प्रमाणीक आगे भए संत जैसे ।

गह्यौ सत्य सोई लह्यौ पंथ आदू । नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ ६ ॥

दोहा

परमेश्वर महिं गुरु बसै, परमेश्वर गुरु माहिं ।

सुंदर दोऊ परसपर, भिन्न भाव सो नाहिं ॥ २ ॥

परमेश्वर व्यापक सकल, घट धारें गुरुदेव ।

घट कौं घट उपदेश दे, सुंदर पावै भेव ॥ ३ ॥

(१८) रामजी अष्टक

*मोहनी छंद

आदि तुमही हुते अवर नहीं कोइ जी ।

अकह अति अगह अति वर्णनहिं होइ जी ॥

* यह मोहनी छंद नहीं है किंतु २० मात्रा का विपिनितिलक छंद है जिसमें १० + १० मात्रा पर विश्राम है । अंत में रगण है ।

रूप नहिं रेष नहिं स्वेत नहिं श्याम जी ।
 तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ १ ॥
 प्रथम ही आपुतै मूल माया करी ।
 बहुरि वह कुर्विकरि*त्रिगुन हूँ विस्तरी ॥
 पंच हू तत्त्व ते रूप अरु नामजी ।
 तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ २ ॥
 विधि रजोगुण लिएँ जगत उतपति करै ।
 विष्णु सतगुण लिएँ पालना उर धरै ॥
 रुद्र तमगुण लिएँ संहरै धामजी ।
 तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ३ ॥
 इंद्र आज्ञा लिएँ करत नहिं और जी ।
 मेघ वर्षा करै सर्व ही ठौर जी ॥
 सुर शशि फिरत है आठहू यामजी ।
 तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ४ ॥
 देव अरु दानवा यक्ष ऋषि सर्व जी ।
 साधु अरु सिद्ध मुनि होहि निहगर्व जी ॥
 शेष हूँ सहस्र मुख भजत निःकामजी ।
 तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ५ ॥
 जलचरा थलचरा नभचरा जंतजी ।
 चारिहू पानि के जीव अगिनंत जी ॥

* पाठांतर ' कुरुविकरि ' । ' त्रिविधिकरि ' अर्थात् क्रिया और विकारांतर के अर्थ ।

(६७)

सर्व उपजै^१ षपै^२ पुरुष अरु वाम जी ।
 तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ६ ॥
 भ्रमत संसार कतहू नहीं वोर^३ जी ।
 तीनहूँ लोक में काल को सोर^२ जी ॥
 मनुष तन यह बड़े भाग ते^३ पाम^३ जी ।
 तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ७ ॥
 पूरि दशहूँ दिशा सर्व्व में आप जी ।
 स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहि पाप^४ जी ॥
 दास सुंदर कहै देहु विश्राम जी ।
 तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ८ ॥

(१८) नामाष्टक

१मोहनी छंद

आदि तूं अंत तूं मध्य तूं व्योमवत् ।
 वायु तूं तेज तूं नीर तूं भूमि तत् ॥
 पंच हू तत्त्व तूं देह तै^१ ही करे ।
 हे हरे हे हरे हे हरे हे हरे ॥ १ ॥

१-ओर छोर । २-शोर-जोर शोर । ३-मिलता है । ४-आपका वह स्थान है जहाँ पुण्य और पाप रूपी कर्म रहते ही नहीं । अथवा सब पुण्यमय हो पाप का लेश नहीं रहता । ५-यह 'सृग्विणी' है, ४ रगण का 'मोहनी' नहीं है ।

च्यारिहू पानि के जीव तै' ही सृजे ।
 जोनि ही जोनि के द्वार आए वृजे^१ ॥
 ते सबै दुःख में जे तुम्हें वीसरे ।
 ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे^२ ॥ २ ॥
 जे कछू ऊपजे व्याधिहू आधवे^३ ।
 दूरि तूही करै सर्व जे बाधवे^४ ॥
 वैद तूं औषदी सिद्ध तूं साधवे^५ ।
 माधवे माधवे माधवे माधवे ॥ ३ ॥
 ब्रह्म तूं विष्णु तूं रुद्र तूं वेष^६ जी ।
 इंद्र तूं चंद्र तूं सूर तूं शेष जी ॥
 धर्म तूं कर्म तूं काल तूं देशवे ।
 केशवे केशवे केशवे केशवे ॥ ४ ॥
 देव में दैत्य में ऋष्य में यक्ष में ।
 योग में यज्ञ में ध्यान में लक्ष में ॥
 तीनहूँ लोक में एक तूं ही भजे^७ ।
 हे अजे हे अजे हे अजे हे अजे ॥ ५ ॥
 राव में रंक में साह में चौर में ।
 कीर में काग में हंस में मौर में ॥

१-गण-शरीर त्यागकर । २-(भाषा में) अनुप्रास के मिलाने
 को ऐसा संबोधन दिया गया है । ३-आधि-दुःख । ४-बाधा-
 विकार । ५-साधक । ६-रूप । अथवा प्रधान मुख्य । ७-उपासनीय ।
 ८-अजन्मा ।

सिंह मैं स्याल मैं मच्छ मैं कच्छये ।
 अक्षये अक्षये अक्षये अक्षये ॥ ६ ॥
 बुद्धि मैं चित्त मैं पिंड मैं प्राण मैं ।
 ओत्र मैं बैन मैं नैन मैं घ्राण मैं ॥
 हाथ मैं पाव मैं सीस मैं सोहने ।
 मोहने मोहने मोहने मोहने ॥ ७ ॥
 जन्म तै मृत्यु तै पुन्य तै पाप तै ।
 हर्ष तै शोक तै शीत तै ताप तै ॥
 राग तै दोष तै द्वंद तै है परे ।
 सुंदरे सुंदरे सुंदरे सुंदरे ॥ ८ ॥

(२०) आत्मा अचल अष्टक

[८ कुंडलिया छंदों में आत्मा की अचलता को और जन-साधारण में जो विपरीत ज्ञान हो रहा है उसको लौकिक दृष्टांतों से स्पष्ट कर दिखाया है, यथा आकाश में बादल दौड़ते हैं परंतु चंद्रमा दौड़ता दिखाई देता है इसलिये चंद्रमा को दौड़ता हुआ कहते हैं । दीपक में तेल और बत्ती जलती है परंतु दीपक ही को जलता कहते हैं । इसी तरह अन्य स्थल जानना ।]

कुंडलिया छंद

पानी चलस^१ सदा चलै चलै लाव अरु बैल ।
 पानी चलतो देखिए कूप चलै नहिं गैल ॥

कूप चलै नहिं गैल कहै सब कूवौ चालै ।
 ज्यूं फिरतौ नर कहै फिरै आकाश पतालै ॥
 सुंदर आतम अचल देह चालै नहिं छानी ।
 कूप ठौर को ठौर चलत है चलसरु पानी ॥
 ❀ ❀ ❀ ❀ ❀
 तेल जरै बाती जरै दीपक जरै न कोइ ।
 दीपक जरता सब कहै भारी अचरज होइ ॥
 भारी अचरज होइ जरै लकरी अरु घासा ।
 अग्नि जरत सब कहैं होय यह बड़ा तमासा ॥
 सुंदर आतम अजर जरै यह देह बिजाती ।
 दीपक जरै न कोइ जरत हैं तेलरु बाती ॥ ३ ॥
 बादल दौरै जात हैं दौरत दीसै चंद ।
 देह संग तैं आतमा चलत कहै मतिमंद ॥
 चलत कहै मतिमंद आतमा अचल सदाही ।
 हलै चलै यह देह थापिलै^१ आतम माँही ॥
 सुंदर चंचल बुद्धि समझि ताते^२ नहिं बोरै^२ ।
 दौरत दीसै चंद जात हैं बादल दौरै ॥ ४ ॥
 गंगा बहती कहत हैं गंगा वाही ठौर ।
 पानी बहि बहि जात हैं कहैं और की और ॥
 कहैं और की और परत हैं देखत षाड़ी ।
 गड़ी ऊपली कहैं कहैं चलती कौं गाड़ी ॥

सुंदर आतम अचल देह हल चल है भंगा ।
 पानी बहि बहि जाइ बहै कबहूँ नहि गंगा ॥ ५ ॥
 कोलहू चालत सब कहैं समझ नहीं घट माहिं ।
 पाटि लाठि मकड़ी^१ चलै बैल चलै पुनि जाहिं ॥
 बैल चलै पुनि जाहिं चलत है हाँकनहारौ ।
 पेली घालत चलै चलत सब ठाठ विचारौ ॥
 सुंदर आतम अचल देह चंचल है मोलहू^२ ।
 समझि नहीं घट माहिं कहत हैं चालत कोलहू ॥ ६ ॥



(२१) पंजाबी भाषा अष्टक

[यह पंजाबी बोली में ८ चौपद्या छंदों का अष्टक है । सुंदर-
 दासजी पंजाब में बहुत रहे हैं । इनकी बनावट से स्पष्ट होता है कि
 पंजाबी का इनको कैसा अच्छा अभ्यास था । पंजाब वेदांत का घर
 है । वहाँ चरखा कातनेवाली लुगाइयाँ भी “अहं ब्रह्मास्मि” का गीत
 गाया करती हैं । फिर वहाँ की वाणी की नस नस में वेदांत रस बसा
 रहे इसमें अचरज ही क्या ? पंजाबी भाषा बड़ी प्यारी है । इसमें
 ओज और वीर रस स्वाभाविक है । पंजाबी भाषा के पदों का लालित्य
 भी अकथनीय है । पंजाबी गवैए भी बढ़िया होते हैं । सुंदरदासजी ने
 भी कई पद पंजाबी में बनाए हैं । इस अष्टक में परमात्मा की खोज,
 उसके खोजनेवालों और खोज के फल (अर्थात् जिसको खोजते थे
 वह अपने आप में मिला) इत्यादि बातों का बखान है ।

१-लाठ पर जो कबजे की सी लकड़ी दाबकर फिरती है । २-मूर्ख ।
 (मोलिया का रूपांतर है) ।

चौपइया छंद

बहु दिलदा^१ मालिक दिलदो जाणौं दिल मो^२ बैठा देखै ।
 हुंण^३ तिसनो^४ कोई क्यो^५ करि पावै जिसदै^६ रूप न रेखै ॥
 वै गौस^६ कुतब^७ पैकंबर बककै पीर अवलिया सेवै^८ ।
 भी^९ सुंदरि कहि न सकै कोई तिसनो^{१०} जिसदी सिफ्त^{१०} अल्लेवै ॥ १ ॥
 बहु^{११} भोजनहारा तिसनो^{१२} पूछै जे बाहरि नों दौड़े ।
 बै कोई जाइ गुफा मौ^{१३} बैठे कोई भीजत चौड़े ॥
 भी दिट्टै^{१४} सोक^{१५} हजारनि दिट्टे^{१६} दिट्टे लषु करौड़े ।
 कहि सुंदर भोजु बतावै प्रभुदा वै कोई जगमौं थौड़े ॥ २ ॥
 भी उसदा भोजु करै^{१७} बहुतेरे भोजु तिण्णदै^{१८} बोलै ।
 वह भुछे नौ भुछा समुझावै सो भी भुछा डोलै ॥
 वह जित्थै^{१९} कित्थै^{२०} फिरै^{२१} विचारा फिरि फिरि छिल्लकु^{२२} छोलै ।
 कहि सुंदर अपना बंधुन कपै^{२३} सोई बंधुन षोलै ॥ ३ ॥
 भी भोजे जती तपी संन्यासी सभ्नो^{२४} दिट्टे रोगी ।
 वह उसदा भोजु न पाया कीन्ही दिट्टे ऋषि मुनि योगी ॥

१-का । २-में । ३-और । ४-को । ५-के । ६-कुतब का
 नायब । दाहिना या बायाँ एक दूसरा वली (सिद्ध) । ७-वह वली
 (सिद्ध) जो किसी देश वा स्थान-विशेष का नियामक वा नियंता समझा
 जाता है । ८-शेख-मुसल्मानी आचार्य या महंत । ९-भाई । और-
 फिर । १०-सिफत—गुण । ११-वह-और, फिर । १२-देखे । १३-सैकड़ों
 १४-उनके । १५-इधर उधर-यहाँ वहाँ । १६-छिलका । वृथा काम ।
 १७-काटै । १८-सब ही ।

वै बहुते फिरै उदासी जगमौ बहुते फिरै वियोगी^१ ।
 कहि सुंदर केई विरले दिट्ठे अमृत रस दे भोगी ॥ ४ ॥
 बहु खोजी बिना षोजु नहि निकले षोजु न दृष्ट्यो^२ आवै ।
 पंषीदा षोजु मीनदा मारगु तिसनौं क्यौं करि पावै ॥
 है अति बारीकु षोजु नहि दरसै नहरि^३ कियौं^४ ठहरावै ।
 कहि सुंदर बहुत होइ जब नन्हं नन्हनौं^५ दरसावै ॥ ५ ॥
 भी षोजत षोजत सभु जग हंड्या^६ षोज कियौं नहि पाया ।
 तूं जिसनौं षोजै षोज तुसीमौ सतगुरु षोज बताया ॥
 तैं अपुना आपु सही जब कीता^७ षोज इथा^८ ही आया ।
 जब सुंदर जाग पया^९ सुपनै थौं^{१०} सभु संदेह गमाया ॥ ६ ॥
 भी जिसदा आदि अंतु नहि आवै मध्यहु तिसदा नाहीं ।
 बहु बाहरि भीतरु सर्व निरंतरु अगम अगोचर माहीं ॥
 वह जागि न सोवै षाइ न भुष्या जिसदै धुप्पु न छाहीं ।
 कहि सुंदर आपै आपु अखंडत शब्द न पहुँचै ताहीं ॥ ७ ॥
 वै ब्रह्मा विष्णु महेस प्रलेमौ जिसदी पुसै न रुंही^{११} ।
 भी तिसदा कोई पारु न पावै शेषु सहसफणु मूंहीं^{१२} ॥
 भी यहु नहि यहु नहि यहु नहि होवै इसदै परै सुतूंहीं ।
 वह जो अवशेष रहै सो सुंदर सो तूंहीं सो हूंहीं ॥ ८ ॥

१-वैरागी—योगी । २-हाथ में (आवे) । ३-नजर, दृष्टि । ४-
 किधर को । ५-बारीक-भीणों को । ६-खोजा । ७-किया । ८-यहाँ ।
 ९-पड़ा । १०-से । ११-रोवाँ, बाल, पशम । १२-मुखवाला ।

(२२) ब्रह्मस्तोत्र अष्टक

[आठ भुजंगप्रयात संस्कृत भाषामय छंदों में परमात्मा का विधिनियेधार्थवाची शब्दों में स्तवन है । संस्कृत में ऐसे स्तोत्रों की कुछ कमी नहीं, इससे यहाँ बानगी ही अलम् होगी ।]

छंद भुजंगप्रयात

अखंडं चिदानंद देवाधिदेवं^१ । फणींद्रादि^२ रुद्रादि इंद्रादि सेवं^३ ।
मुनींद्रा कवींद्रादि चंद्रादिमित्रं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं ॥१॥
न छाया न माया न देशो न कालो । न जाग्रन्न स्वप्नं न वृद्धो न बालो ।
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्यं अरम्यं^४ । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं ॥५॥^५

(२३) पीरमुरीद अष्टक

[आठ चामर छंद और एक दोहा छंद का यह अष्टक है । इसमें सूफियों (मुसल्मान वेदांतियों) के ढंग का पीर (मुर्शिद) और मुरीद का स्वल्प परंतु अत्यंत सारपूरित संवाद उर्दूमय भाषा में है । एक तालिब (जिज्ञासु) ने ढूँढ़ते ढूँढ़ते योग्य गुरु पाया, तो गुरु से अपनी अभीष्ट जिज्ञासा की । पीर ने 'मिहर' कर कहा कि 'खूब बंदगी करता रहेगा तो इस सीधी राह से महबूब (इष्टदेव) को पावेगा' । यह हुई 'शरीयत' । फिर पूछा कि कैसे बंदगी करूँ । तो मुर्शिद ने बताया ।]

१-सर्व देवों में बड़ा । २-शेषनाग । ३-सर्वै वा सेव्य । ४-जिसमें बुद्धि आदि रम सकें ऐसा भी नहीं और उसके प्रतिकूल भी नहीं । ५-संस्कृतमय ही कृति है, नितांत संस्कृत बनावट करना स्वामीजी को कभी अभिप्रेत नहीं था । इसी से आधी तीतर आधी बटेर सी बनावट दी गई है कि जिससे दोनों का स्वाद मिले ।

चामर छंद^१

तब कहै पीर मुरीद सौ तूं हिर्सरा बुगुजार^२ ।

यह बंदगी तब होयगी इस नफस कौ^३ गहि मार ॥

भो दुई दिल तैं दूर करिए और कछु नहिं चाह ।

यह राह तेरा तुम्ही भीतर चल्या तूं ही जाह ॥ ३ ॥

[यह हुई 'तरीकत' । फिर मुरीद ने सवाल किया कि इस 'बारीक राह' को बिना देखे कैसे 'बंदा' चल सकता है, आप बता दीजिए । तब पीर ने रास्ता पहचनवाने का 'अमल' बताया । अर्थात् उसी ('इस्मेआज़म') राम नाम की विधि बताई, जिससे उसको पहिचान लेगा और उस ठौर पहुँच जायगा । 'जहाँ अरस^४ ऊपर आप बैठा दूसरा नहिं और' । यह हुई 'मारिफत' । अब मुरीद आगे बढ़ चुका था । 'ठौर' और 'बैठा' ये शब्द सुन बोला कि जो अजन्मा है, जिसके मा बाप नहीं, वह कैसा है सो यथार्थ बताओ और जब वह 'बेवजूद'^५ है तो उसके 'ठौर' होना और उसका बैठना उठना कैसे बन सकते हैं, वह 'बेचून'^६ (अद्वितीय-असम) है और 'बेनमूने' भी है । तब पीर ने यह कहकर मौन धारण किया "कौ कहैगा न कहा न किन हूँ अब कहै कहि कौन" । और मुरीद की ओर देखकर (अर्थात् मर्म की सैन करके) आँखें 'मूँद' लीं । यह हुई 'हकीकत' । इन चारों योग विधियों द्वारा जो स्थान (मंज़िल वा मुकाम) प्राप्त होते हैं वा

- १—यह कामरूप छंद २६ मात्रा का, ६ + ७ + १० पर यति ।
 २—हिर्स = इच्छा । रा = कौ । बुगुजार = छोड़ दे । ३—नफस = अहंकार ।
 'नफसकुशी' अहंकार का मारना । 'तरीकत' का गुर (बुसूल) है । ४—
 अर्श = आकाश, स्वर्ग । ५—अशमीर, अस्थूल । ६—विस्मित, अचरज
 भरा । शून्य ध्यान के अनंतर यह एक अवस्था होती है जब स्वात्म-ज्ञान
 की प्राप्ति होने लगती है । 'आश्रय वन्पश्यति कश्चिदेनं' (गीता) ।

प्रतिपादित होते हैं उनको सूफ़ी लोग (१) 'मलकूत', (२) 'जब-रूत' (३) 'लाहूत' और (४) 'हाहूत' कहते हैं, जैसे चार प्रकार की मुक्तियाँ संस्कृत ग्रंथों में वर्णित हैं ।]

हैरान^१ है हैरान है हैरान निकट न दूर ।

भी सधुन^२ क्यौंकरि कहै तिसकों सकल है भरपूर ॥

संवाद पोर मुरीद का यह भेद पावै कोइ ।

जो कहै सुंदर सुनै सुंदर उही सुंदर^३ होइ ॥ ८ ॥

(२४) अजब खयाल अष्टक

[इस अष्टक में भी सूफियों के ढंग की बातें हैं । इसको ऐसा उर्दू-फारसी-मय शब्दों और वाक्यों से बनाया है कि मुसलमानों को भी इसमें मनोरंजन हो सकता है । कुछ दुर्वेशी का हाल, दुर्वेश उस मंजिल तक कैसे पहुँच सकते हैं, "इरक हकीकी" और उससे "हक़ेताला" का मिलना, उससे गाफिल और हाजिर कौन है, ईश्वर की महिमा और गुणानुवाद का वर्णन है । इसमें १० दोहे और ८ गीतक छंदों के युग्म हैं । कुछ नमूने देते हैं ।]

दोहा छंद

सुंदर जो गाफिल^४ हुआ, तौ वह साईं दूर ।

जो बंदा हाजर हुआ, तौ हाजरां हजूर ॥ ७ ॥

१-विस्मय और आश्चर्य में है । २-बात, वर्णन । ३-उत्तम, सिद्ध । सुंदर सा सिद्ध को पहुँचनेवाला । ४-विस्मृत—भूला हुआ । ईश्वरसिद्धि और इष्टप्राप्ति में निरंतर स्मरण और भजन ही प्रधान साधन है । इसमें भक्ति, ज्ञान, विवेक, विचार आदि योग इसी लिये महात्माओं ने अपने अनुभव से कहे हैं ।

(१०७)

गीतक छंद

हाजर हजूर कहैं गुसंइयां गाफिलों कौ दूर है ।
निरसंध^१ इकलसर^२ आप वोही तालिबां^३ भरपूरि^४ है ॥
बारीक सौ बारीक कहिए बड़ों बड़ा विसाल है ।
यों कहत सुंदर कब्ज^५ दुंदर अजब ऐसा ख्याल है ॥ ६ ॥

दोहा छंद

सुंदर साईं हक्क है, जहाँ तहाँ भरपूर ।
एक उसी के नूर^६ सों, दीसैं सारे नूर ॥ ८ ॥

गीतक छंद

उस नूर तैं सब नूर दीसै तेज तैं सब तेज है ।
उस जोति सौ सब जोति चमकै हेज^७ सों सब हेज है ॥
आफताब^८ अरु महताब^९ तारे हुकम उसके चाल है ।
यों कहत सुंदर कब्ज दुंदर अजब ऐसा ख्याल है ॥ ७ ॥

दोहा छंद

ख्याल अजब उस एक का, सुंदर कहा न जाइ ।
सधुन तहाँ पहुँचै नहीं, थक्या उरें ही आइ ॥ १० ॥

१-निर = नहीं, संध = मिला हुआ । जिसमें अन्य किसी का मिलाव नहीं । अद्वय । २-अफअल के वजन पर अखलस = अत्यंत शुद्ध, पवित्र । ३-ढूँढ़नेवालों को—जिज्ञासुओं, भक्तों को । ४-प्रत्यक्ष है—भक्तों के तो पास ही है । ५-जिसकी दृढ़ता मिट गई है, अथवा जिस पर-मात्मा में दृढ़ का प्रवेश नहीं हो सकता । ६-प्रकाश—ज्योति स्वरूप । ७-यहाँ अस्ति का अर्थ इससे लिया जा सकता है । ८-सूर्य । ९-चांद ।

(२५) ज्ञानभूलना अष्टक

[इस अष्टक में भी वही सूफियों के ढंग का सा मिला जुला रंग आया है। “तस्वबुक्” के अनुसार इस अष्टक में “मारेफत” या “हकीकत” की झलक दरसाई गई है। तालिब (जिज्ञासु) जिस पद्धति से आत्मानुभव की प्राप्ति की तरफ बढ़ता है, अथवा गुरु शिष्य को जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान की सूक्ष्म बातें बताता है, वैसी ही कुछ भेद-भरी बातें संक्षेप में महात्मा सुंदरदासजी ने भी कही हैं, जैसा कि उदाहरणरूप छंदों से प्रगट होगा।]

भूलना^१ छंद

उस्ताद के कदम सिर पै धरौं, अब भूलना पृथ बपानता हूँ ।
 अरवाह^२ में आप विराजता है वह जान का जान^३ है जानता हूँ ॥
 उसही के डुलाए डोलता हूँ दिल पालता बोलता मानता हूँ ।
 उसही के दिषाए मैं देखता हूँ सुन सुंदर यौ पहिचानता हूँ ॥१॥
 कोई योग कहै कोई जाग^४ कहै कोई त्याग वैराग बतावता है ।
 कोई नांव रटै कोई ध्यान ठठै^५ कोई पांजत ही थकि जावता है ॥
 कोई और ही और उपाय करै कोई ज्ञान गिरा^६ करि गावता है ।
 वह सुंदर सुंदर सुंदर^७ है कोई सुंदर होई सो पावता है ॥४॥

१-भूलना छंद २४ वर्ण का, जिसमें ७ सगण और १ यगण होते हैं। (छंदरत्नावली हरिराम कृत) यहाँ इस नियम के अनुसार नहीं है, केवल २४ अक्षर और अंत यगण है। २-आत्माएँ। ‘मलकूत को मकामे अरवाह’ सूफी मजहब में कहा है। ३-जीव, आत्मा। ४-यज्ञ। ‘यज्ञो वै विष्णुः’ यह श्रुति है। ५-ठहरै, ठाठ रखै। ६-वाणी। ७-वह सुंदरों से भी अति सुंदर है। चौथे सुंदर का अर्थ पवित्र, मलरहित है।

नहीं गोस^१ है रे नहीं नैन है रे नहीं मुष है रे नहीं बैन है रे ।
 नहिं ऐन^२ है रे नहिं गैन^३ है रे नहिं सैन^४ है रे न असैन^५ है रे ॥
 नहिं पेट है रे नहिं पीठ है रे नहिं कडवा है नहिं मीठ है रे ।
 नहिं दुश्मन है नहिं ईठ^६ है रे नहिं सुंदर बीठ^७ अदीठ है रे ॥७॥

(२६) सहजानंद ग्रंथ

[यह सहजानंद ग्रंथ २४ चौपाई दोहों में वर्णित है । इसमें यह बात दिखलाई है कि हिंदू और मुसलमान आदि के धर्म की प्रक्रियाओं में कई विधि विधान आडंबर दिए हैं । परंतु बिना अनेक कर्मों के अनुष्ठान के ही तथा बिना ही विधि विधान और आडंबर के भी ज्ञान वा आनंद की सहज में प्राप्ति हो सकती है । उसका एक उपाय यह है कि परमात्मा का निरंतर ध्यान और इसका नाम निरंतर रटना । इस साधन से पूर्वकाल में तथा इस काल में ब्रह्मादिक इंद्रादिक देवता और ऋषि और नारदादिक मुनि और कबीरदास रेदास और दादूदास आदिक तरण-

१-गोश (फारसी) कान, कर्णेंद्रिय । २-३-यह ऐन गैन का मसला सूफी मत में एक समझौती है । ऐन कहने से निगुण तत्त्वरूपता और गैन (नुकता लगाने से) सगुणरूपता का बोध होता है । यह मसला कुरान में भी आया है । “सिफातुल्लाहेलैसा ब ऐनेज़ातिन्” । और कहा है “जब कि इस नुकत-ए-हस्ती को दिया दिल से उठा । ऐन में गैन में क्या फेर है अल्लाः अल्लाः ।” ४-समझौती, इशारा । अनिर्वचनीय होने से केवल अनुभव प्राप्त महात्माओं के इशारों से निर्मल चित्त जिज्ञासु भेद को समझ सकता है । इससे ‘सैन’ रूप है ऐसा कहा है । ५-असैन—सैन रहित । पूर्व से विपरीत । अर्थात् उसको यथार्थ जानने में सैन भी काम नहीं देती । ६-इष्ट, मित्र, इष्टदेव । ७-दृष्ट, प्रत्यक्ष । अदीठ इसका विपरीत ।

तारण हो गए हैं । कुछ उदाहरण भी देते हैं । वेदांत का सिद्धांत है कि सत्य ज्ञान की प्राप्ति जब होती है तो मूल सहित पूर्वसंचित कर्मों का नाश और आगे होनेवाले कर्मों का निरोध आप ही हो जाता है । सहजानंद के कहने में यही तात्पर्य है ।]

चौपाई छंद

चिन्ह बिना सब कोई आए । इहाँ भए दोइ पंथ चलाए ॥
हिंदू तुरक बढ्यो यह भर्मा । हम दोऊँ का छाड्या धर्मा ॥ २ ॥
नां मैं कृत्तम कर्म बषानैं । नारसूल^१ का कलमा^२ जानैं ॥
ना मैं तीन ताग गलि नाऊँ^३ । ना मैं सुन्नत^४ करि बौराऊँ^५ ॥ ३ ॥
सहजै ब्रह्म अग्नि^६ परजारी^७ । सहजि समाधि उनमनी^८ तारी^९ ।
सहजै सहज राम^{१०} धुनि होई । सहजै माँहि समावै सोई^{११} ॥ ४ ॥

दोहा छंद

जोई आरंभ कीजिए, सोई संसय काल ।
सुंदर सहज सुभाव गहि, मेढ्यौ सब जंजाल ॥

चौपाई छंद

सहज निरंजन सब मैं सोई । सहजै संत मिलै सब कोई ॥
सहजै शंकर लागै सेवा । सहजै सनकादिक शुक्रदेवा ॥ १८ ॥

१—पैगबर (यहाँ मोहम्मद) । २—दीन इसलाम का मुख्य मंत्र 'लाइलाहे' इत्यादि । ३—पहनूँ । ४—मुसलमान होने का एक प्रधान संस्कार । ५—बावला बनूँ । ६—ब्रह्मरूपी अग्नि । ७—जलाई, प्रत्यक्ष की । ८—उन्मनिमुद्रा । ९—ताली लगाई उन्मनि से तिर गया । १०—स्मरण सिद्धि से समाधि में अनाहत नाद होने लगा । ११—इस प्रकार ज्ञान ध्यान करनेवाला ।

सोजा^१ पीपा^२ सहजि समाना । सेन^३ धना^४ सहजै रस पाना ॥
जन रैदास^५ सहज कौ वंदा । गुरु दादू सहजै आनंदा ॥२३॥

(२७) गृह वैराग बोध ग्रंथ

[इसी २१ छंदों के ग्रंथ में गृहस्थी और वैरागी का संवाद है । गृहस्थी गृहस्थपने को मुख्य मानता है और वैरागी के दोष बताता है, और वैरागी गृहस्थी में सांसारिकता के अवगुण आरोपण करके गर्हित बताता है । अंततोगत्वा यह निर्णय हुआ कि विरक्त का धर्म गृहस्थ से बना रहता है और गृहस्थ का निस्तारा वैरागी से होता है, जैसा कि नीचे के छंदों में दिखाया है । दोनों के संवाद का सार यह है (१) गृहस्थी ने वैरागी से कहा कि या तो तुमसे परमेश्वर रूठ गया है या तुमको किसी ने बहका दिया है कि तुम विरक्त हुए । तुमने बुरा किया कि बिना विचारे ही घर छोड़ आए क्योंकि जनक वसिष्ठ आदि महात्माओं ने तो घर ही में सब कुछ पाया है, घर में स्त्री पुत्रादिक का जो सुख है उसको छोड़कर जो मुक्ति चाहता है वह जानी नहीं है क्योंकि उनको देखने से सब दुःख भाग जाते हैं, वह आनंद कोटि मुक्तियों में भी नहीं प्राप्त होता । तुमने पुत्र-कलत्र को छोड़ा सही पर तुमसे माया नहीं छूटी । फिर तुम क्या वैरागी हो ? तुम्हारी वासना मिटती

१—सोजजी भक्त भगवान के भक्त थे । २—पीपाजी भक्त रामानंदजी के शिष्य थे । गांगरोन का राज्य छोड़कर भक्ति ज्ञान में तत्पर होकर भगवत्कृपा के भागी हुए । ३—सेनजी भक्त रामानंदजी के तीसरे शिष्य थे । बाँधोगढ़ के राजा के नाई थे । भगवान ने एक बार इनकी एवज का काम किया था । ४—धनाजी भक्त रामानंदजी के शिष्य थे । इनका खेत भगवान ने निपजाया था । ५—रैदासजी भक्त, पूर्व जन्म में और इस जन्म में भी श्रीरामानंदजी के शिष्य थे ।

ही नहीं, हम गृहस्थियों से आशा किया करते हो । चील की ना आकाश में उड़ गए तो क्या हुआ; देखते तो हो भोजनाच्छादन रूप धरती ही की तरफ । याद रखो, गृहस्थी का आश्रम बड़ा है जहाँ जत संत चले आते हैं, और वैरागियों के मन का डाँवाडोन्पना तभी मिटता है जब भोजन पेट में पड़ता है । (२) इसके उत्तर में वैराग ने कहा कि मुझको वैराग्य धारण से ज्ञान का प्रकाश मिला है, संसार को उदासीन देखकर वैरागी हुआ हूँ । प्रायः विरक्त लोगों ने संसार ह छोड़ा है जैसे ऋषभदेव, जड़भरत आदि । घर दुःखों का भांडार है, जे इस अधकृप में पड़ा रहे वह मुक्ति को क्या जाने । सच है, नरक कीड़ा नरक ही को पसंद करता है, चंदन को वह नहीं चाहता । इस शरीर को—जिसमें हाड़, मांस, मेद और मज्जा भरे हैं और नव द्वार निरंतर मल निकला करता है—वैरागी घोर नरक समझता है । माय वही है जिससे आदमी बँधा रहे। वैरागी के कोई वांछा नहीं रहती, उसका वांछाएँ अनायास ही पूरी हो जाती हैं। उसका शरीर इस संसार में जत में कमल के समान निर्लिप्त है । भोजनादि का चाहना शरीर का ध है, इसके लिये गृहस्थी के यहाँ जाना कोई दोष नहीं । वैरागी गृहस्थ के घर आकर जब भोजन पाता है तो गृहस्थी के पंच दोष (चूल्हा चाकी, भुवारी आदि जन्य) छूट जाते हैं ।]

रुचिरा छंदः

विरक्त धर्म रहै जु गृही तें गृहि कौ विरक्त तारै२ जू ।

१—रुचिरा द्वितीय प्रकार में विषम चरण १६ के और सम १४ मात्र के होते हैं (छंदप्रभाकर) । २—गृहस्थ के होने से विरक्त की भिन्न आदि सेवा रक्षा होती है । सभी विरक्त हो जाते तो शीघ्र प्रलय हो जाता । और विरक्त धर्म के मर्म को गृहस्थियों को उपदेश करके उनसे सन्मार्ग पर लाकर भवसागर से पार उतार देते हैं ।

ज्यों बन करै सिंह की रक्षा सिंहसु बनहिं उबारै^१ जू ॥२६॥

विरकत सुतौ भजै भगवंतहिं गृही सु ताकी सेवा^२ जू ।

हय के कान^३ बराबर दोऊ जती सती को भेवा^४ जू ॥३०॥

(२८) हरिबोल चितावनी ग्रंथ

[सुंदरदास जी ने 'हरिबोल चितावनी', 'तर्क चितावनी और विवेक चितावनी' ऐसे तीन छोटे ग्रंथ लिखे हैं और सबैया (सुंदर विलास) में भी 'उपदेश चितावनी' और 'काल चितावनी' ये दो अंग आए हैं । 'चितावनी' शब्द से अभिप्राय सावधान वा चैतन्य करने का है । जिस उपदेश से मनुष्य की भूल, असावधानी, भ्रम वा विपरीत ज्ञान दूर किया जाय उसके लिये 'चितावनी' ऐसा नाम दिया जाता है । इन ग्रंथों में छंदों का चतुर्थ पाद प्रायः ऐसा है जो चितावनी करने में मुख्य प्रयोजन रखता है और वह प्रत्येक छंद में बार बार आता है । यथा, इस प्रथम 'चितावनी' में "हरि बोलौ हरि बोल" यह चरण तीसों दोहों में बराबर आया है । इस चितावनी में मनुष्य-जन्म की महिमा और उसका वृथा खोने का उलाहना और उपहास्य तथा भगवद्भजन सदा प्रत्येक अवस्था में करते रहने का प्रबोधन किया है । इन चितावनियों में एक मुख्य चमत्कार यह भी है कि इनकी भाषा चटकीली और मुहावरेदार है जिसमें प्रायः ऐसे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग है कि जो लोकप्रिय, जनश्रुत वा सर्व-व्यवहृत होते हैं । कुछ दोहे छांट कर देते हैं ।]

दोहा छंद

रचना यह परब्रह्म की, चौराशी भक्तभोल^५ ।

१-सिंह के भय से वन को कोई काट नहीं सकता । २-सेवा करे ।

३-घोड़े के दोनों कान बराबर होना ही शोभा है । ४-भेद । जोड़ा ।

५-झगड़ा, झगड़ ।

मनुष देह उत्तम करी, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१॥
 मेरी मेरी करत है, देषहु नर की भोल^१ ।
 फिरि पीछै पछितायँगे, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥४॥
 हा^२ हा हू हू मैं मुवौ, करि करि घोल मथोल^३ ।
 हाथि कछू आयौ नहीं, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥८॥
 धाम^४ धूम बहुतें करी, अंध अंध धमसोल^५ ।
 धेधक धीना^६ है गए, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१०॥
 मोटे मीर कहावते, करते बहुत ठफोल^७ ।
 मरद गरद में मिलि गए, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१८॥
 तेरौ तेरें पास है, अपने माँहि टटोल ।
 राई घटै न तिल बढ़ै, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥२८॥
 सुंदरदास पुकारि कै, कहत बजाएँ ढोल ।
 चेति सकै सो चेतियौ, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥३०॥

(२६) तर्क चिन्तावनी ग्रंथ

[५६ चौपाई छंदों में मनुष्य की देह की चारों पनोतियों का मनो-
 ग्राही वर्णन और उनमें प्रभु का विस्मरण रहकर मायाजाल के बंधन में
 पड़े रहना और तत्त्वज्ञान को बिसर जाना और ममता की पोद सिर पर
 धरे धरे जन्म भर भ्रमते रहना, अंत में हीन दीन होकर अपनी पाली

१-भूल । २-हँसी उठ्ठा—हलकी बातें । ३-सलाह—मनसूबे ।
 ४-मार धाड़—धामक धड़िया । ५-धमसोल—ऊधम । ६-धीणा—
 बिगाड़ गए । किया कराया सब मिट्टी हो गया । ७-शेखी भरे
 दिखाऊ काम । निरर्थक बढ़ाई ।

मेसी प्यारी देह को छोड़कर चला जाना और फिर इस जन्म के किए पर पकृताना, इत्यादि बातों का सूक्ष्म रीति से ऐसा सुंदर चित्र सुंदर-दास जी ने खींचा है मानो किसी चित्रकार ने “मीनियेचर पेंटिंग” (Miniature painting) का ही काम कर दिखाया है । प्रत्येक चौपाई का चौथा चरण “अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी” ऐसा आया है । कुछ चौपाइयाँ देते हैं ।]

चौपाई छंद

पूरण ब्रह्म निरंजन राया ।
 जिन यह नख सिख^१ सजा बनाया ॥
 ताकहुँ भूलि गए बिभचारी ।
 अइया^२ मनुषहुं बूझि^३ तुम्हारी ॥ १ ॥
 गर्भ माँहि कीनी प्रतिपाला ।
 तहाँ बहुत होते बेहाला ॥
 जनमत ही वह ठौर बिसारी^४ ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २ ॥
 बालापन महि भए अचेता ।
 मात पिता सौँ बाँध्यो हेता ॥
 प्रथमहि चूके सुधि न सँभारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३ ॥
 बहुरि कुमार अवस्था आई ।
 ताहूँ माँहि नहीं सुधि काई ॥

१-सिर से पाँव तक—सांगोपांग शरीर । २-अइया = संबोधनार्थ, अरे, हे । ३-समझ । ४-भूल गए । जो प्रण गर्भ में किया सो याद न रहा ।

षाड् षेलि हँसि रोड् गुदारी^१ ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ४ ॥
 भयौ किशोर काम जब जाग्यौ ।
 परदारा कौं निरपन लाग्यौ ॥
 व्याह करन की मन महिं धारो ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ५ ॥
 भयौ गृहस्थ बहुत सुख पाया ।
 पंच सषी मिलि मंगल गाया ॥
 करि संयोग बड़ी भूषमारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ७ ॥
 जौ त्रिय कहै सु अति प्रिय लागै ।
 निशि दिन कपि ज्युं नाचत आगै ॥
 मार न सहै सहै पुनि गारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ १५ ॥
 यो करते संतति होइ आई ।
 तब तौ फूल्यो अंग न माई ॥
 देत बधाई ता परिवारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २० ॥
 पुत्र पौत्र बंध्यौ परिवारा ।
 मेरे मेरे कहै गँवारा ॥

करत बड़ाई सभा मँझारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २३ ॥
 उद्यम करि करि जोरो माया ।
 कै कछु भाग्य लिख्यौ सो पाया ॥
 अजहूँ तृष्णा अधिक पसारी^१ ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २४ ॥
 निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा ।
 नैननि आवन लाग्यौ नीरा^२ ॥
 पैरी परयो करै रषवारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २६ ॥
 कानहु सुनै न आँषिहु सूझै ।
 कहै और की औरै बूझै ॥
 अब तौ भई बहुत विधि प्वारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३० ॥
 बेटा बहू नजीक न आवैं ।
 तू तौ मति चल कहि समुझावैं^३ ॥
 टूक देंहि ज्यों स्वान बिलारी^३ ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३१ ॥
 ताकौ कह्यौ करै नहिं कोई ।
 परबस भयौ पुकारै सोई ॥

१-फैली । २-निर्बलता से जल पड़ने लगा । ३-बिलाई,
 बिल्ली ।

मारी अपने पाँव कुदारी^१ ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३५ ॥
 अब तौ निकट मौति चल आई ।
 रोक्यौ कंठ पित्त कफ बाई ॥
 जम दूतनि फाँसी विस्तारी^२ ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३७ ॥
 हंस^३ बटाऊ किया पयाना ।
 मृतक देषि के सबै डराना ॥
 घर महिं तै' ले जाहु निकारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३८ ॥
 लै मसान मैं आए जबही ।
 कीए काठ एकठे सबही ॥
 अग्नि लगाइ दियौ तन जारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ४३ ॥
 सुकृत न कियौ न राम सँभार्यौ ।
 ऐसो जन्म अमोलिक हार्यौ ॥
 क्यौं न मुक्ति की पैरि^४ उधारी ।
 अइया मनषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ४८ ॥

१-कुल्हारी—अपने पाँव कुल्हारी मारना—अपना बुरा आप-
 करना (मुहावरा है) । २-फाँसी को गले पर फेंका । ३-प्राण-
 पखेरू—जीव । ४-द्वार—मुक्ति का द्वार ज्ञान और भक्ति है । उसका
 उधारना उसका साधन ।

(११६)

कबहुँ न कियौ साधु कौ संग्गा ।
 जिनकै मिलै लगै हरि रंग्गा ॥
 कलाकंद तजि बनजी षारी^१ ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ४६ ॥
 सकल शिरोमनि^२ है नरदेहा ।
 नारायन कौ निज घर येहा ॥
 जामहिं पइए^३ देव मुरारी ।
 अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ५५ ॥

(३०) विवेक चितावनी ग्रंथ

[४० चौपाई छंदों में शरीर की अनित्यता, मृत्यु अवश्य ही होगी, इस उपदेश के साथ विवेक की उत्तेजना की गई है कि यह शरीर अनित्य है, इसका अन्य व्यक्तिगत संबंध भी अनित्य है, जैसे शरीर की स्थिति का निश्चय नहीं वैसे मृत्यु के आने का निश्चय भी नहीं । न जाने कब शरीरपात हो जाय, इसलिये अमरत्व के हेतु ब्रह्मनिष्ठ होना ही एक उपाय है । सब ही छंदों में “समझि देपि निश्चै करि मरना” यह श्रुत्य चरण है । इसका ढंग नीचे लिखे छंदों से प्रतीत होगा जो उदाहरणवत् दिए जाते हैं ।]

१—खराब खार, जो पुराने समयों में बहुत सस्ता होता था । २—मनुष्य शरीर अन्य योनियों की अपेक्षा उत्तमतर है क्योंकि इसमें विवेकादि विशेष है जिनसे परमार्थ साधन हो सकता है । अन्य योनियों में यह शक्ति नहीं है इससे वे निकृष्ट और यह श्रेष्ठ है सो स्पष्ट है परंतु मनुष्य इस बात को शीघ्र ही भूल जाता है । ३—पाइए । मिल जाते हैं । भगवत्साक्षात्—ब्रह्म की प्राप्ति ।

माया मोह माँहि जिनि^१ भूलै ।
 लोग कुटुंब देखि मत फूलै ॥
 इनके संग लागि क्या जरना^२ ।
 समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ३ ॥
 अपने अपने स्वारथ लागै ।
 तू मति जानै मोसन^३ पागै^४ ॥
 इसको पहिले छोड़ि निस्तरना ।
 समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ५ ॥
 या शरीर सौं ममता कैसी ।
 याकी तौ गति दीसत ऐसी ॥
 ज्यों पाले का पिंड पिघरना ।
 समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ६ ॥
 दिन दिन छीन होत है काया ।
 अँजुरी मैं जल किन ठहराया ॥
 ऐसी जानि बेगि निस्तरना ।
 समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ११ ॥
 षंड विहंड काल तन करिहै ।
 संकट महा एक दिन परिहै ॥
 चाकी माँहि मूँग ज्यों दरना ।
 समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १३ ॥

१-मत । २-जलना, मरना । क्या इनका इतना घनिष्ठ संबंध रहेगा कि सती की नाईं इनके साथ ही जलेगा । ३-साथ । ४-लिपटे ।

(१२१)

काल खड़ा सिर ऊपर तेरे ।
तू कथा गाफिल इत उत हरे ॥
जैसे बधिक हतै तकि हरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १७ ॥
जोरि जोरि धन भरे भँडारा ।
अर्ब पर्व कछु अंत न पारा ॥
षोषा^१ हांडी हाथि पकरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १८ ॥
बहु विधि संत कहत हैं टेरै ।
जम की मार परै सिर तेरै ॥
धर्मराइ कौं लेषा भरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ २४ ॥
वेद पुरान कहै समुझावै ।
जैसा करै सु तैसा पावै ॥
तातै^२ देखि देखि पग धरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ २६ ॥
काम क्रोध बैरी घट माहीं ।
और कोउ कहूँ बैरी नाहीं ॥
राति दिवस इनहीं सौं लरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ३१ ॥

(१२२)

गर्व न करिए राजा राना ।
 गए बिलाइ देव अरु दाना ॥
 तिनके कहूँ पोजहू पुर^१ ना ।
 समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ३६ ॥
 जुदा न कोई रहने पावै ।
 होइ अमर जो ब्रह्म समावै ॥
 सुंदर और कहूँ न उबरना^२ ।
 समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ४० ॥

(३१) पवंगम छंद

[इस ग्रंथ का नाम ग्रंथकर्ता ने और कुछ न रखकर केवल “पवंगम” ही रख दिया जो उस छंद का नाम है जिसमें यह ग्रंथ वर्णित है । इसमें पवंगम (अरिल) के १८ छंदों में विरहिनी का मनोविकार वा पुकार कही गई है । प्रत्येक छंद के चरण के अन्त्य पद में “लाटानुप्रास” की रीति से, शब्दालंकार की चतुराई से, वेदांत के कई रहस्य बताए हैं । एक ही शब्द को चार चार अर्थों में सरसता से प्रयोग किया है । सब छंद देने हैं ।]

पवंगम^३ छंद (अरिल छंद)

पिय के विरह वियोग, भई हूँ बावरी ।

सीतल मंद सुगंध, सुबात न बावरी ॥

१-पाँव—खोज, खुर = निशान । २-बचना । बचने का और दूसरा उपाय ही नहीं है । ३-पवंगम (प्लवंगम) छंद—२१ मात्रा का जिसमें आदि गुरु हो, अंत में रगण हो वा गुरु हो । यह साधारण मत है । जब ११ + १० पर यति हो तो प्रायः अरिल कहाता है और इसी

अब मोहिँ दोष न कोइ परौंगी बावरी ।

(परि हाँ) सुंदर चहुँ दिशि विरह सुघेरी बावरी* ॥१॥

विरहनि के मन माहिँ, रहै यह सालरी ।

तजि आभूषण सकल, न ओढ़त सालरी ॥

बेगि मिलै नहिँ आइ, सु अबकी सालरी ।

(परि हाँ) सुंदर कपटी पीव, पढ़ै किहि सालरी† ॥६॥

दूभर रैन विहाय, अकेली सेजरी ।

जिनके संग न पीव, बिरहिनी सेजरी ॥

विरहै संकल वाहि, विचारी सेजरी ।

(परि हाँ) सुंदर दुःख अपार न पाऊँ सेजरी‡ ॥११॥

को चांद्रयाणा भी कहते हैं जब ११ मात्रा जगणांत और १० मात्रा रगणांत हो । (छंदप्रभाकर पृ० ५०) इस छंद में 'पर हाँ' सुखो-च्चारण वा गान के अर्थ सिवाय लगा दिया जाता है, छंद में उसकी गणना नहीं है ।

• प्रथम छंद में 'बावरी' शब्द में ४ अर्थ हैं—(१) पगली (२) पवन + री (अरी सखी), (३) वापी—बावली, (४) बावर = घेरा ।

† छठे छंद में 'सालरी' के ४ अर्थ हैं—(१) खटका—काँटा, (२) एक प्रकार की ओढ़नी, दुपट्टा, (३) साल = संवत् + (री), (४) शाल = चटसाल ।

‡ ११ वें छंद में—दूबरे = दुखदायिनी, बिहाय = छोड़ वा हाय ! और 'सेजरी' के ४ अर्थ—(१) पलंग, बिछौना (री), (२) से = वे + जरी = जली, बली, (३) से = वह + जरी = जड़ी, बँधी । (४) से = वह, जरी = जड़ी, बूटी, दवा ।

(१२४)

पीव बिना तन छीन, सूकि गई साषरी ।
 हाड़ रहै कै चाम, विरहनी साषरी ॥
 निशि दिन जोवै माग, बिचारी साषरी ।
 (परि हाँ) सुंदरपति कौं छाँड़ि, फिरत है साषरी* ॥१४॥

(३२) अडिल्ला^१ छंद

[उपयुक्त 'पवंगम' ग्रंथ की नाईं यहां छंद-भेद से अर्थात् अडिल्ला छंदों में विरहिनी की कथा गाई गई है और वहीं लाटानुप्रास का प्रयोग करके अनेकार्थ का संयोग किया गया है जैसा, नीचे के छंदों से ज्ञात होगा ।]

पिय बिन सीस न पारौं पाटी ।

पिय बिन आपिनि बाँधौं पाटी ॥

* १४ वें छंद में 'साषरी' के ४ अर्थ—(१) साख = फसल, (२) शाखा = डाली, अथवा साँख (पतली), (३) सा = वह + खरी = खड़ी, (४) सा = वह, खरी = गधी । अर्थात् दीन-हीन दशा में ।

१—अडिल्ला छंद—चौपाई छंद का एक भेद है । इसमें १६ मात्रा अंत्य लघु और युग्मचरण वा चरण चतुष्टय में अंत में यमक हो अर्थात् वही शब्द अर्थात्तराय से आवे । सुंदरदासजी ने अंत के चारों चरणों में यमक दिया है और अडिल्ला कहा है । और आगे ३३ वें ग्रंथ में मडिल्ला में 'मडिल्ल' छंद के दो दो चरणों में यमक रखा है । (हरिदास कृत छंद-रत्नावली) । 'छंदप्रभाकर' में इसी को 'डिल्ली' लिखा है और लक्षण यह दिया है कि अंत में भगण प्रत्येक चरण में हो, यमक का कुछ नियम नहीं दिया है ।

पिय बिन और लिपूँ नहिं पाटी ।
 सुंदर पिय बिन छतियाँ पाटी^१ ॥ १ ॥
 मैं तौ प्रीति करत नहिं जाना ।
 पीव सु लै आए नहिं जाना ॥
 निशि दिन विरह जरावत जाना ।
 सुंदर अब पियही पै जाना^२ ॥ ६ ॥
 पिय बिन जागी रजनी सारी ।
 पिय बिन कबहुँ न पहरी सारी ॥
 सुंदर बिरह करबत सारी ।
 विरहनि कहौ रहैं क्यों सारी^३ ॥ १० ॥
 मात पिता अरु काका काकी ।
 सुत दारा गृह संपति काकी ॥
 ज्यों कोइल सुत सेवै काकी ।
 सुंदर रिद्ध रापि करि काकी^४ ॥ १३ ॥

१—पाटी के चार अर्थ—(१) पटिया । सीमंत । (२) पट्टी । किसी को न देखूँ । (३) पत्नी । अथवा पाटी पर चित्र । (४) ढकी वा गडी ।

२—‘जाना’ के चार अर्थ—(१) सीखा, (२) बरात, (३) जीव, (४) चलना ।

३—‘सारी’ के चार अर्थ—(१) सब, (२) ओढ़नी, (३) खेँचीं वा सार की बनी हुई । (४) साबित वा स्वस्थ सँवारी हुई ।

४—‘काकी’ के चार अर्थ—(१) चाची, (२) किसकी, (३) कन्वी, (४) क्या किया ।

गर्भ माहिं तब किन तूँ पाला ।
 अब माया कौँ दौड़त पाला ॥
 ऐसी कुबुद्धि ढाँक दे पाला ।
 सुंदर देह गले ज्यों पाला^१ ॥ १५ ॥
 आगँ महापुरुष जे भूता ।
 तिनि बसि कीया पंचौ भूता ॥
 अब ये दीसत नाना भूता ।
 सुंदर ते मरि मरि हैं भूता^२ ॥ २० ॥
 ऐसे रटि जैसे सारंगा ।
 अनत न भ्रमि जैसे सारंगा ॥
 रसिक होइ जैसे सारंगा ।
 तो सुंदर पावै सारंगा^३ ॥ २४ ॥
 रिपु क्यों मरै ज्ञान कौ सरना ।
 तातैं मन में वासी सरना ॥
 देषि बिचारि बहुरि औसरना ।
 सुंदर पकरि राम को सरना^४ ॥ २८ ॥

१—‘पाला’ के चार अर्थ—(१) पोषण किया, (२) पैदल,
 (३) पाल, ठकन, (४) बरफ ।

२—‘भूता’ के चार अर्थ—(१) हुए, (२) पंच महाभूत,
 (३) प्राणी—नानात्व करके, (४) भूत पिशाच ।

३—‘सारंगा’ के चार अर्थ—(१) पपीहा, (२) हिरण,
 (३) मोर, (४) शारंगपाणि—अर्थात् परमात्मा अथवा वह + रंग ।

४—‘सरना’ के ४ अर्थ—(१) तीर + नहीं, (२) सड़ना—
 बिगड़ना, (३) अवसर + नहीं, (४) शरण ।

(३३) मडिल्ला' छंद ग्रंथ

[“ पवंगम छंद” और “ अडिल्ला छंद” नाम वाले ग्रंथों की भाँति “ मडिल्ला छंद” नाम का भी ग्रंथ २० मडिल्ला (चौपाई) छंदों में लिखा है परंतु इसमें विरहिन की पुकार की जगह उपदेश-रव भिन्न भिन्न लिखे हैं । भेद इतना ही है कि इसमें लाटानुप्रास के स्थान में यमक आए हैं अर्थात् दो चरणों में एक शब्द और दो चरणों में दूसरा शब्द ।]

बंधन भयौ प्रोति करि रामा । मुक्त होइ जौ सुमरे रामा^१ ॥
 निश दिन याही करै विचारा । सुंदर छूटै जीव विचारा^२ ॥१॥
 एक कर्म बंधन ह्वै मोटा । तै' बंधो कर्मन की मोटा^३ ॥
 याही सीष सुनै किन काना । सुंदर बेह जगत सौँ काना^४ ॥२॥
 मूरष तृष्णा बहुत पसारी । हरद हींग लै भया पसारी^५ ॥
 औरनि कौँ ठगि ठगि धन साँचा । सुंदर हरिसौँ होइन साँचा^६ ॥३॥
 तृष्णा करि करि परजा भूले । तृष्णा करि करि राजा भूले^७ ॥

१—मडिल्ला छंद का किसी छंद-ग्रंथ में नाम नहीं मिला । परंतु लक्षण से यह अडिल्ला छंद होता है । इसमें दो दो चरणों में यमक है ।

२—रामा (१) स्त्री, (२) राम, भगवान् ।

३—विचारा (१) विचार, (२) बेचारा, गरीब ।

४—मोटा (१) भारी, बड़ा, (२) मोट, गठरी ।

५—काना (१) कान, कर्ण, (२) कस्ती, तरह ।

६—पसारी (१) फैलाई, (२) दवा बेचनेवाला ।

७—साँचा (१) संचित किया, (२) सच्चा, निष्कपट ।

८—भूले (१) भूल गये (ईश्वर को), (२) भू = पृथ्वी, ले = लेते हैं ।

तृष्णा लागि दशहूँ दिश धाया । सुंदर भूषा कबहूँ न धाया^१ ॥४॥
 पाट पटंबर सोना रूपा । भूल्यौ कहा देषि यह रूपा^२ ॥
 छिन मैं बिलै जात नहिं बारा । सुंदर टेरि कहा कै बारा^३ ॥५॥
 जौ तूं देहि धणो कौ लेषा । तौ तूं जौ जानै सो लेषा^४ ॥
 जौ तो पै नहिं आवै जावा । तौ सुंदर दूटैगी जावा^५ ॥१०॥
 बरषा सीस शीत मधि नीरा । उष्ण काल पावक अति नीरा^६ ॥
 ऐसी कठिन तपस्या साधी । सुंदर राम बिना का साधी^७ ॥१२॥
 सिर पर जटा हाथ नष राषा । पुनि सब अंग लगाई राषा^८ ॥
 कहै दिगंबर हम औधूता । सुंदर राम बिना सब धूता^९ ॥१४॥
 योगो सो जु करे मन न्यारा । जैसे कंचन काटै न्यारा^{१०} ॥
 कान फड़ायें कोइ न सीधा । सुंदर इरि मारग चलि सीधा^{११} ॥१५॥
 जौ सब तै हूआ वैरागी । सो क्यों होइ देह वैरागी^{१२} ॥

१—धाया (१) गया, (२) घाया, अघाया ।

२—रूपा (१) चर्दी, (२) रूप ।

३—वारा (१) देर, समय, (२) बार, बफे ।

४—लेखा (१) हिसाब, (२) ले = लेकर + खा = खाजा ।

५—जावा (१) जवाब, (२) जबाड़ी, जीभ ।

६—नीरा (१) जल, (२) निकट ।

७—साधी (१) साधन की, (२) सा = वह + धी = बुद्धि ।

८—राखा (१) रखे, (२) राख, भस्म ।

९—औधूता = अवधूत । धूता = धूर्तता ।

१०—न्यारा (१) भिन्न, (२) न्यारिया, जो सोने चर्दी को साफ करता है ।

११—सीध (१) सिद्ध, (२) सही, जो टेढ़ा न हो ।

१२—वैरागी (१) विरक्त, (२) विशेष अनुरागी ।

निश दिन रहै ब्रह्मसौं राता । सुंदर सेत पीत नहिं राता^१ ॥१६॥
 जीव दया कहा कीनी जैना । ज्ञान दृष्टि अभिभ्रंतर जैना^२ ॥
 जीव ब्रह्म कौ लख्यौ न षोजा । सुंदर जती भये ज्यौं षोजा^३ ॥१८॥
 कथा कहै बहु भाति पुराणी । नीकी लागै बात पुराणी^४ ॥
 दोष जाइ जब छूटै रागा । सुंदर हरि रीभै सो रागा^५ ॥२०॥

(३४) बारह मासिया ग्रंथ

[काव्य की सब प्रकार की कृतियों वा बनावटों में मुमुक्षु जनों तथा जिज्ञासुओं की रुचि बढ़ाना वा अद्वैत-ब्रह्मविद्या के उपयोगी सिद्धांतों को मनोरंजक बनाकर दिखाना, यही सुंदरदासजी का अभीष्ट रहा है; तदनुसार बहुत से लुप्त ग्रंथों की रचना की गई है और काव्य के प्रायः अंगों का समावेश किया गया है । 'बारह मासिया' लिखना कवियों की एक चाल है परंतु वेदांत का पंडित भी बारह मासिया लिखे यह कौतूहलवर्धक है । बारह मासियों में प्रायः विरहिनी की पुकार होती है । प्रत्येक मास में जो व्यथा ऋतु के अनुसार उसके तन और मन पर बीतती है, उस ही की राम-कहानी वह कहती है । सुंदरदास जी के

१—राता (१) रत, अनुरक्त, (२) लाल अर्थात् भेद भाव नहीं रहे ।

२—जैना (१) जैन, जिन मतधारी, (२) ज = जो यदि । ना = नहीं ।

३—खोजा (१) खोज, पता, (२) नपुंसक (ख्वाजासरा से खोजा) ।

४—पुराणी (१) पुराण शास्त्र की, (२) प्राचीन ।

५—रागा (१) मोह, विषयानुराग, (२) राग, गान ।

बारह मासिए में विरहिनी तो यह जीवात्मा है, जो स्वरोपित वा स्वो-पार्जित उपाधि (अभ्यास) के प्रभाव से निज भाव की भिन्नता मान-कर और फिर अपने 'पीव' मूल ब्रह्म के वियोग में विह्वल ज्ञान के उदय की अवस्था में होकर विरह दशा को प्राप्त होती है। वास्तव में यह भी भक्ति का एक प्रकार है जो पूर्वसंचित गुरुकृपा और भगवदिच्छा से प्राप्त होता है। इस दशा को भोगनेवाले बहुत थोड़े पुरुष दिखाई देते हैं। उस प्यारे "पीव" परमात्मा के विरह में जीवात्मा कैसे कातर होता है, उसी को महात्मा सुंदरदासजी कैसे सीधे ढंग से वर्णन करते हैं, सो नीचे के उदाहरणों से प्रगट होगा।]

पवंगम छंद (अरिल^१ छंद)

प्रथम सषी री चैत वर्ष लागौ नयौ ।

मेरौ पिव परदेश बहुत दिन कौ गयौ ॥

विरह जरावै मोहि बिथा कासौ कहौ ।

(परि हाँ) सुंदर ऋतु बसंत कंत बिन क्यों रहौ ॥ १ ॥

भादौ गहर गंभीर अकेलो कामिनी ।

मेघ रह्यौ भर लाय चमंकत दामिनी ॥

बहुत भयानक रैन पवन चहुँ दिशि बहै ।

(परि हाँ) सुंदर बिन उस पीव विरहिनी क्यों रहै ॥ ६ ॥

पोस मास की राति पीव बिन क्यों कटै ।

तलफि तलफि जिव जाय करेजा अति फटै ॥

१—इस बारह मासिया का वेदांतिक वा पराभक्ति संबंधी अर्थ अध्यात्म रीति से भिन्न होता है जिसको विस्तार से यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं विचार सकते हैं। साधारण अर्थ तो स्पष्ट ही है।

सूनी सेज संताप सहै सो बावरी ।

(परि हाँ) सुंदर काढ़ौं प्रान सुअबहिं उतावरी ॥ १० ॥

(३५) आयुर्वल भेद आत्मा विचार ग्रंथ

[यह तेरह चौपाई का छोटा सा ग्रंथ काल और आयु की महिमा का है । इसमें जो जो दशाएँ आयु की मनुष्यलोक और अन्य लोकों में होती हैं उनसे शरीर की अनित्यता और क्षणभंगुरता की प्रतीति दृढ़ होती है । सतयुगादि में मनुष्य की आयु बहुत बढ़ी होती थी । उत्तरोत्तर घटते घटते कलियुग में सौ वर्ष की आ ठहरी, परंतु पूर्णायु सब की नहीं होती । बहुत से अल्पायु ही पाते हैं, और क्या अल्पायु और क्या दीर्घायु सबका अंत आ ही जाता है, घटते घटते घट ही जाता है, यहाँ तक कि वर्षों के महीने, महीनों के दिन, दिनों की घड़ियाँ, और घड़ियों के पल रह जाते हैं ।]

चौपई छंद १

एक पलक षट^२ स्वासा होइ, तासौं घटि बढि कहै न कोइ ।

पंच च्यारि त्रिय द्वैइक स्वास, अर्ध पाव अधपाव विनाश^३ ॥८॥

यौं आयुर्वल घटतौ जाइ, काल निरंतर सबहीं षाइ ।

ब्रह्मा आदि पतंग जहाँ लौं, उपजै विनसै देह तहाँ लौं ॥९॥

१—चौपई १५ मात्रा की अत्यल्पु प्रायः । २—एक पलक, एक घड़ी, एक मुहूर्त, दिन रात्रि आदि में जितने जितने स्वास साधारण स्वस्थ पुरुष लेता है वह शास्त्रों में बहुत स्थलों में वर्णित है । ३—आयु के साथ स्वासों की गणना भी घटती जाती है यही विनाश का क्रम है ।

यथा बाँस लघु दीरघ दोइ, तिनकी छाया घट बिधि होइ ।
 जब सूरज आवै मध्यान, दोऊ छाया एक समान^१ ॥१०॥
 यौं लघु दीरघ घट कौ नाश, आतम चेतन स्वयं प्रकाश ।
 अजर अमर अविनाशी अंग, सदा अखंडित सदा अभंग ॥११॥
 घटै न बढ़ै न आवै जाइ, आतम नभ ज्यौं रह्यौ ममाइ ।
 ज्यौं कोई यह समझे भेद, संत कहै यौ भापै वेद ॥ १२ ॥

(३६) त्रिविध अंतःकर्ण भेद ग्रंथ

[वेदांत में अंतःकर्ण-चतुष्टय मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार नामों से प्रसिद्ध है । सुंदरदासजी ने प्रत्येक के प्रश्नोत्तर में तीन तीन भेद दिखाए हैं । एक बाह्य दूसरा अंतः और तीसरा परम इस प्रकार अंतःकर्ण के बारह भेद प्रभेद हुए ।]

उत्तर । चौपाई छंद

उहै बहिर्मन भ्रमत न थाकै, इंद्रियद्वार विषै सुख जाकै ॥
 अंतर्मन यौं जानै कोहं, सुंदर ब्रह्म परम मन सोहं ॥२॥
 बहिर्बुद्धि रजतम गुण रक्ता, अंतर्बुद्धि सत्त्व आसक्ता ॥
 परम बुद्धि त्रयगुण ते न्यारी, सुंदर आतम बुद्धि विचारी ॥४॥
 बहिर्चित्त चितवै अनेकं, अंतर्चित्त चितवन एकं ॥
 परम चित्त चितवन नहिं कोई, चितवन करत ब्रह्ममय होई ॥६॥

१—सूर्य के उतार चढ़ाव से छाया का न्यूनाधिक्य और मध्य में मध्याह्न का दृष्टांत छाया का लघुतम रूप बताया है ।

बहि जो अहं देह अभिमानी, चारि वर्ण अतिज लो प्राणी ॥
अंतः अहं कहै हरिदास^१, परम अहं हरि स्वयं प्रकाशं^१ ॥८॥

(३७) “पूरबी भाषा बरवै”

[२० बरवा छंदों में पूर्वी भाषामय कविता के ढंग पर, विपर्यय गूढ़ार्थवत्, ब्रह्मज्ञान के भेद को लिखा गया है यथा—]

नंदा छंद (बरवा छंद)

सद्गुरु चरण निनाऊँ^२ मस्तक मोर ।
बरवै सरस सुनावउँ अदभुत जोर ॥ १ ॥
औरउ अचिरज देषल^३ बाँझ क^४ पूत ।
पंगु चढ़ल^५ पर्वत पर बड़ अवधूत ॥ ५ ॥
बहुत जतन कैला^६वल अदभुत बाग ।
मूल उपर तर डरियां देषहु भाग^७ ॥ ८ ॥
सहज फूल फर लागल^८ बारह मास ।
भँवर करत गुंजारनि विविध विलास ॥ ९ ॥
अंबडार पर बैसल^९ कोकिल कीर ।
मधुर मधुर धुनि बोलहि सुख कर सीर^{१०} ॥ १० ॥

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

१-तीन भेद तीन शरीरों के-स्थूल, सूक्ष्म, कारण—अन्नमय, प्राण-मय, विज्ञानमय कोशों के अनुसार हैं । यह क्रम पूर्ण रीति से सोदाहरण हृदयंगम होने से वेदांत की परिपाटी में कुछ आक्षेप का स्थान नहीं रहता । २-नवाऊँ । ३-देखा । ४-क = के । ५-चढ़ा । ६-किया । ७-भागकर वा कैसा अचरज है । ८-लगे । ९-बैठे । १०-धारा ।

सुख निधान परमात्म आत्म अंस ।
 मुदित सरोवर मंहियां क्रीड़त हंस^१ ॥ २६ ॥
 रस मंहियां रस होइहि नीरहि नीर ।
 आत्म मिलि परमात्म घोरहि घोर ॥ २७ ॥
 सरिता मिलहि समुद्रहि भेद न कोइ ।
 जीव मिलहि परब्रह्महि ब्रह्महि होइ^२ ॥ २८ ॥

(३८) फुटकर काव्यसार

[सुंदरदासजी ने जो फुटकर काव्य किया वह उनकी मूल प्राचीन पुस्तक में एक स्थानी है तदनुसार ही यहाँ भी क्रम रखा गया है । इसमें चौबोला, गूढ़ार्थ, आद्यत्तरी, श्रंत्यात्तरी, मध्यात्तरी, चित्रकाव्य, गणागण विचार, नवनिधि, अष्टसिद्धि आदि हैं । इनमें पिछले प्रायः छप्पय छंद ही में हैं, फिर अंतर्लापिका, बहिर्लापिका, निर्मात, निगड-बंध, सिंहावलोकनी, अंत समय की सापी आदि हैं । इनमें से कुछ चाशनी की भांति लिख दिए जाते हैं ।]

(क) चौबोला से दोहा छंद

पी पर देशैं गवन करि, वरवट गए रिसाइ ।

परासपी मो रावना, सालरि दै नहिं जाइ^३ ॥ १ ॥

१—जीवात्मा, महात्मा । २—जीवब्रह्मरूप है इसलिये ब्रह्म में मिलना एक व्यवहार पक्ष में कथनमात्र है । सुंदरदासजी का ढंग इस विषय के वर्णन का ऐसा सुंदर और सुगम है कि इस बड़ी कठिन बात को फूलों की सी माला कर दिखाया है । ३—पीपरदा = गांव का नाम है । ‘पी पर देशैं’ इसका श्लेष है । वरवट = गांव का नाम है । वरवट = फरवट, शीघ्र । परास और मोर = गांवों के नाम हैं । श्लेष में

बहै रावरे कौन दिसि, आव राषि मन मोर ।
 हररै^१ हररै^१ जिमि फिरहु, करहु कृपा की कोर^२ ॥ २ ॥
 दुवा तिहारी लेत ही, कलमष रहे न कोइ ।
 काग दशा सब मिटि गई, लेषकर्म यों होइ^३ ॥ ११ ॥
 आगरासु मम पीव है, दिलि मैं और न कोइ ।
 पटनारी तातैं भई, राजमहल में सोइ^३ ॥ १४ ॥
 काशी लागा बहुत ही, गया और ही बाट ।
 अजो ध्यान अब करत हौं, तिरवेनी के घाट^४ ॥ १५ ॥

सखी मुझे रोना पड़ा । सालरदा = गांव का नाम । श्लेष में हृदय की साल जाइ (मिटै) नहीं ।

१-बहेरा = बहेड़ा (औषधि) । रावरे = आपके कौन सी तरफ वा देश में वह रहता है वा बसता है । अथवा रै राव (पीतम) कौन देश वा किस धुन में फिरते हो । आवरा = आवला (औषधि) और आव मेरा मन रख । हररै (औषधि) हल जाकर जैसे लौट आता है अथवा हर महादेव जैसे प्रसन्न हो जाता है वैसे लौट आओ । इसमें त्रिफला का नाम भी आ गया और दूसरा अर्थ भी आ गया ।
 २-दुवात—कलम—कागज—लेख— ये शब्द और अर्थ दूसरा आता ह । 'तिहारी' दुआ (दवा) से पाप (रोग) नहीं रहा । कब्वे की दशा पाप वा रोग की अवस्था मिट गई । ३-आगरा, दिल्ली, पटना और राजमहल शहरों के नाम हैं । श्लेष का अर्थ—मेरा पीव अति चतुर और प्रवीण है । मेरे मन में पीव को छोड़ कुछ समा नहीं सकता । मैं राजमहल (परागति) में इसलिये जाता हूँ कि मैं पटनारी (परमभक्त वा कृपापात्र) बन चुका हूँ ।
 ४-काशी, गया, अयोध्या और त्रिवेनी (प्रयाग) तीर्थ स्थानों वा शहरों के नाम हैं । दूसरा अर्थ—(काशिन् = चमकनेवाला) योग

(१३६)

(ख) गूढ़ार्थ से दोहा छंद

रसु सोई अमृत पिवै, रन सोई जिह ज्ञान ।
 सुप सोई जो बुद्धि बिन, तीनों उलटे जान^१ ॥ १५ ॥
 तारी बाजैं कुंभ ज्यों, पैरा गर्व गुमान ।
 लैबो मिथ्या रात दिन, लाभ न होइ निदान^२ ॥ १६ ॥
 कर्म काटि न्यारा भया, बोसौं विस्वा संत ।
 रमैं रैन दिन राम सौं, जीबै ज्यों भगवंत^३ ॥ २१ ॥
 नाम हृदै निश दिन सुनै, मगन रहै सब जाम ।
 देवै पूरन ब्रह्म कौं, वहाँ एक विश्राम^४ ॥ २२ ॥

(ग) मध्याचरी

शंकर कर कहि कौन	पिनाक ।
कौन अंबुज रस रंगा ।	अमर ।

तपने चमकने लगा अथवा आसन (काशी = आसन) पर बैठकर बहुत योग वा तप किया तो संसार छूट परमार्ग चला गया । तो (अजो = अजपा, वा मुख्य) अजपा का वा ब्रह्म का (अज = अजन्मा) ध्यान अब करता हूँ । जिससे इडा, पिंगला और सुषुम्ना के घाट मार्ग में रहता हूँ ।

१—रसु का उलटा सुर । रन का उलटा नर । सुप का उलटा पसु (पशु) । २—तारी का उलटा रीता । खैरा का राखै । लैबो का बोलै । लाभ का भला । ३—क + वी + र + जी चारों चरणों के पहले अक्षर जोड़ने से । ४—नामदेव—चारों चरणों के पूर्वाक्षर जोड़ने से ।

अति निलज्ज कहि कौन	गनिका ।
कौन सुनि नादहि भंगा ।	कुरंग ।
काम अंध कहि कौन	कुंजर ।
कौन कै द्वेषत डरिए ।	पन्नग ।
हरिजन त्यागत कौन	कलेस ।
कौन पाएँ ते मरिए ।	मोहुरौ ।
कहि कौन धात जग में खनं	कनक ।
रखना कौ को देत वर ।	सारदा ।

अब सुंदर द्वै पषि त्याग कै,
नाम निरंजन लेह नर^१ ॥ १ ॥

(घ) काव्य-लक्षण और गणागण

छप्पय छंद

नख शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीको लगौ ।
अंग होन जो पढ़ै सुनत कपिजन उठि भगौ ॥
अक्षर घटि बढि होइ पुढावत नर ज्यों चह्यौ ।
मात घटै बढि कोइ मनौ मतवारौ हह्यौ ॥
औदरे^२ काण^३ सो तुक अमिल अर्थहीन अंधो यथा ।
कहि सुंदर हरिजस जीव^४ है हरिजस बिन मृत कहितथा ॥२५॥

१—‘नाम’...आदि अक्षर ‘पिनाक’ आदि के मध्य से निकलते हैं ।

२—बहंगा, एक आँख से टेढ़ा देखनेवाला । ३—कांशा, एकाक्षी । ४—जीवनमूल है । शांतरस भगवत्गुणानुवाद वा ब्रह्मविद्या ही काव्य का मुख्य गुण हो सकता है. शृंगारदि नहीं ।

माधोजी है मगण यहैहै^१ यगण कहिजै ।

रगण राम^२जी होइ सगण सगलै^३ सुलहिजै ॥

तगण कहैं तारक^४ जरांत^५ सु जगण कहावै ।

भूधर^६ भणियें भगण नगण सुनि निगम^७ बतावै ॥

हरिनाम सहित जे उच्चरहिं तिनको सुभगण अट्ट हैं ।

यह भेद जके जानै नहीं सुंदर ते नर सट्ट हैं ॥ २६ ॥

सप्तबार, बारहमास, बारह राशि नाम

प्रगट होइ आदित्य सोम^८ जब हृदये आवै ।

मंगल दशहू दिशा बुद्ध^९ तब ही ठहरावै ॥

बृहस्पति^{१०} ब्रह्म स्वरूप शुक्र^{११} सब भाषत ऐसैं ।

थावर जंगम^{१२} मध्य द्वैत भ्रम रहै सु कैसैं ॥

१-‘इदमस्ति’ ‘अयमात्मा’ का अनुवाद है । २-रमयतीति रामः । ३-सर्वव्यापक । ४-तारनेवाला वा तारक मंत्र । ५-जरा बुढ़ापा जिसमें नहीं अर्थात् अजर—नित्य । ६-भूधर भगवान् का नाम अथवा शेष (पिंगल) । ७-वेद वा भगवान् । भगवान् वा देवता के नाम वा गुणमय जो छंद हो उसमें गुण दोष नहीं माना जाता । ८-चंद्रनाडी की सिद्धि से सूर्यनाडी (पिंगला) की सिद्धि हो अथवा शीतलता शांति के होने से ज्ञानरूपी सूर्य उदय हो । ९-जो सर्वत्र मंगलमय ब्रह्म को मानता है वही बुद्ध-ज्ञानी है । १०-बृहस्पति भी ‘वीर्यो वै ब्रह्म’ ऐसा कहता है । ११-शुक्र = शुक्राचार्य वा वीर्य । क्या देवता क्या दानव दोनों के ही गुरु ब्रह्म का स्वरूप ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ ऐसा कहते हैं—यह भी अर्थ होता है । अथवा वे ‘थावर जंगम’...इत्यादि वाक्य कहकर ब्रह्म की सर्वव्यापकता बताते हैं । १२-जो पुरुष स्थावर को अनात्म कहते हैं सो

है अति अगम्य अरु सुगम पुनि सद्गुरु बिन कैसे लहैं ।
यह बारहि बार^१ विचार करि सप्त बार सुंदर कहैं ॥२८॥
कार्तिक काटै कर्म मार्गसिर गति यज्ञासा^२ ।
पोष मित्यौ सतसंग माघ सब छाड़ी आसा ॥
फाल्गुण प्रफुलित अंग चैत्र सब चिंता भागी ।
वैशाख अति फली जेठ निर्मल मति जागी ॥
आषाढ़ भयो आनंद अति श्रावण स्रवति अमी सदा ।
भाद्रव द्रवति परब्रह्म जदि अश्वनि शांति सुंदर तदा ॥३०॥
मीन स्वाद सौं बँध्यौ मेघ मारन कौं आयौ ।
वृष^३ सूकौ तत्काल मिथुन करि काम बहायौ ॥
कर्क^४ रही उर माहिं सिंघ आवतौ न जान्यौ ।
कन्या चंचल भई तुलत अकतूल^५ उडान्यौ ॥
वृश्चिक विकार विष डंक लगि, सुंदर धन मितन भयौ ।
परि मकर न छाड़्यो मूढ़ मति कुंभ फूटि नरतन गयौ ॥३१॥

अम में हैं । किंतु क्या स्थावर और क्या जंगम सब ही ब्रह्ममय हैं
इनका भेद देखकर द्वैतभाव नहीं लाना ।

१-बार बार (निरंतर) अथवा वरे ही वरे । आगे पहुँचने की गम्य
नहीं । वा वारों के नामों को विचारकर यह श्लेष काव्य बनाया ।
२-जिज्ञासु । बारह महीनों में उत्तरोत्तर जानोन्नति हुई सो ही नाम में
सार्थक होना दिखाते हैं । ३-वृष = वृत्त । ४-कर्क = कडक—
हिम्मत वा कसक—कमी । ५-झंडी, गावटा (यह शब्द सुंदरदासजी
ने अपभ्रंश करके लिखा है) ।

मन गयंद । छप्पय

मन गयंद बलवंत तास के अंग दिषाऊँ ।
 काम क्रोध अरु लोभ मोह चहुँ चरन सुनाऊँ ॥
 मद मच्छर^१ है सीस सुंडि तृष्णा सुडुलावै ।
 द्वंद दसन हैं प्रगट कल्पना कान हलावै ॥
 पुनि दुविधा दृग देषत सदा पूँछ प्रकृति पीछै फिरै ।
 कहि सुंदर अंकुस ज्ञान कै पीलवान गुरु बसि करै ॥३२॥

च्यार अवस्था, च्यार वर्ण

अंत्यज देह स्थूल रक्त मल मूत्र रहे भरि ।
 अस्थि मांस अरु मेद चर्म आच्छादित ऊपरि ॥
 शुद्र सुलिंग शरीर वासना बहु विधि जामहिं ।
 वैश्यहु कारण देह सकल व्यापार सु तामहिं ॥
 यह क्षत्रिय साक्षी आत्मा तुरिय चढ़े^२ पहिचानिए ।
 तुरिया अतीत ब्राह्मण वही सुंदर ब्रह्म बषानिए ॥३६॥

सप्त भूमिका

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै ।
 द्वितीय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै ॥
 तृतीय भूमिका निदिध्या न नीकी विधि करई ।
 चतुर भूमि साक्षात्कार संशय सब हरई ॥
 अब तासौ कहिए ब्रह्म बिंदु वर वरियान वरिष्ठ है ।
 यह पंच षष्ठ अरु सप्तमी^३ भूमि भेद सुंदर कहै ॥ ३८ ॥

सुख दुख नोंद अरूप जबहि आवै तब जानै ।
 शीतहुँ चष्ण अरूप लगे ते सब पहिचानै ॥
 शब्द रु राग अरूप सुने तें जानें जाँहीं ।
 वायु हु व्योम अरूप प्रगट बाहरि अरु माँहीं ॥
 इहिं भाँति अरूप अखंड है सो कैसेँ करि जानिएँ^१ ।
 कहि सुंदर चेतन आतमा यह निश्चय करि आनिएँ ॥३६॥
 एक सत्य परब्रह्म एक तें गनती गनिए ।
 दस दस आगैं एक एक सौ ताईं भनिए ॥
 एकहि का विस्तार एक को अंत न आवै ।
 आदि एक ही होइ अंत एकहि ठहरावै ॥
 ज्यों लूता तंत पसारि कै बहुरि निगलि लूता रहै ।
 यों सुंदर एक अनेक ह्वै अंत वेद एकै कहै^२ ॥४०॥

के द्योतक वर्णों) के सांकेतिक रूप हैं । जिनके प्रवेश मार्ग-चार रूपवान् और तीन अरूपवान् परस्पर हैं उनको वर—वरियान और वरिष्ठ कहा है । उत्तरोत्तर उन्नत और सूक्ष्म हैं ।

१—रूपरहित अनेक पदार्थ हैं जो इंद्रियों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकते, बुद्ध्यादि से उनकी प्रतीति होती है । इस ही प्रकार बुद्धि से परे जीवात्मा वा ब्रह्म है सो बुद्धि से तो प्रत्यक्ष नहीं हो सकता उसका ज्ञान योगमार्ग से संभव है । उत्तरोत्तर उत्क्रांति इस ज्ञान में भी है जो “स्थूला-रूपांत न्याय” से सिद्ध होती है । साइंस, विज्ञान, के धुरंधर ‘हक्सले’ ‘टिंडल’ आदि ने भी इस बात को माना है । यही बात हमारे देश के भिच्छुक साधुओं तक को ज्ञात रही है । यहाँ की अध्यात्म विद्या की महिमा है । २—लूता (मकड़ी) का दृष्टांत उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र आदि में ठौर

(१४२)

(छ) अंतर्लपिक

लंक मारि क्षत्रिय प्रहारि हलधारि रहै कर ।
 महीपाल गापाल ब्याल पुनि धाइ गहै बर ॥
 मेघ आस धुनि प्यास नाश रुचि कँवल वास जिहिं ।
 बुद्धतात हनुतात प्रगट जगतात जानि तिहिं ॥
 तुम सुनहु सकल पंडित गुनी अर्थहि कहो विचार करि ।
 चत्वार शब्द सुंदर बंदत रामदेव-सारंगहरि^१ ॥ ४३ ॥

(ज) निगडबंध

अधर लगै जिन कहत वर्ण कहि कौन आदि कौ ।
 सब ही ते उच्छृष्ट कहा कहिए अनादि कौ ॥
 कौन बात सो आहि सकल संसारहि भावै ।
 घटि बड़ि फेरि न होइ नाम सो कहा कहावै ॥

ठौर आया है । यहां सृष्टि का विस्तार और उसका लय, एक से अनेक और पुनः अनेक से एक—अन्वय व्यतिरेक—सृजन और संहार—उत्पत्ति और नाश रूपेण—जानना । प्रसिद्ध ग्रीक (यूनानी) दार्शनिक 'अरस्तू' और 'अफलातून' ने भी 'एक और तीन' और 'एक से अनेक' की और 'लौटकर अनेक से एक' की ऐसी ही युक्तियाँ दी हैं ।

१-राम = (१) रामचंद्र, (२) परशुराम, (३) बलराम ।
 देव = (१) राजा, (२) भगवान्, (३) शिव (सर्पधारी) । सारंग =
 (१) मोर, (२) पीता, (३) भौरा । हरि = (१) चंद्रमा,
 (२) पवन, (३) विष्णु वा ब्रह्मा । गुनी = गुणी गुणवान् पंडित
 अथवा गुनी + अर्थ त्रिगुण अर्थ, तीन तीन अर्थ ।

कहि संत मिले उपजै कहा दृढ़ करि गहिए कौन कहि ।

अब मनसा वाचा कर्मना सुंदर भजि परमानंद हि^१ ॥४८॥

(भ) चित्रकाव्य के बंध

(१) छत्रबंध^२ । छप्पय छंद

सुनहु अंक की आदि दशा इक बिधि सुत केते ।

रस भोजन पुनि जान भनौ योगांगहि जेते ॥

१—‘प + र + मा + न + द’ इन अक्षरों में ओष्ठ्य ‘पकार’ प्रथम है पवर्ग में । फिर आगे का एक अक्षर ‘रकार’ जोड़ने से ‘पर’ हुआ जिसका अर्थ परमात्मा । ऐसे ही ‘रमा’ = लक्ष्मी जो सबको प्रिय है और ‘परमा’ = सुखमा — शोभा यह भी सबको भाती है । आगे ‘परमान’ = नाप, तोल, प्रमाण, परिमाण—जो अटल हैं, घट बढ़ नहीं सकता । अंत में ‘परमानंद’ = ब्रह्मानंद जो सत और सद्गुरु की कृपा से मिलता है । इसी आनंद वा परमगति को दृढ़ कर पकड़ना सिद्धों का काम है और दृढ़ता निश्चय का बोधक है सो ‘हि’ शब्द से लिया जा सकता है जो ‘परमानंद’ शब्द के अंत में हैं अर्थात् परमानंद ही दृढ़ कर रखना चाहिए । ‘परमानंद’ शब्द में ‘नकार’ के ऊपर का अनुस्वार छंद के अर्थ बोला जायगा । २—अंक का आदि ‘एक’ वा ‘एका’ है । विधिसुत = सनकादिक चार और रस छः हैं (भोजन चार प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चाप्य) । योगांग—अष्ट अंग योग के हैं । जलज नाभि = ब्रह्मा, उसके कमल के दल, पत्र दश हैं । कंचन वाणी = बारह हुई । भुवन = लोक चौदह हैं (सात ऊपर सात नीचे) । रंभा की अवस्था सोलह वर्ष की । पुराण अठारह । नंदन = पुत्र, उसके हाथ पांव के नख बीम हैं । ‘दशाङ्क’ का अर्थ यह भी सुना है कि ‘सुन’ हुआ अंक का आदि

(१४४)

जलज नाभि दल वृष्णि हुई कै कंचन बानी ।
 निरधि भवन कै कहौ रंग बय किती बषानी ॥
 जग माँहि जु प्रगट पुरान कै नंदन नष कर पगगनं ।
 सब साधन कै सिरछत्र यह सुंदर भजहु निरंजनं ॥ १ ॥

(२) नागपाश^१ बंध । मनहर छंद
 जनम सिरानो जाय भजन विमुख सठ ।
 (देखो “सवैया” में उपदेश चितावनी छंद २६) ॥

(अ) “दशों दिशा” के सवैयां से

[सुंदरदासजी ने भारतवर्ष के बहुत से विभागों में भ्रमण किया था, इस भ्रमण का कुछ वृत्तांत उन्होंने १० सवैयां में लिखा है, उनमें से कुछ यहां उद्धृत करते हैं । यह सवैया आज तक कहीं मुद्रित नहीं हुए थे ।]

छंद इंदव

हिक्क^२ लहौर दा नीर भी उत्तम हिक्क लहौर दा बाग सिराहे ।
 हिक्क लहौर दा चीर भी उत्तम हिक्क लहौर दा मेवा सिराहे ॥
 हिक्क लहौर दे हैं विरहीजन हिक्क लाहौर दे सेवग भाए ।
 कितक बात भली लाहौर दी ताहिते सुंदर देषने आए ॥ ४ ॥
 त्रिच्छ न नीर न उत्तम चीर न देशन में गत देश है मारु ।

अर्थात् अंक का आदि पहिले शून्य है । और दिशा भी शून्य है और एका पर शून्य धरने से दश होता है और एक पर एक अर्थात् आपस में मिलने वा जुड़ने से $१ + १ = २$ दो होते हैं । या दशाइक = दो का अर्थ हुआ सो नहीं । सात ‘सुंदर भजहु निरंजन’ इसका छत्रबंध ग्रंथ के आदि में दिया है ।

१-नाग-पाश का चित्र भी आदि में है । २-इक = एक ।

पाँव में गोषरू भुट^१ गड़ें अरु आँष में आइ परै उड़ि बारू ॥
 रावरि छाछि पिबैं सब कोइ सुताहि ते पाज रतेंधुरु^२ नारू ।
 सुंदरदास रहो जनि बैठि के बेगि करो चलिबे को बिचारू ॥६॥
 भूमि पवित्रहु लोग विचित्रहु रागरु रंग उठै तत ही ते^३ ।
 उत्तम अन्न असन्न बसन्न प्रसन्न ह्वै मन्न जु पात धही ते^३ ॥
 बिच्छ अनेत रु नीर बहत रु सुंदर संत विराजत ही ते^३ ।
 नित्य सुकाल पड़ै न दुकाल सु मालव देश भलौ सबही ते^३ ॥७॥
 पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन देश विदेश फिरे सब जानें ।
 केतक यौस फतेपुर माहिं सु केतक यौस रहे डिडवानें ॥
 केतक यौस रहे गुजरात उहाँहुं कछू नहिं आन्यौ है ठानें ।
 सोच विचारि कै सुंदरदास जु याहिते आन रहे कुरसाने ॥८॥
 सुच्छि अचार कछू न बिचार सुमास छठैं कबहुँ कस न्हाहीं ।
 मूँड पुजावत बार परै गिरते सब आटै मैं ओसनि जाहीं ॥
 बेटी रु बेटन कौ मल धोवत वैसैहिं हाथन सों अन पाहीं ।
 सुंदरदास उदास भयौ मन फूहड़ नारि फतेपुर माहीं ॥ ९ ॥
 कंद रु मूल भले फल फूल सुरस्सरि कूल बनें जु पवित्तर ।
 आधि न व्याधि उपाधि नहीं कछु तारि लगैं ते हरैं जमनुत्तर^३ ॥
 ज्ञान प्रकाश सदाहि निवास सुसुंदरदास तरै भव दुस्तर ।
 गोरषनाथ सराहि है जाहि सुजोग के जोग भली दिश उत्तर ॥१०॥

१-भरभूट । २-रतौंधी रोग । ३-मन्वंतर, दीर्घकाल (तक तारी = समाधि लगी रहे) ।

सुंदर विलास

अथ सवैयासार

[“सवैया” ग्रंथ के संबंध की बातें विशेषतया भूमिका में लिख दी गई हैं । स्वामी सुंदरदासजी की कविता का यह ग्रंथ शिरोमणि और इससे उतर कर ‘ज्ञानसमुद्र’ है । क्या काव्यछटा और क्या ज्ञान की शैली, जिस माधुर्य और ओज आदि गुणों के समारोह से इन दोनों ग्रंथ-रत्नों में वर्णित है वैसे भाषा-साहित्य भर में स्याद कठिनाई ही से किसी अन्य ग्रंथ में मिले । इस ‘सार’ में हम उन छंदों को छांटकर रखते हैं जो क्या दादूपंथियों में और क्या सर्व साधारण काव्यप्रेमी और ज्ञानरसिकों में प्रसिद्ध या प्रियतर हैं या प्रचलित या प्रायः कंठस्थ किए जाते हैं अथवा जो हमारी बुद्धि में कितने ही कारणों से चुने जाने के योग्य प्रतीत हुए हैं ।]

(१) गुरु देव का अंग

[इस अंग के छंदों को पढ़कर प्रतीत होगा कि पहिले समयों में गुरु-भक्ति कैसी हुआ करती थी । हमारे जान भारतवर्ष की बड़ी गहन विद्याओं और विशेषतः अध्यात्मविद्याओं की उन्नति का मूल कारण यह गुरु-भक्ति ही रही होगी । सुंदरदासजी बचपन ही से दादूजी के शिष्य हुए थे; तब भी उनकी प्रगाढ़ गुरु-भक्ति को देखने से उनके चित्त और बुद्धि का कैसा अच्छा अनुमान हो जाता है । वास्तव में स्वामी ने गुरु की कृपा का फल पा लिया था । ‘दयालु’ की दयालुता भी इससे भली भांति प्रगट हो जाती है कि थोड़े ही दिनों में अपने एक बालक

शिष्य को क्या समृद्धि प्रदान कर गए ।^१ धन्य ऐसे गुरु और ऐसे शिष्यों को जिन्होंने ब्रह्म-विद्या का पुष्कल दान संसार को किया और अगाध शिष्य-प्रेम और गुरु-भक्ति प्रकाशित की ।]

इंदव छंद

मौज^१ करी गुरुदेव दया करि शब्द सुनाइ^२ कछौ हरि नेरौ ।
ज्यों रवि कै^३ प्रगट्यो^४ निशजात^५ सु दूरि कियौ भ्रम भाँनि^६ अंधेरौ ॥
काइक वाइक मानस^७ हू करिहै गुरुदेवहि वंदन^८ मेरौ ।
सुंदरदास कहै कर जोरि जु दादू दयाल कौ हूँ नित चेरौ^९ ॥१॥
पूरण ब्रह्म विचार निरंतर काम न क्रोध न लोभ न मोहै^{१०} ।
श्रोत्र त्वचा रसना अरु घ्राणसु देखि कछू कहूँ नैनन मोहै^{११} ॥
ज्ञान स्वरूप अनूप निरूपण जासु गिरा सुनि मोहन मोहै^{१२} ।
सुंदरदास कहै कर जोरि जु दादू दयालहि मोर नमो^{१३} है ॥२॥
धीरजवंत अडिग जितेंद्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ़ आदू ।
शील संतोष छमा जिनकै घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू ॥

१-मौज (फारसी अ०) = लहर, डुलूर, आनंद । २-सर्व अध्यात्म दीक्षाओं में मंत्र, शब्द, इंगित ही प्रथम प्रवेश का कारण होता है । नेरौ = नीडा, निकट, ब्रह्म हमारे भीतर है, दूर दूँदने की आवश्यकता नहीं, यही दादूजी का चरम सिद्धांत था । ३-मिट जाती है जैसे । ४-भाँज कर = दूर करके । ५-कायिक, वाचिक, मानसिक । ६-वंदनीय अथवा गुरु के अर्थ वंदन नमस्कार । ७-यहाँ नित (नित्य वा नियत) शब्द आने से चेरौ शब्द के अर्थ में विशेषता आ गई है । सदा दास । ८-मोह है (संज्ञा) । ९-मोह को प्राप्त (नहीं) होवै । १०-नमन अर्थात् दमन हुआ है । ११-नमस्कार है ।

भेष न पच्छ निरंतर लच्छ जु और नहीं कछु वाद विवाद ।
 ये सब लच्छन हैं जिन माहि सुसुंदर कै उर है गुरु दादू ॥३॥
 भौजल में बहि जात हुते जिनि काढ़ि लिए अपने कर आदू ।
 और संदेह मिटाय दियौ सब काननि टेर सुनाइ कै नादू ॥
 पूरण ब्रह्म प्रकास कियो पुनि छूटि गयो यह वाद विवाद ।
 ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर सुंदर कै उर है गुरु दादू ॥४॥
 कोउक गोरख को गुरु थापत कोउक दत्त^१ दिगंबर आदू ।
 कोउक कंथर^२ कोउक भरथर^३ कोउ कबीर को राखत नादू ॥
 कोउ कहै हरदास^४ हमार जु यों करि ठानत वाद विवादू ।
 और तो संत सबै सिर ऊपर सुंदर कै उर है गुरु दादू ॥५॥

* * * *

जोगी कहैं गुरु जैन कहैं गुरु बोध कहैं गुरु जंगम^५ मानैं ।
 भक्त कहैं गुरु न्यासी^६ कहैं वनवासी कहैं गुरु और बखानैं ॥
 शेष^७ कहैं गुरु सोफी^८ कहैं गुरु याही ते सुंदर होत हरानैं ।
 बाहु कहैं गुरु बाहु कहैं गुरु है गुरु सोई सबै भ्रम भानैं ॥७॥
 सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु सत्व रजो तम ताप निवारी ।
 इंद्रिय देह मृषा^९ करि जानत सीतलता समता उर धारी ॥

१-दत्तात्रेय योगीश्वर दिगंबर योगियों के पंथ के आदि आचार्य्य ।
 २-कंथरनाथ योगी । ३-भर्तृनाथ प्रसिद्ध भर्तृहरि राजाजी योगी हुए ।
 ४-यह हरिदास निरंजनी डिंडवाने (मारवाड़) में हुए; दादूजी के शिष्य थे । फिर कबीर पंथ में हो गए और भिन्न पंथ चलाया । ५-योगियों का एक पंथ जो लिङ्गपूजक और नंदीसेवक है । ६-संन्यासी । ७-मुसलमान धर्म का आचार्य्य । ८-मुसलमानी वेदांत का अनुयायी । ९-मिथ्या ।

व्यापक ब्रह्म विचार अखंडित द्वैत उपाधि सबै जिनि टारी ।
 शब्द सुनाय संदेह मिटावत सुंदर वा गुरु की बलिहारी ॥८॥
 पूरण ब्रह्म बताय दियो जिनि एक अखंडित व्यापक सारै ।
 रागरु दोष करै अब कौन सौं जोइ है मूल सोई सब डारै ॥
 संशय सौक मित्र्यौ मन कौ सब तत्व विचार कह्यौ निरधारै ।
 सुंदर सुद्ध किए मल धोइ सु है गुरु को उर ध्यान हमारै ॥९॥
 ज्यों कपरा दरजी गहि व्यौतत काष्ठहि कौं बढ़ई कसि^१ आनै ।
 कंचन कौं जु सुनार कसै पुनि लोह को घाट^२ लुहारहि जानै ॥
 पाहन कौं कसि लेत सिलावट पात्र कुम्हार कै हाथ निपानै^३ ।
 तैसै^४ हि शिष्य कसै गुरुदेवजु सुंदरदास तबै^५ मन मानै ॥१०॥

मनहर छंद

शत्रु ही न मित्र कोऊ जाकै^१ सब हैं समान,
 देह को ममत्व छांडे आतमा ही राम हैं ।
 औरऊ उपाधि जाकै^२ कबहूँ न देषियत,
 सुख के समुद्र में रहत आठौं जाम हैं ॥
 ऋद्धि अरु सिद्धि जाके हाथ जोरि आगे षरी,
 सुंदर कहत ताकै सब ही गुलाम हैं ।
 अधिक प्रशंसा हम कैसै^३ करि कहि सकै,
 ऐसै गुरु देव कौं हमारे जु प्रनाम हैं ॥ ११ ॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

१-कसौटी पर धरकर, भला बुरा परखकर । २-डौल, गढ़ने का
 ढंग । ३-बनै, लिपकर तैयार हो ।

काहू सौं न रोष काहू सौं न राग दोष,
 काहू सौं न बैरभाव काहू की न घात है ।
 काहू सौं न बकवाद काहू सौं नहीं बिषाद,
 काहू सौं न संग न तौ कोऊ पक्षपात है ॥
 काहू सौं न दुष्ट बैन काहू सौं न लैन दैन,
 ब्रह्म कौ विचार कछु और न सुहात है ।
 सुंदर कहत सोई ईसनि कौ महा ईस,
 सोई गुरु देव जाकै दूसरी न बात है ॥ १३ ॥
 लोह कौं ज्यों पारस पषान हू पलटि लेत,
 कंचन छुवत होइ जग में प्रमानिएं ।
 द्रुम कौं ज्यों चंदनहुं पलटि लगाई बास,
 आपुके समान ताके शीतलता आनिएं ॥
 कीट कौं ज्यों भृंगहुं पलटि के करत भृंग,
 सोउ उड़ि जाइ तातौ अचिरज मानिएं ।
 सुंदर कहत यह सगरै प्रसिद्ध बात,
 सद्य शिष्य पलटै सुसद्य गुरु जानिएं ॥ १४ ॥
 गुरु बिन ज्ञान नाहीं गुरु बिन ध्यान नाहीं,
 गुरु बिन आत्मा विचार ना लहतु है ।
 गुरु बिन प्रेम नाहिं गुरु बिन प्रीति नाहिं,
 गुरु बिन शीलहू संतोष ना गहतु है ॥
 गुरु बिन प्यास^१ नाहिं बुद्धि कौ प्रकास नाहिं,

भ्रमहू कौ नाश नाहिं संशय रहतु है ।
 गुरु बिन बाट नाहिं कौड़ी बिन हाट नाहिं^१,
 सुंदर प्रगट लोक वेद यौ कहतु है ॥ १५ ॥
 पढ़े कै न बैठो पास अपिर न बाँचि सकै,
 बिनहि पढ़ै ते' कैसै' आवत है फारसी ।
 जौहरी के मिलें बिन परष न जानै कोइ,
 हाथ नग लिए' फिरै संशै नहिं टारसी ॥
 बैद न मिल्यो कोऊ बूँटी को बताइ देत,
 भेद बिनु पाए' वाको औषद है छारसी ।
 सुंदर कहत मुख रंचहुँ न देख्यौ जाइ,
 गुरु बिन ज्ञान ज्यौं अँधेरे माँहि आरसी ॥ १६ ॥

* * * *

गुरु तात गुरु मात गुरु बंधु निज गात,
 गुरु देव नखसिख सकल सँवारयो है ।
 गुरु दिए दिव्य नैन गुरु दिए मुख बैन,
 गुरु देव श्रवन दे सब्द हू उचारयो है ॥
 गुरु दिए हाथ पाँव गुरु दियौ शीस भाव,
 गुरु देव पिंड माँहि प्रान आइ डारयो है ।
 सुंदर कहत गुरु देवजू कृपाल 'होइ,

१-‘हाट बाट’ और ‘कौड़ी बिन हाट’ ये लोक-श्रुतियाँ हैं । इसी प्रकार अनेक कहावतें और मुहाविरे “सवैया” ग्रंथ में हैं ।

फेरि घाट घरि करि मोहि निसतारगौ है^१ ॥ १६ ॥

*

*

*

*

भूमि हू की रेनु की तो संख्या कोऊ कहत हैं,
भार हु अठारा द्रुम तिनके जो पात हैं ।
मेघनि की संख्या सोऊ ऋषिनि कही विचारि,
बुंदनि की संख्या तेऊ आइकैं बिलात हैं ॥
तारनि की संख्या सोऊ कही है पुरान माहिं,
रोमनि की संख्या पुंनि जितनेक गात हैं ।
सुंदर जहाँ लौं जंत सब ही को होत अंत,
गुरु के अनंत गुन कापै कहे जात हैं ॥ २१ ॥

(गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविंद तें)
गोविंद के किए जीव जात हैं रसातल कौं,
गुरु उपदेशे सु तौ छूटे जम फंद तें ।
गोविंद के किए जीव बस परे कर्मनि के,
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वछंद तें ॥
गोविंद के किए जीव बूड़त भौसागर में,
सुंदर कहत गुरु काढ़े दुख द्वंद तें ।
और हू कहाँ लौं कछु मुख तें कहैं बनाइ,
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविंद तें ॥ २२ ॥

१-जैसे द्विजातियों में द्विजन्मा होने का अर्थ है वैसे ही गुरु से शिष्यता में घटांतर होने में है । ज्ञान की दीक्षा से मनुष्य की काया पलट हो जाती है ।

(ऐसी कौन भेंट गुरुदेव आगे राषिए)

चिंतामनि पारस कलपतरु कामधेनु,
 औरऊ अनेक निधि वारि वारि नाषिए ।
 जोई कछु देषिए सु सकल विनासवंत,
 बुद्धि मैं विचार करि बहु अभिलाषिए ॥
 तातैं अब मन वच क्रम करि कर जोरि,
 सुंदर कहत सीस मेलिह दीन भाषिए ।
 बहुत प्रकार तीनों लोक सब सोधे हम,
 ऐसी कौन भेंट गुरुदेव आगैं राषिए ॥ २३ ॥

* * * *

जोगी जैन जंगम संन्यासी बनवासी बोध,
 और कोऊ भेष पच्छ सब भ्रम मान्यौ^१ है ।
 तापस ऋषीसुर मुनीसुर कबीसुर ऊ,
 सबनि को मत देषि तत पहिचान्यौ है ॥
 वेदसार तंत्रसार समृति पुरान सार,
 ग्रंथनि को सार सोई हृदै मांहि आन्यौ^२ है ।
 सुंदर कहत कछु महिमा कही न जाइ,
 ऐसो गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौ है ॥ २४ ॥

(२) उपदेशचितावनी^१ का अंगहंसाल छंद^२

(राम हरि राम हरि बोलि सूवा)

तौ सही^३ चतुर तूं जान^४ परबोन अति,परै जनि पिंजरे^५ मोह कूवा ।पाइ उत्तम जनम लाइ^६ लै चपल मन,

गाइ गोविंद गुन जीति जूवा ॥

आपु ही आपु अज्ञान नलिनी^७ बँध्यौ,बिना प्रभु विमुख कै बेर मूवा^८ ।दास सुंदर कहै परम पद तौ^९ लहै,

राम हरि राम हरि बोलि सूवा ॥ १ ॥

(हक्क तूं हक्क तूं बोलि तोता^{१०})नफ्स^{१०} शैतान कौ आपुनी कैद करि,

क्या दुनी मैं फिरै षाइ गोता ।

१-चिताने—चैतन्यता उपजानेवाला । कोई कोई चि तामणि लिखते हैं सो अशुद्ध है । २-इसका संबंध—‘चतुर तौ तू सही’ (ठीक, खण) परंतु जान (बूझ कर) ‘पिंजरे मत परै’ । ३-छापे की पुस्तकों में ‘तूं जान’ का ‘सुजान’ देकर पाठ भ्रष्ट कर दिया जिससे छंद भंग अलग हुआ । ४-किसी किसी प्रति में ‘पंजरे’ पाठ है सो शुद्धता में ठीक है । ५-पकड़ । ६-सूवे का नलिनी (नालिका) पर अपने पंजों से लटकना प्रसिद्ध है । ७-मरा इसलिये फिर जन्मा । ८-निश्चय ही जब तौ । ९-हक्क = सत्य ईश्वर । ‘हक्क तूं’ (हक्क तू) ऐसा शब्द तोतों को प्रायः सुसलमान पढ़ाते हैं । और भी तुही ‘नबीजी’ आदि भी । १०-अहंकार रूपी शैतान (महाशत्रु) ।

है गुनहगार^१ भी गुनह ही करत है,
 षाड़गा मार तब फिरै रोता ॥
 जिन तुझे षाक सौं अजब पैदा किया,
 तूँ उसे क्यों फरामोश^२ होता ।
 दास सुंदर कहै सरम तब ही रहै,
 हक्क तूँ हक्क तूँ बोलि तोता ॥ २ ॥

(भी तुही भी तुही बोलि तूती)
 आब^३ की बूँद औजूद पैदा किया,
 नैन मुख न सिका करि संजूती^४ ।
 ख्याल ऐसा करै उही लीए फिरै,
 जागि कै देखि क्या करे सूती ॥
 भूलि उस पसम^५ कौं काम तैं क्या किया,
 बेगि दै यादि करि मरि निपूती ।
 दास सुंदर कहै सर्व सुख तौ लहै,
 भी तुही भी तुही बोलि तूती ॥ ३ ॥

(एक तूं एक तूं बोलि मैंनां)

अव्वल उस्ताद के कदम की षाक हो,
 हिरस^६ बुगुजार^७ सब छोड़ि फैना^८ ।

१-पापी । २-भूलता । ३-पानी (वीर्य) । ४-संयुक्त । बनीठनी ।
 ५-मालिक और पति स्त्री को उलाहना देने में कड़ा शब्द है गाली के बरा-
 बर तथा सत्य भी है कि ईश्वर से मालिक को भूली । ६-हिर्से = कामना,
 इच्छा, लोभ । ७-बुगुजार = छोड़ दे । ८-फेनपिंड = मिथ्या वस्तुओं
 को अथवा ग्रामीण भाषा में फैन = मिथ्या कर्म ।

यार दिलदार दिल मांहि तूं याद कर,
 है तुझो पास तूं देषि नैना ॥
 जान का जान^१ है जिंद का जिंद^२ है,
 है सधुन का सधुन^३ कछु समुझि सैनां ।
 दास सुंदर कहै सकल घट मैं रहै,
 एक तूं एक तूं बोलि मैनां ॥ ४ ॥

मनहर छंद

बार बार कह्यो तोहि मावभान क्यों न होहि,
 ममता की मोठ सिर काहे कौं धरतु है ।
 मेरौ धन मेरौ धाम मेरौ सुत मेरी बाम,
 मेरे पशु मेरौ ग्राम भूल्यो यों फिरतु है ॥
 तूं तौ भयौ बावरौ बिकाइ गई बुद्धि तेरी,
 ऐसो अंध कूप गृह तामैं तूं परतु है ।
 सुंदर कहत तोहि नेक हूँ न आवै लाज,
 काज कौं बिगारि कै अकाज क्यों करतु है ॥ ६ ॥
 तेरै तौ कौं पेच परगै गाँठि अति घुरि गई,
 ब्रह्मा आइ छोरै क्यों हिं छूटत न जबहू ।
 तेल सौं भिजोइ करि चोथरा लपेट राखै,
 कूकर की पूँछ सूधी होइ नहीं तबहू ॥

१-ज्ञानी—जाननेवाला, जीव । २-जीव । भूत । ३-बात ।
 भेद की बात ।

सासू देत सीध बहू कीरी कौं गनति जाइ,
 कहत कहत दिन बीत गह्यो सबहू ।
 सुंदर अज्ञान ऐसौ छाड़्यो नहिं अभिमान,
 निकसत प्रान लषै चेत्यो नहिं कबहू ॥ ७ ॥
 बालू मांहि तेल नहिं निकसत काहू बिधि,
 पाथर न भीजै बहु वरषत घन^१ है ।
 पानी कै मथे^२ ते^३ कहूँ घोव नहिं पाइयत,
 कूकस कै कूटे^४ नहिं निकसत कन है ॥
 सून्य कूं मूठो भरे तें हाथ न परत कछु,
 ऊसर कै बाहें कहाँ उपजत अन है ।
 उपदेश औषध कवन बिधि लागै ताहि,
 सुंदर असाध्य रोग भयौ जाकै मन है ॥ ८ ॥
 बारू कै मंदिर मांहि बैठि रह्यौ थिर होइ,
 राषत है जीवने की आसा केऊ दिन का ।
 पल पल छीजत घटत जात घरी घरी,
 बिनसत बार कहा षवरि न छिन की ॥
 करत उपाइ भूठै लैनदैन पान पान,
 मूसा इत उत फिरै ताकि रही मिनकी^२ ।
 सुंदर कहत मेरी मेरी करि भूल्यौ सठ,
 चंचल चपल माया भई किन किन की ॥ १० ॥
 घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन,

भीजत ही गरि जात माटी कौसौ ढंल है ।
 मुकति कै द्वारे आइ^१ सावधान क्यों न होहि,
 बार बार चढ़त न त्रिया कौ सौ तंल है ॥
 करि लै सुकित हरि भजन अखंड उर,
 याही में अंतर^२ परै यामैं ब्रह्म मेल है ।
 मनुष जनम यह जीति भावै हारि अब,
 सुंदर कहत यामैं जुवा कौ सौ षेल है ॥ १३ ॥
 जोवन कौ गयौ राज और^३ सब भयौ साज,
 आपुनि दुहाई फेरि दमामो बजायौ^४ है ।
 लकुटी हथियार लिए नैनन की ढालि^५ दिए,
 सेत वार भए ताकौ तंबू सौ तनायौ है ॥
 दसन गए सु मानै दग्गबान दूर कीए,
 जौंगरी^६ परो सु औरै बिछौना बिछायौ है ।
 सीस कर कंपत सु सुंदर निकारयौ रिपु,
 देषत ही देषत बुढ़ापै दैरि आयौ है ॥ १४ ॥

इंदव छंद

पाइ अमोलिक देह इहै नर क्यों न विचार करै दिल अंदर ।
 कामहु क्रोधहु लोभहु मोहहु लूटत हैं दसहुँ दिसि द्वंदर^७ ॥

१-मनुष्य देह पाकर । २-ब्रह्म से दूरी । ३-अन्य भिन्न ।
 ४-नकारा बजा चुका । ५-अंधा हो गया । आंख की ढकनी
 ढाल सी है सो ही ढाल हो गई । जैसे ढाल आगे आने से आगे कुछ
 नहीं दिखाई देता । ६-जुरी, लुरी, बुढ़ापे से सिमटी खाल । ७-दुंद
 मचा कर । 'अंदर' अनुप्रास मानै तो 'सुंदर' को 'स्वंदर' पढ़ें ।

तू अब वंछत है सुरलोकहि कालहु पाय परै सु पुरंदर ।
छाड़ि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धरि आतमराम भजै किन सुंदर ॥१७॥
इंद्रिनि के सुख मानत है सठ या हित ते बहुतै दुख पावै ।
ज्यों जल में भूष मांसहि लोलत स्वाद बध्यौ जल बाहरि आवै ॥
ज्यों कपि मूठि न^२ छाड़त है रसना बसि बंदि परयो बिललावै ।
सुंदर क्यों पहिले न सँभारत जो गुर पाई सुकान बिधावै ॥१८॥
देषत के नर दोसत है परि लच्छन तो पशु के सब ही हैं ।
बोलत चालत पीवत पात सुवै घर वे बन जात सही हैं ॥
प्रात गए रजनी फिरि आवत सुंदर यों नित भारवही हैं ।
और तो लच्छन आइ मिले सब एक कमी सिर सिंग नहीं हैं ॥२१॥
तू ठगि कै धन और को^३ ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै ।
आगि लगै सब ही जरि जाय सु तू दमरी दमरी करि जोरै ॥
हाकिम कौ डर नाहिंन सूझत सुंदर एकहि बार निचोरै ।
तू परचै नहिं आपुन पाइसु तेरिहि चातुरि तोहि ले बोरै ॥२५॥

मनहर छंद

करत प्रपंच इनि पंचनि कै बस परयौ,
परदारा रत भै^४ न आनत बुराई कौ ।

१—इसमें आठ भगण (८॥) होने से २४ अक्षर किरीट सवैया है, इंदव नहीं । आगे १८ आदि संख्या के छंद इंदव ही हैं । २—मटकी में खाने के लालच से बंदर ने हाथ डाला कि फंदे में हाथ फँस गया । (देखो 'पंचंद्रिय चरित्र' का उपदेश ३) । ३—यहाँ इंदव के लक्षणानुसार ह्रस्व वर्ण होना था परंतु सुंदरदासजी प्रायः गण नियम नहीं निबाहते । ४—भय, डर ।

परधन हरै परजीव की करत घात,
 मद्य मांस षाड़ लव लेश न भलाई कौ ॥
 होइगौ हिसाब तब मुख तें न आवै ज्वाब,
 सुंदर कहत लेषा लेत राई राई कौ ।
 इहाँ तो किए विलास जम की न तोहि त्रास,
 उहाँ तौ न हूँ है कछु राज पोपांवाई^१ कौ ॥ २६ ॥
 दुनिया को दैरता है औरति कौ लौरता^२ है,
 औजूद^३ को मोरता है बटोही सगई^४ का ।
 मुरगी कौ मोंसता है बकरी कौ रोसता^५ है,
 गरीब कौ पोसता है बेमिहर^६ गाइ का ॥
 जुलम कौ करता है धनी सौं न डरता है,
 दोजष कौ मरता है षजाना बलाइ का ।
 होइगा हिसाब तब आवैगा न ज्वाब कछु,
 सुंदर कहत गुनहगार है पुदाइ का ॥ २७ ॥
 कर कर आयौ^७ जब घर घर काट्यो नार,^८
 भर भर बाज्यौ ढोल घर घर जान्यौ है ।
 दर दर दैरयौ जाइ नर नर आगे दीन,
 बर बर बकत न नैक अलसान्यौ है ॥

१-पोल का राज । २-लड़ता है । ३-शरीर, काया । ४-
 संसाररूपी सराय का मुसाफिर । ५-मार खाता है । ६-शत्रु ।
 ७-पूर्व जन्म के कर्म करके यहाँ जन्म लिया । ८-नाग (बच्चे की नाभि
 का नाल) काटा अर्थात् सब जन्मक्रिया हुई ।

सर सर सोधै धन तर तर तोरै पात,^१
 जर जर काटत अधिक मोद मान्यौ है ।
 फर फर फूल्यौ फिरै डर डरपै न मूढ़,
 हर हर हँसत न सुंदर सकान्यौ है ॥ २८ ॥
 जनम सिरानौ^२ जाय भजन विमुख सठ,
 काहे कौं भवन^३ कूप बिन मीच मरिहै ।
 गर्हत अविद्या जानि शुक् नलिनी ज्यों मूढ़,
 करम विकरम करत नहिं डरिहै ॥
 आपुहि तैं जात अंध नरकनि बार बार,
 अजहूँ न शंक मन माहि अब करिहै ।
 दुख कौ समूह अवलोकि कै न त्रास होइ,
 सुंदर कहत नर नागपासि^४ परिहै ॥ २९ ॥

(३) काल चितावनी का अंग

इंदव छंद

तैं दिन चारि विराम लियौ सठ तेरे कहैं कछु ह्वै गइ तेरी ।
 जैसहिं बाप ददा गए छांड़ि सु तैसहिं तूं तजि है पल फेरी ॥

१-जैसे रोंख से पत्ता तोड़कर भरोटा बनाया जाता है । २-बीता जाता है । ३-घर—शरीर वा संसार । ४-यह छंद चित्रकाव्य की रीति से नागबंध रूप में आता है । लिखित प्राचीन पुस्तक में सुंदरदासजी ने अपने हाथ से यह चित्र बनाया है । इसी से यहाँ भी दिया है । नागपाश प्राचीन काल में एक महाअस्त्र होता था जिससे बड़े बड़े योद्धा बाँधे जाते थे । यह संसार भी वैसा ही बंधन है ।

मारिहै काल चपेटि अचानक होइ घरीक मैं राष की ढेरी ।
 सुंदर लैन चलै कछु संग सु भूलि कहै नर मेरि हि मेरी ॥ ३ ॥
 कै यह देह जराइ कै छार किया कि किया कि किया कि किया है ।
 कै यह देह जिमीं महिं पादि दिया कि दिया कि दिया कि दिया है ॥
 कै यह देह रहै दिन चारि जिया कि जिया कि जिया कि जिया है ।
 सुंदर काल अचानक आइ लया कि लिया कि लिया कि लिया है १४
 तू कछु और विचारत है नर तेरी विचार धरौ हि रहैगौ ।
 कोटि उपाय करै धन कै हित भाग लिष्यौ तितनौहि लहैगौ ॥
 भोर कि सांभ घड़ी पल सांभ सु काल अचानक आइ गहैगौ ।
 राम भज्यौ न कियौ कछु सुकृत सुंदर यौ पछिताइ कहैगौ ॥ ७ ॥
 सोइ रह्यौ कहा गाफिल हूँ करि तौ सिर ऊपर काल दहारे २ ।
 धामस धूमस लागि रह्यौ सठ आय अचानक तोहि पछारै ॥
 ज्यों वन में मृग कूदत फाँदत चित्रक ३ लैनख सौं उर फारै ।
 सुंदर काल डरै जिहि कै डर ता प्रभु कौ कहि क्यों न सँभारै ॥ १० ॥

मनहर छंद

करत करत धंध कछुव न जानैं अंध,
 आवत निरुद दिन आगिलौ चपाकि दै ४ ।

१-क्रिया की पुनरुक्ति कालक्रम और फल निश्चय वे दिखाने को है ।
 २-गर्जना करै । ३-चीता । ४-भट—अचानक बिजली की नाई ।
 'दै' शब्द रजवाड़ी भाषा में क्रियाविशेषण होता है जिसका अर्थ 'कर के' होता है । इसका दूसरा रूप 'देनी' भी होता है, जैसे, 'भटदेणी' ।

जैसे बाज तीतर कौं दाबत अचानचक,
 जैसे बक मछरी कौं लीलत लपाकि दै^१ ॥
 जैसे मच्छिका की घात मकरि करत आइ,
 जैसे साँप मूषक कौं प्रसत गपाकि दै^२ ।
 चेत रे अचेत नर सुंदर सँभारि राम,
 ऐसैं तोहि काल आइ लेइगौ टपाकि दै^३ ॥ १४ ॥
 मेरौ देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब,
 मेरौ धन माल मैं तो बहु विधि भारौ हैं^४ ।
 मेरे सब सेवक हुकम कोऊ मेटै नाहिं,
 मेरी जु ती कौ मैं तो अधिक पियारौ हैं ॥
 मेरौ वंश ऊँचौ मेरे बाप दादा ऐसे भए,
 करत बड़ाई मैं तौ जगत उजारौ हैं ।
 सुंदर कहत मेरौ मेरौ कर जानैं सठ,
 ऐसै नहिं जानैं मैं तो कालही को चारौ हैं ॥ १५ ॥
 उठत बैसत काल जागत सोवत काल,
 चलत फिरत काल काल वौर धस्यौ है ।
 कहत सुनत काल घातहू पिवत काल,
 काल ही के गाल महि हर हर हँस्यौ है ॥

१-भार से निगलने २-एक सपट्टे में ग्रास कर ले । ३-चट उठा
 लेगा यह प्रभवादि । ४-‘हूँ’ को कहीं कहीं ‘हैं’ भी लिखा है ।
 ‘हैं’ का अर्थ ‘मैं’ भी है ।

तात मात बंधु काल सुत दारा गृह काल,
 सकल कुटुंब काल कालजाल फँस्यौ है ।
 सुंदर कहत एक राम बिन सब काल,
 काल ही को कृत^१ कियौ अंत काल प्रस्यौ^२ है ॥ १७ ॥
 वरषा भए तें जैसैं बोलत भभीरी^३ सुर,
 षंडन^४ परत कहूँ नैक हूँ न जानिए ।
 जैसैं पूंगी बाजत अखंड सुर होत पुनि,
 ताहूँ मैं न अंतर अनेक राग गानिए ॥
 जैसैं कोऊ गुडी^५ कौ चढ़ावत गगन माहिं,
 ताहूँ की तौ धुनि सुनि वैसे ही^६ बषानिए ।
 सुंदर कहत तैसैं काल कौ प्रचंड वेग,
 रात^७ दिन चल्यौ जाइ अचिरज मानिए ॥ २१ ॥
 भूठे हाथी भूठे घोरा भूठे आगै भूठा दोरा,
 भूठा बंध्या भूठा छोरा^८ भूठा राजा रानी है ।
 भूठी काया भूठी माया भूठा भूठे धंधे लाया,

१-कर्म—रचना । २-खाया । काल ही करता है, वही मारता है । ३-भींगरी, झिल्ली । ४-ठहराव । ५-कनकध्वा । डुगडा जिसको घुँघरू बांधकर रात को चराग सहित चढ़ा देते हैं । ६-लगातार शब्द होना । ७-रात दिन ही मानो काले धौले संकेतद्योतक हैं । भागवत में इनको काले धौले चूहे कर आयु काटने के कारण कहा है । ८-छोड़ा—मुक्त किया । मुक्ति भी मिथ्या भ्रम है ।

भूठा मूवा भूठा जाया भूठी याकी बानी है ॥
 भूठा सोवै भूठा जागै भूठा जूमे भूठा भागै,
 भूठा पीछै भूठा लागै^१ भूठे भूठी मानी है ।
 भूठा लीया भूठा दीया भूठा पाया भूठा पीया,
 भूठा सौदा भूठै कीया ऐसा भूठा प्रानी है^२ ॥ २५ ॥
 भूठ सौ बँध्यौ है लाल^३ ताही तैं प्रसत काल,
 काल विकराल व्याल सब ही कौं घात है ।
 नदी कौ प्रवाह चलयौ जात है समुद्र माहिं,
 तैसेँ जग काल ही के मुख में समात है^४ ॥
 देह कौ महत्व तातैं काल कौं भै मानत है,
 ज्ञान^५ उपजे^६ ते^७ वह काल हू विलात है ।
 सुंदर कहत परब्रह्म है सदा अखंड,
 आदि मध्य अंत एक सोई ठहरात^८ है ॥ २६ ॥

इंदव छंद

काल उपावत^१ काल षपावत^२ काल मिलावत है गहि माटी ।
 काल हलावत काल चलावत काल सिषावत है सब आँटी^३ ॥

१-पीछा करै, अनुसरे । * यह छंद सर्ष दीर्घाक्षरी है जो चित्र काव्य का एक रूप है । २-प्यारा, पुत्र । ३-गीता में विराट् स्वरूप के वर्णन में “यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः” इत्यादि है । ४-ज्ञान की उत्पत्ति से कोई भय नहीं । ५-दिक् का अभाव । ६-उपजाता है, बनाता है । ७-नष्ट करता है, लय करता है । ८-चतुरा-इयाँ, चकर ।

(१६६)

काल बुलावत^१ काल भुलावत^२ काल डुलावत^३ है बन घाटी ।
सुंदर काल मिटै तब ही पुनि ब्रह्म विचार पढ़ै जब पाटी^४ ॥२७॥

(४) देहात्मा विच्छेद ओ अंग

इंदव छंद

मात पिता जुवती सुत बांधव लागत है सबकों अति प्यारौ ।
लोग कुटुंब परौ हित राषत होइ नहीं हमतै^१ कहूँ न्यारौ ॥
देह सनेह तहाँ लग जानहुँ बोलत है मुख शब्द उचारौ ।
सुंदर चेतनि शक्ति गई जब बेग कहै घर मांहि^२ निकारौ ॥३॥

मनहर छंद

कौन भाँति करतार कियौ है शरीर यह,
पावक^३ के मध्य देषौ पानी सो जमावनों ।
नासिका श्रवन नैन वदन रसन वैन,
हाथ पाँव अंग नख शिख कौ बनावनों ॥
अजब अनूप रूप चमक दमक उप^४,
सुंदर सोभित अति अधिक सुहावनों ।

१-स्वैचता है । २-आदि सत्य अवस्था का विस्मरण करा देता है । ३-कर्म के फेर में डालकर इतस्ततः ले जाता है । ४-जैसे चट-शाल में बालक पड़े वैसे वात्स्यावस्था से ही पड़े । ५-मांहि—से, बाहर । ६-जठराग्नि में बिंदु का बढ़ना और शरीर बनना । ७-ओप—चमक वा शोभा ।

जाही चन चेतना शक्ति जब लीन होइ,
 ताही चन लगत सबनि कीं अभावनों ॥ ५ ॥
 रज अरु बीरज कौ प्रथम संयोग भयौ,
 चेतना शक्ति तब कौन भांति आई है ।
 कोऊ एक कहैं बीज मध्य ही कियौ प्रवेश,
 किनहूँक पंच मास पीछै कै सुनाई है ॥
 देह कौ विजोग जब देषत ही होइ गयौ,
 तब कोऊ कहौ कहाँ जाइकै समाई है ।
 पंडित ऋषीस्वर तपीस्वर मुनीस्वरऊ,
 सुंदर कहत यह किनहूँ न पाई है^१ ॥ ८ ॥
 देह तौ सुरूप तौलौं जौलौं है अरूप माहिं,
 सब काऊ आदर करत सनमान है ।
 टेढ़ी पाग बाँधि बार बार ही मरोरै मूँछ,
 बाँह उसकारै^२ अति धरत गुमान है ॥
 देस देस ही के लोग आइकै हजूर होहिं,
 बैठ कर तषत कहावै सुलतान है ।
 सुंदर कहत जब चेतना सकति गई,
 उहै देह ताकी कोऊ मानत न आन^३ है ॥ ११ ॥

१—यह विषय कैसा विचार करने के योग्य है सो पाठक स्वयं ध्यान
 दें । २—उकसावै, कुछ कुछ उठावै फिर मरोड़ै । ३—सौगंद, आतंक ।

(१६८)

(५) तृष्णा का अंग

इंदव छंद

नैननि की पल्लही पल में क्षण आध घरी घटिका जु गई है ।
जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि साँझ गई तब राति भई है ॥
आज गई अरु काल्हि गई परसों तरसों कछु और ठई है ।
सुंदर ऐसै हि आयु गई तृष्णा दिन ही दिन होत नई है ॥ १ ॥

डुमिला छंद^१

कनहीं कन कौ विललात फिरै सठ जाचत है जनही जन कौ ।
तनही तन कौ अति सोच करै नर पात रहै अनही अन कौ ॥
मन ही मन की तृष्णा* न मिटी पुनि धावत है धन ही धन कौ ।
छिन ही छिन सुंदर आयु घटी कबहूँ न गयौ बन ही बन कौ २॥३॥

इंदव छंद

लाष करोरि अरब्व परब्वनि नीलि पदम्भ तहाँ लग घाटी ।
जोरिहि जोरि भँडार भरे सब और रही सु जिमीं तर दाटी^२ ॥
तौहुं न तोहि संतोष भयौ सठ सुंदर तै' तृष्णा नहिं काटी ।
सूक्त नाहिंन काल सदा सिर मारि कै' थाप मिलाइ है माटी॥४॥
भूष नचावत रंकहि राजहिं भूष नचाइ कै' विश्व बिगोई ।
भूष नचावत इंदु सुरासुर और अनेक जहाँ लग जोई ॥

१-यह गणछंद २४ अक्षर का है जिसमें ७ सगण (115) होते हैं ।

* छंद के नियम से 'तृसना' पढ़ना चाहिए । २-इसमें से चित्र बनता है । ३-पृथ्वी में गाढ़ दी ।

भूष नचावत है अध ऊरध तीनहुँ लोक गनै कहा कोई ।
सुंदर जाइ तहाँ दुख ही दुख ज्ञान बिना न कहूँ सुख होई॥६॥

(हे तृसना कहि कै तुहि थाक्यौ)

तैं कउ कान धरी नहिँ एकहु बोलत बोलत पेटहि पाक्यौ ।
हैं कोउ बात बनाइ कहूँ जब तैं सब पीसत हो सब फाँक्यौ^१ ॥
केतक दौस भये परमोधत^२ तैं अब आगहिँ^३ कौं रथ हाँक्यौ^४ ।
सुंदर सीष गई सब ही चलि तृसना कहि कै तुहि थाक्यौ॥१२॥

(६) अधीय^१ उराहने का अंग

[उपनिषदों में ऐसा वर्णन आया है कि सृष्टि के आदि, अंत और मध्य तीनों में बुधा प्रधान है । तृष्णा भी उसी बुधा का अंग है । सर्वभक्षक, सर्वव्यापक अग्नि भी विराट विश्व की भूख ही कही जाती है, सब भूतव्यापिनी यह बुधा जीवों को कर्मों में प्रेरणा करती रहती है । इष्ट, भोज्य और अभिलषित पदार्थों के न मिलने से प्राणियों को अधीरता होती है; विशेष करके उत्कट बुधा जब व्याप्त होती है उस समय धीरों का भी धैर्य छूट जाता है । इस बुधा का प्रधान स्थान पेट है । यह पेट पापी जो कुछ नाच नचाता है नाचना पड़ता है । राजा, रंक, ज्ञानी, ध्यानी, पंडित, मूर्ख आबाल वृद्ध सब इसके वशीभूत हैं । इसी पेट की महिमा को अथवा तज्जनिन अधैर्य की व्यवस्था को

१-‘पीसते फाँकना’ मुहावरा है । काम के होने से पहले ही उतावलापन कर काम बिगाड़ना । २-प्रबोधन करते, समझाते । ३-आगे को ही । ४-रथ हाँकना, मुहावरा है । जैसे रथ में बैठनेवाला किसी की प्रतीक्षा न कर अभिमान से आगे चला जाता है । यहाँ तृष्णा की वृद्धि से प्रयोजन है ।

महात्मा सुंदरदास जी ने सुललित शब्दावरण में द्वादश छंदों में वर्णन किया है । इस अंग को “पेट का अंग” भी कहा जाता तो ठीक होता । इस पेट की विपत्ति से उकता कर मनुष्य कभी कभी परमेश्वर को भी उपालंभ देने लग जाता है और अपनी प्रारब्ध को भी कोसता है । ऐसी बातों को भी चेज भरे वाक्यों में ग्रंथकर्त्ता ने लिखा है ।]

इंदव छंद

पाव दिए चलनै फिरनै कहूँ हाथ दिए हरि कृत्य करायौ ।
कान दिए सुनिए हरि कौ जस नैन दिए तिनि भाग दिषायौ ॥
नाक दियौ मुख सोभत ताकरि जीभ दई हरि कौ गुन गायौ ।
सुंदर साज दियौ परमेश्वर पेट दियौ परि पाप लगायौ ॥ १ ॥
कूप भरै अरु वापि^१ भरै पुनि ताल भरै वरषा रितु तीनों ।
कोठि भरै घट माट भरै घर हाट भरै सब ही भर लीनों ॥
षंदक पास उषारि भरै पर पेट भरै न बड़ी दर^२ दीनों ।
सुंदर रीतुई^३ रीतु रहै यह कौन षडा परमेश्वर दीनों ॥ २ ॥

मनहरन छंद

किधौं पेट चूल्हा किधौं भाटी किधौं भार आहि,
जोई कछु भोकिए सु सब जरि जातु है ।
किधौं पेट थल किधौं वावी किधौं सागर है,
जितौ जल परै तितौ सकल समातु है ॥
किधौं पेट दैत्य किधौं भूत प्रेत राक्षस है,
षावुं षावुं करै कहूँ नैकु न अघातु है ।

सुंदर कहत प्रभु कौन पाप लायौ पेट,
जब तैं जनम भयौ तब ही कौ पातु है ॥ ३ ॥
पाजी^१ पेट काज कोतवाल कौ अधीन होत,
कोतवाल सु तौ सिकदार आगे लीन है ।
सिकदार दीवान कै पीछे लग्यो डोलै पुनि,
दीवान हूँ जाइ पातिसाह आगें दीन है ॥
पातसाहि कहै या पुदाइ मुझे और देइ,
पेट ही पसारै नहि पेट बसि कीन है ।
सुंदर कहत प्रभु क्यों हूँ नहि भरै पेट,
एक पेट काज एक एक कौ अधीन है ॥ ५ ॥

इंदव छंद

पेटहि कारन जीव हतै बहु पेटहिं मांस भषैरु सुरापी^२ ।
पेटहि लैकर चोरि करावत पेटहि कौं गठरी गहि काषी^३ ॥
पेटहि पांसि गरे महिं डारत पेटहि डारत कूपहु वापी ।
सुंदर काहि को पेट दियौ प्रभु पेट सो और नहीं कोउ पापी ॥ ६ ॥
औरन कौ प्रभु पेट दियौ तुम तेरे तौ पेट कहूँ नहिं दीसै ।
ये भटकाइ दिए दशहूँ दिशि कोउक राँधत कोउक पोसै ॥
पेटहि कारनि नाचत हैं सब ज्यों घर ही घर नाचत कीसै^४ ।
सुंदर आपु न पाहु न पीवहु कौन करी इनि ऊपर रीसै^५ ॥ १० ॥

१—पयादा । २—सुरा पीनेवाला होता है । ३—काटी । ४—बंदर । ५—कोप ।

(१७२)

मनहर छंद

काहे कौं काहू कै आगै जाइ कै अधीन होइ,
 दीन दीन वचन उचार मुख कहते ।
 जिनि कै तौ मद अरु गरब गुमान अति,
 तिनि कै कठोर बैन कबहूँ न सहते ॥
 तुम्हारेई भजन सौं अधिक लैलीन अति,
 सकल कौं त्यागि कै एकंत जाइ गहते ।
 सुंदर कहत यह तुमहीं लगायौ पाप,
 पेट न हुतौ तौ प्रभु बैठि हम रहते ॥ ११ ॥

(७) विश्वास को अंग

[उपर्युक्त अंग में अधैर्य और पेट की पुकार से मानो एक प्रकार अविश्वास की नकल दीख पड़ती है। इसके साथ ही ग्रंथकर्ता ने विश्वास का अंग जुटा दिया है जिसमें जगद्भर्ता की पोषण-शक्ति और उसके अद्भुत प्रबंध को दिखाया है कि वह ईश्वर ऐसा शक्तिमान् है कि जीव की उत्पत्ति के साथ ही उसके पालन पोषण का प्रबंध कर देता है। जिसको चोंच देता है उसको चून भी देता है, जिसका जैसा आहार है उसको वैसा ही पहुँचता है; कीड़ी को कण और हाथी को मण। कोई भी जंतु जीव भूखा रहकर नहीं सोता, ईश्वर सबको पहुँचाता है। इसलिये उस पर विश्वास रखना चाहिए और वृथा पेट की पुकार नहीं करनी चाहिए।]

इंदब छंद

होहि निचिंत करै मति चितहि चंच दई सोइ चित करैगौ ।
 पाँव पसारि परगौ किन सोवत पेट दियौ सोइ पेट भरैगौ ॥

जीव जितै जल कै थल कै पुनि पाहन में पहुँचाइ धरैगौ ।
 भूषहि भूष पुकारत है नर सुंदर तूँ कहा भूष मरैगो ॥ १ ॥
 धोरज धारि विचार निरंतर तोहि रच्यौ सु तौ आपुहि ऐहै^१ ।
 जेतक भूष लगी घट प्राणहि तेतक तू अनयासहि पैहै^२ ॥
 जौ मन में वृसना करि धावत तौ तिहुँ लोकन घात अघैहै^३ ।
 सुंदर तू मति सोच करै कछु चंच दई सोइ चूनिहु दैहै ॥ २ ॥

मनहर छंद

काहे कौ वयूरा^४ भयौ फिरत अज्ञानी नर,
 तेरौ तो रिजक तेरै घर बैठै आइहै ।
 भावै तूँ सुमेरु जाहि भावै जाहि मारु देश,
 जितनौक भाग लिष्यै तितनौ हि पाइहै ॥
 कूप माँझ भरि भावै सागर कै तीर भरि,
 जितनौक भाँडौ नीर तितनौ समाइहै ।
 ताहितै संतोष करि सुंदर विश्वास धरि,
 जितनौ रच्यौ है घट सोइ जु भराइहै* ॥ ८ ॥
 द्वेषि धौँ सकल^५ विश्व भरत भरनहार,
 चूँच कै समान चूनि सबहि कौ देत है ।
 कीट पशु पंखी अजगर मच्छ कच्छ पुनि,
 उनके न सोदा कोउ न तौ कछु घेत है ॥

१-आ जायगा वा आ जाता है । २-पायगा । ३-वृत्त होगा या होता है । ४-पवन का बबूला । * पाठांतर—‘अमराई’ । ५-तू देख तो सही, क्या तू नहीं देखता ।

पेटहि कै काज राति दिव न भ्रमत सठ,
 में तो जान्यौ नीकै करि तू तौ कोउ प्रेत है ।
 मानुष शरीर पाइ करत है हाइ हाइ,
 सुंदर कहत नर तेरै सिर रेत^१ है ॥ ११ ॥

(८) देहमलिनता गर्वप्रहार को अंग

[इस जणभंगुर काया के स्थूलांश के गुणों से गार्धत होनेवाले अल्पज्ञों के उपदेश निमित्त यह चेतावनी है । इस देह में अनेक मल भरे हैं । हाइ, मांस, रक्त, कफ आदि मल से पूरित रहते हैं तिस पर भी लोग ऐंठते और गर्व में भरे रहकर ईश्वर और सुकार्यों को भूले रहते हैं सो ही दुःख का कारण होता है ।]

मनहर छंद

देह तौ मलोन अति बहुत विकार भरे,
 ताहू माहि जरा व्याधि सब दुख रासी है ।
 कबहुँक पेट पीर कबहुँक सिरवाहि^२,
 कबहुँक आँखि कान मुख में विथा सी है ॥
 औरऊ अनेक रोग नख सिख पुरि रहे,
 कबहुँक स्वास चलै कबहुँक ष सी है ।
 ऐसौ या शरीर ताहि आपनों कै^३ मानत है,
 सुंदर कहत यामैं कौन सुखवासी है ॥ १ ॥

१—धूल, मिट्टी, क्योंकि मनुष्य होकर पशुओं से भी हीन दशा को प्रसंतोष से पहुँच गया । २—‘मयवाय’—शिरःपीड़ा । ३—कैसे, क्या, क्योंकर ।

जा शरीर माहिं तूं अनेक सुख मानि रख्यौ,
ताहि तूं विचारि यामैं कौन बात भली है ।
मेद मज्जा मांस रग रगनि माहीं रक्त,
पेटहैं पिटारीसी मैं ठौर ठौर मली है ॥
हाड़नि सौं मुख भर्यौ हाड़ ही कै नैन नाक,
हाथ पाँव सोऊ सब हाड़ हां की नली है ।
सुंदर कहत याहि देषि जनि भूलै कोइ,
भांतर भंगार^१ भरी ऊपर तैं कली^२ है ॥ २ ॥

(६) नारीनिंदा का अंग

[निज स्थूल दे के अभिमान में तो मनुष्य मरै सो मरै यह अन्य शरीर अर्थात् नारी के रूप रंग से भी विवश हो जाता है क्योंकि यह इस बात को भूठा हुआ है कि नारी का शरीर भी तो वही मलिन पदार्थों का संग्रह है, उदरान्त वद सोह-पाश में बद्ध और काम-बाण से विद्ध होकर इस लोक और प लोक दोनों को बिगाड़ती है । परमार्थ तत्व के अर्थियों को नारीरूपी विघ्न से सदा वचना ही हितकारी है, यह इस लोक में नरक वर्ग-साधक और अपवर्ग-बाधक शत्रु है । इस अंग के छंद भी गचक और प्रसिद्ध हैं ।]

मनहर छंद

कामिनि को तन* मानो कहिए सघन बन.

वह कोऊ जाइ सु तो भूलिकैं परतु है ।

१—टूटी चंजै, कूड़ा कर्कट । २—कलई, रांगे वा सफेदी की पुत।
* पाठांतर—देह ।

कुंजर है गति कटि केहरी को भय जाँमें,
 बेनी काली नागनीऊँ फन कौँ धरतु है ॥
 'कुच हैं पहार जहाँ काम चौर रहै तहाँ,
 साधिकै कटाच बान प्रान कौँ हरतु है ।
 सुंदर कहत एक और डर अति तामैं,
 राक्षस वदन पाँउँ पाँउँ ही करतु है ॥ १ ॥
 विष ही की भूमि माँहि विष के अँकूर भए,
 नारी विष वेलि बढ़ी नख सिख देखिए ।
 विष ही के जर मूर विष ही के डार पात,
 विष ही के फूल फर लागे जू विसेषिए ॥
 विष के तंतू पसारि उरभाए आँटी मारि^१,
 सब नर वृत्त पर लपटी ही लेषिए ।
 सुंदर कहत कोऊ संत तरु बंचि गए,
 तिनकै तो कहूँ लता लागी नहिँ पेषिए ॥ २ ॥

रसग्रंथों की निंदा । कुंडलिया छंद

रसिकप्रिया^२ रसमंजरी^३ और सिंगार^४ हि जानि ।

चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि^५ ॥

१—कटाच हावभाव आदि तंतु फैलाकर, वल्लरी के समान, माया-जाल में फँसा वा लपेटकर । आँटी = पेंच, लपेट । मारि = डालकर ।

२—केशवदासकृत (नायिका-भेद का) रसिकप्रिया ग्रंथ । ३—संस्कृत में नायिका-भेद का ग्रंथ । इसी का अनुवाद 'सुंदर शृंगार' ग्रंथ है ।

४—सुंदर कवि आगरेवाले ने 'रसमंजरी' संस्कृत का छंदोबद्ध अनुवाद सं० १६८८ में किया था । ५—लाकर वा मर्यादा ।

(१७७)

विषै बनाई भानि लगत विषयिन कौं प्यारी ।
जागै मदन प्रचंड सराहैं नखसिख^१ नारी ॥
ज्यौं रोगी मिष्टान्न षाइ रोगहि विस्तारै ।
सुंदर यह गति होइ जु तौ रसिक प्रिया धारै ॥ ५ ॥

(१०) दुष्ट को अंग

मनहर छंद

आपने न दोष देष पर के औगुन पेधै,
दुष्ट को सुभाव उठि निंदाई करतु है ।
जैसे काहू महल सँवार राख्यौ नीकैं करि,
कोरी तहाँ जाइ छिद्र दूँढ़त फिरतु है ॥
भोर ही तें साँभ लग साँभ ही तें भोर लग,
सुंदर कहतु दिन ऐसे^१ ही भरतु^२ है ।
पाव के तरोस की न सूझै आगि मूरष कौं,
और सौं कहतु सिर ऊपर बरतु है ॥ १ ॥

इंदव छंद

घात अनेक रहें उर अंतर दुष्ट कहै मुष सौं अति मीठी ।
लोटाट पांटाट व्याघ्र^३हि ज्यौं नित ताकत है पुनि ताहि की पीठी ॥

१—'नखसिख' काव्य-लक्ष्य किस पर था, यह विदित नहीं है, किसी का नाम नहीं दिया है । २—पूरा करता है—बिताता है ।

३—चीता ।

सु.—१२

(१७८)

ऊपर ते' छिरकै जल आनि सु हेठ^१ लगावत जारि अँगोठो ।
 या महिं कूर कछू मति जानहु सु^२ ढर आपुनि आँषिनि दीठी ॥२॥
 आपुने काज सँवारन कै हित और कौ काज बिगारत जाई ।
 आपुनौ कारज होउ न होउ बुरौ करि और को डारत भाई ॥
 आपुहु षावत औरहु षावत षोइ दुवों घर देत बहाई ।
 सुंदर देखत ही बनि आवत दुष्ट करै नहिं कौन बुराई ॥३॥
 सर्प डसै सुन ही कछु तालक^२ बीछु लगै सु भलौ करि मानौं ।
 सिंहहु पाइ तौ नाहिं कछू डर जौ गज मारत तौ नहिं हानौं ॥
 आगि जरौ जल बूढ़ि मरौ गिरि जाय गिरौ कछु भै मति आनौं ।
 सुंदर और भले सबही दुख दुर्जन मंग भलौ जनि जानौं ॥५॥

(११) मन को अंग

[मन का स्वभाव, मन का वेग, मन का बल, मन की चंचलता तथा मन के अवगुण, और फिर मन के गुण इस प्रकार बुराई भलाई मन्त्र अंशों का वर्णन २६ छंदों में हुआ है । यह मन वह पदार्थ है जिसके वर्णन में बड़े बड़े शास्त्र लिखे गए हैं, जिसके निरोध और वश करने के उपायों के विषय में राजयोग, हठयोगादि अनेक सिद्धांत विद्यमान हैं, जिसकी बुराई है तो इतनी है कि जानने से इसी को अति निकृष्ट प्रमाणित किया है और जिसकी भलाई है तो इतनी है कि इस ही को ब्रह्म रूप बता दिया है । मन संबंधी विज्ञान और दर्शन शास्त्र इस संसार में अति विस्तृत है । यह आंतरिक सूक्ष्म शक्ति का समुदाय है अथवा एक ही शक्ति अनेक गुण या वृत्ति वा शक्ति विशेष रखती

१-नीचे । २-तत्रालुक का अपभ्रंश—संसर्ग । चिंता ।

है। यह अंतर्धर्ती और बहिर्धर्ती एक ही है वा भिन्न है। बाहरी पदार्थों से ज्ञान उत्पन्न वा प्राप्त होता है वा सर्व बहिर्व्यापी सृष्टि केवल अंतर्व्यापी पदार्थ का ही कार्य वा आभास मात्र है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इस प्रकार चार भिन्न भिन्न पदार्थ हैं अथवा ये सब एक ही हैं केवल इनके व्यापार ही एक शक्ति के चार रूप में वर्तते हैं इत्यादि अनेक विचार बाहुल्य शास्त्रों और विद्वानों में विविध रूप से चल रहे हैं। सुंदरदासजी के इन छंदों में इसी बड़ी शक्ति-मन-की कुछ बातें आई हैं। सुंदरदासजी का वचन कल्पवृक्ष के समान है, अधिकारी की वृत्ति, रुचि और योग्यता के अनुसार अर्थ दे देता है। साधारण कोटि के स्त्री बालक अपढ़ लोगों को भी एक प्रकार का आनंद मिलेगा तो पठित और रसादि-व्यवसायी को एक विलक्षण ही रस प्राप्त होगा, एवं उच्चतम ज्ञानकोटि के विचारशाली और ज्ञाननिष्ठ अंतर्द्रष्टा को एक अनिर्ध्वजनीय आनंद प्राप्त होगा। यही महात्माओं के वचन का लक्षण होता है।]

मनहर छंद

हटकि हटकि मन राषत जु छिन छिन,
सटकि सटकि चहुँ ओर अब जात है।
लटकि लटकि ललचाइ लोल बार बार,
गटकि गटकि करि विष फल पात है ॥
भटकि भटकि तार तोरत करम हीन,
भटकि भटकि कहूँ नैकु न अघात है।
पटकि पटकि सिर सुंदर जु मानो हारि,
फटकि फटकि जाइ सुधौ कौन बात है ॥ १ ॥

पलुही मैं मरि जाय पलुही मैं जीवतु है,
 पलुही मैं पर हाथ देषत बिकानौ है ।
 पलुही मैं फिरै नवखंड ब्रह्मंड सब,
 देख्यौ अनदेख्यौ सु तौ यातैं नहिं छानौ^१ है ॥
 जातौ नहिं जानियत आवतौ न दोसै कछु,
 ऐसी सी बलाइ अब तासौं परगौ पानौ है ।
 सुंदर कहत याकी गति हूँ न लषि परै,
 मन की प्रतीत कोऊ करै सु दिवानौ है ॥ २ ॥
 घेरिए तो घेरगौ हू न आवत है मेरौ पूत,
 जोई परमोधि सु कान न धरतु है ।
 नीति न अनीति देखै सुभ न असुभ पेष्ट,
 पलुही मैं होती अनहोती हु करतु है ॥
 गुरु की न साधु की न लोक वेदहू की शंक,
 काहू की न मानै न तौ काहू तैं डरतु है ।
 सुंदर कहत ताहि धोजिए सुकौन भांति,
 मन कौ सुभाव कछु कछौ न परतु है ॥ ३ ॥
 जिनि ठगे शंकर बिधाता इंद्र देवमुनि,
 आपनौऊ अधिपति^२ ठग्यौ जिन चंद है ।
 और योगी जंगम संन्यासी शेष कौन गनै,
 सबही कौ ठगत ठगावै न सुछंद है ॥

१-योग की दृष्टि से सबही मन को प्रत्यक्ष होते हैं । २-मन के देवता चंद्रमा हैं । मन ने ही चंद्रमा को गौतम नारी के संपर्क से पतिन और कलंकित कराया ।

तापस ऋषीश्वर सकल पचि पचि गए,
 काहू कै न आवै हाथ ऐसो यापै बंद^१ है ।
 सुंदर कहत बसि कौन बिधि कीजै ताहि,
 मन सौ न कोऊ या जगत माहि रिंद^२ है ॥ ७ ॥
 रंक कौ नचावै अभिलाषा धन पाइवे की,
 निसि दिन सोच करि ऐसेहां पचत है ।
 राजा हो नचावै सब भूमिहो कौ राज लैव,
 औरऊ नचावै जोई देह सौ रचत है ॥
 देवता असुर सिद्ध पन्नग^३ सकल लोक,
 कीट पशु पंषी कहु कैसै कै बचत है ।
 सुंदर कहत काहू संत की कही न जाइ,
 मन कै नचाए सब जगत नचत है ॥ ८ ॥

इंदव छंद

दौरत है दशहू दिश कौ सठ वायु लगा तब तैं भयो वैडा^४ ।
 लाज न कानि कछू नहिं राषत शील सुभाव की फारत मैडा^५ ॥
 सुंदर सोष कहा कहि देइ भिदै नहिं वान छिदै नहिं गैडा^६ ।
 लालच लागि गयौ मन वोष^७रि बारह बाट अठारह^८ डा^९ ॥१०॥

१-दांव । २-पागल । 'रिंद' 'बंद' आदि से ठीक मानुप्रास नहीं है । ३-सर्प । ४-बंड—प्रबल वा उद्धत । ५-मेर—डोली खेत की । ६-गैडा नाम का बड़ा चौपाया जिसकी ढाल अभेद्य होती है । ७-विखरना—छितरा जाना । ८-मुहाविरा है—तितर बितर । छिन्न भिन्न ।

है सब कौ सिरमौर ततच्छन जौ अभी-अंतर ज्ञान विचारै ।
 जौ कछु और विषै सुख बंछत तो यह देह अमौलिक हारै ॥
 छाँड़ि कुबुद्धि भजै भगवंतहि आपु तिरै पुनि औरहि तारै ।
 सुंदर ताहि कह्यो कितनी बर तू मन क्यों नहिं आपु सँभारै ॥ १५ ॥

मनहर छंद

हाथी कौ सौ कान किधौं पीपर कौ पान किधौं,
 ध्वजा कौ उडान कहौं थिर न रहतु है ।
 पानी कौ सौ घेर किधौं पौन उरभर किधौं,
 चक्र कौ सौ फेर कोऊ कैसें कै गहतु है ॥
 अरहठ माल किधौं चरपा कौ ब्याल किधौं,
 फंदी घात बाल कछु सुधि न लहतु है ।
 धूम कौ सौ धाव ताकौं राषिवै कौ चाव ऐसी,
 मन कौ सुभाव सु तौ सुंदर कहतु है ॥ २० ॥
 सुख मानै दुख मानै संपति विपति मानै,
 हर्ष मानै शोक मानै मानै रंक धन है ।
 घटि मानै बढ़ि मानै शुभहू अशुभ मानै,
 लाभ मानै हानि मानै याही तैं कृपन है ॥
 पाप मानै पुन्य मानै उत्तम मध्यम मानै,
 नीच मानै ऊँच मानै मानै मेरो तन है ।
 स्वरग नरक मानै बंध मानै मोक्ष मानै,
 सुंदर सकल मानै 'तातै' नाम मन^१ है ॥ २१ ॥

जोई जोई दैषै कछु सोई सोई मन आहि.
 जोई जोई सुनै सोई मन ही कौ भ्रम है ।
 जोई जोई सूँघै जोई षाइ जौ सपर्श होइ,
 जोई जोई करै सोऊ मन ही को क्रम है ॥
 जोई जोई ग्रहै जोई त्यागै जोई अनुरागै,
 जहाँ जहाँ जाइ सोई मनही कौ भ्रम है ।
 जोई जोई कहै सोई सुंदर सकल मन,
 जोई जोई कलपै सु मन हो को भ्रम है^१ ॥ २२ ॥
 एक ही विटप विश्व ज्यों कौ त्यों ही देषियतु,
 अति हो सघन ताकै पत्र फल फूल हैं ।
 आगिले भरत पात नयं नये होत जात,
 ऐसे याही तरु कौ अनादि काल मूल है ॥
 दश चारि लोक लौं प्रसर जहाँ तहाँ रह्यौ,
 अध पुनि ऊरध सूक्ष्म अरु शूल है ।
 कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य,
 सुंदर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है^२ ॥ २३ ॥
 तौ सौ न कपूत कोऊ कतहूँ न देषियत,
 तौ सौ न सपूत कोऊ देषियत और है ।
 तूँ ही आपु भूलि महा नीचहू तें नीच होइ,
 तूँ ही आपु जाने तें सकल सिरमौर है ॥

१-यह भी एक वेदांत का सिद्धांत है । यहाँ मन से महत्त्व अभिप्रेत होगा । २-यह छंद चित्रकाव्य की रीति से वृत्तबंध का रूप पाता है ।

तू ही आपु भ्रम तब भ्रमत जगत देखै,
 तेरे थिर भए सब ठौर ही कौ ठौर है ।
 तू ही जीवरूप तूही ब्रह्म है अकाशवत,
 सुंदर कहत मन तेरी सब दौर है ॥ २४ ॥
 मनही के भ्रम तें जगत यह देखियत,
 मनही कौ भ्रम गए जगत विलात है ।
 मनही के भ्रम जेवरी में उपजत साँप,
 मन के बिचारें साँप जेवरी समात है ॥
 मनही के भ्रम ते मरीचिका कौ जल कहै,
 मनही के भ्रम सीप रूपौ सौ दिपात है ।
 सुंदर सकल यह दीसै मनही कौ भ्रम,
 मनही कौ भ्रम गए ब्रह्म होइ जात है ॥ २५ ॥

(१२) चाणक्य का अंग

['चाणक्य' कोड़ा, कमची वा ताजियाने को कहते हैं। और यह तो उस पशु वा मनुष्य पर फटकारा जाता है जो अन्य उपायों से कभी ढब पर न आवे । उपदेश के तीखे "ताजणें" उन लोगों के लिये हैं जो तत्त्वज्ञान और ईश्वराराधन के मार्ग को तो छोड़ देते हैं, और अन्य आडंबर, दंभ, दिखावट, ढोंग के लिये जप, तप, दान, व्रत, तीर्थ, यज्ञ और पाखंड करते हैं । ज्ञान के अतिरिक्त अन्य सब उपाय, कर्म रूप होने से बंधन के कारण ही होते हैं । उनसे मुक्ति वा कर्मों से छूटना

१—भ्रम ही सब ज्ञान का आवरण और अवरोधक होता है । भ्रम, अविद्या वा उपाधि के हट जाने से शुद्ध आत्मा रह जाती है ।

कैसे हो सकता है, कीच से कीच कैसे धुल सकता है । एक ज्ञान के बिना अन्य सब काम ढकोसले हैं । ऐसे वृथा और अनुपयोगी कामों की सुंदरदासजी ने विस्तृत मीमांसा की है ।]

जोई जोई छूटिबे कौ करत उपाय अज्ञ,
 सोई सोई दृढ़ करि बंधन परत है ।
 जोग जज्ञ तप जप तीरथ व्रतादि और,
 भ्रंषापात^१ लेत जाइ हिंवारै गरत है ॥
 कानऊ फराइ पुनि केशऊ लुचाइ अंग,
 विभूति लगाइ सिर जटाउ धरत है ।
 बिन ज्ञान पाए नहिं छुटत हृदै कीग्रंथि^२,
 सुंदर कहत यौंहों भ्रमि कै मरत है ॥ १ ॥
 जप तप करत धरत व्रत जत मत,
 मन वच क्रम भ्रम कपट सहत तन ।
 बलकल बसन असन फल पत्र जल,
 कसत रसन रस तजत बसत बन ॥
 जरत मरत नर गरत परत सर,
 कहत लहत हय गय दल बल धन ।
 पचत पचत भव भय न टरत सठ,
 घट घट प्रगट रहत न लषत जन * ॥ २ ॥

१—कामना सिद्धि के अर्थ पहाड़ पर से या कुण्ड में गिरते हैं, एवं मोक्ष और सिद्धि के लिये भी । २—संशय और भ्रम की गाँठ ।

* निर्मात्रिक छंद है सब अक्षर अकारांत हैं । यह चित्रकाव्य में अलंकार का प्रकार होता है । यह 'डमरू' नाम का वनाक्षरी का

[सिद्धांत यह है कि चाहे जैसे भी उत्तम कर्म करे तब भी वे कर्म रहेंगे और उनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा । मुक्ति का हेतु केवल ज्ञान ही है और यह ज्ञान निजरूप की प्राप्ति है जो अंतर्दृष्टि के अभ्यास से प्राप्त होता है । मन को दर्पणवत् समझे तो इसका मुँह उलटा करने से स्वरूप-ज्ञान नहीं होगा । यहाँ कहते हैं]

सुंदर कहत मूँधी ओर दिश देष मुख,
हाथ माहीं आरसी न फेरै मूढ करते ॥ ४ ॥

[ज्ञानोदय को सूर्य के प्रकाश समान कहते हैं जिसके सामने अन्य उपाय जुगनू के समान हैं जिससे अंधकार का नाश नहीं होता ।]

सुंदर कहत एक रवि के प्रकाश बिन,
जैगनै की जोति कहा रजनी बिलात है ॥ ५ ॥

[जब तक अंतरंग प्रीति प्रभु के स्वरूप में उत्पन्न न हो और सत्य-ज्ञान का परिचय भी न हो तब तक जितने ऊपरी ढकोसले जप तप आदि के चाहे कितने भी करो वे सब निष्फल हैं । क्योंकि वास्तविक पदार्थ बहिर्दृष्टि को मिलता नहीं है जैसे बाजार में अनेक उत्तम पदार्थ भरे रहें तो क्या अंधा उनको लूट सकता है ।]

कोऊ फिरै नाँगे पाइ कोऊ गूदरी बनाइ,
दंढ की दशा दिखाइ आइ लाग धूट्यौ^१ है ।
कोऊ दूधाधारी हाँइ कोऊ फलाहारी तोय,
कोऊ अधौमुख भूलि भूलि धूम धूट्यौ^२ है ॥

भेद है जिसमें सर्व लघु होते हैं और ३२ वर्ण होते हैं । जत = यती धर्म । क्रम = कर्म । वलकल = छाल, भोजपत्रादि । कसत = घटाता है ।

१-धूतना-धूर्तपन करना-छलना । धूत्यो का रूपांतर है । २-घट लिया है । पिया है ।

कोऊ नहिं पाहिं लौन कोऊ मुख गहै मौन,
 सुंदर कहत योंही वृथा भुस कूट्यौ है ।
 प्रभु सौं न प्रीति माहि ज्ञान सौं परिचै नाहिं,
 देखौ भाई आँधरनि ज्यों बजार लूट्यौ है ॥ ७ ॥

[साधू वेप धारण कर जप तप की आड़ में वंचक लोग भोले स्त्री पुरुषों को ठगते हैं । आप डूबते हैं दूसरों को डुबाते हैं और जिनका यह अंध विश्वास है कि केवल शारीरिक काष्ठाओं से—यथा नीचे सिर और ऊपर पाँव रखना, धूँआँ पीना, मेंह, शीत और घाम को तन पर सहना—सिद्धि प्राप्त होगी वे बड़ी भूल में हैं । सुंदरदासजी कहने हैं—]

घर बूड़त है अरु भाँभड़^१ गावै ॥ ८ ॥

[क्योंकि वासना मिटे बिना, विषय सुख की आशा रहते, क्या सिद्धि मिल सकती है । और कहते हैं ।]

गेह तज्यौ अरु नेह तज्यौ पुनि पेह लगाइ कै देह सँवारी ।
 मेघ सहै सिर सीत सद्यां तनु धूप समै जु पंचाग निवारी ॥
 भूष सहौ रहि रूप तरं परि सुंदरदास सहै दुख भारी ।
 बासन^२छाँड़िकै कासन^३ऊपर आसन मार्यौ पै आस न मारी ॥१०॥
 आगै कछू नहिं हाथ परयो पुनि पोछै बिगारि गए निज भौना ।
 ज्यों काँउ कामिनि कंतहि मारि चली संग औरहि देष सलौना ॥
 सोऊ गयौ तजि कै ततकाल कहै न बनै जु रही मुख मौना ।
 तैसैहि सुंदर ज्ञान बिना सब छाँड़ि भए नर भांडु कै दौना ॥१६॥

१—भाँभ वा भाँभिणी एक वाद्यविशेष होता है । उसको बजाकर साधु लोग भजन गाते हैं । मजीरा के तद्वत् होता है । २—बिछौना । ३—कास—डाभ—वास ।

(१८८)

काहे कौं तू नर भेष बनावत काहे कौं तू दशहू दिश झूलै ।
 काहे कौं तू तनु कष्ट करै अति काहे कौं तू मुख ते कहि फूलै ॥
 काहे कौं और उपाइ करै अब आन क्रिया करिकै मति भूलै ।
 सुंदर एक भजै भगवंतहि तौ सुखसागर में नित भूलै ॥ २३ ॥

(१३) विपरीत ज्ञानी को अंग

[जो मनुष्य अंतःकरण की शुद्धि तो साधनों द्वारा करते नहीं और केवल ज्ञानियों की सी ही बातें करते हैं वा संसार से त्यागी बन जाते हैं, कर्म छोड़ देते हैं, सो न तो इधर के ही रहने न उधर के । ऐसों की विपरीत दशा को दरसाते हैं ।]

मनहर छंद

एक ब्रह्म मुख सौं बनाइ करि कहत हैं,
 अंतःकरण तौ विकारनि सौं भरयो है ।
 जैसे ठग गोबर सौं कूपो भरि राखत है,
 सेर पाँच घृत लैकै ऊपर ज्यों करयो है ॥
 जैसे कोऊ भांडे मांहि प्याज कौं छिपाइ राखे,
 चीथरा कपूर कौ लै मुख बाँधि धरयो है ।
 सुंदर कहत ऐसे ज्ञानी हैं जगत माहि,
 तिनकौ तौ देखि करि मेरी मन डरयो है ॥ २ ॥
 मुख सौं कहत ज्ञान भ्रमै मन इंद्री प्रान,
 मारग के जल में न प्रतिबिंब लहिए ।

(१८६)

गाठि मैं न* पैसा कोऊ भयौ रहै साहूकार,
 बातनि ही मुहर रुपैया गनि गहिए ॥
 स्वपनै मैं पंचामृत जीमि कै तृपति भयौ,
 जागैं ते' मरत भूष षाड्वे को चहिए ।
 सुंदर सुभट जैसे काइर मारत गाल,
 राजा भोज सम कहा गांगौ तेली^१ कहिए ॥३॥
 संसार के सुखनि सौँ आसक्त अनेक बिधि,
 इंद्रीह लोलप मन कबहूँ न गह्यौ है ।
 कहत है ऐसैं मैं तो एक ब्रह्म जानत हौँ,
 ताही ते' छोड़िकैं सुभ कर्मनि कौ रह्यौ है ॥
 ब्रह्म की न^२ प्रापति पुनि कर्म सब छूटि गए,
 दुहूँन तें भ्रष्ट होइ अधबाच बह्यौ है ।
 सुंदर कहत ताहि त्यागिए स्वपच^३ जैसं,
 याही भाँति ग्रंथ में वशिष्ठजीहू कह्यौ है ॥४॥

(१४) वचन विवेक को अंग

[वचन के भेद, वचन की चतुराई, वचन का प्रभाव इत्यादि का रोचक छंदों में वर्णन किया है । इस अंग के छंद बड़े उपयोगी हैं ।]

• पाठांतर—'पैका' । १—धार उज्जैन का महाविद्वान् विद्याप्रेमी प्रसिद्ध राजा भोज हुआ है । उसकी नगरी में गोंगा तेली भी प्रसिद्ध हुआ है जो राजा की स्पर्द्धा करता था । २—नहीं । ३—चांडाल ।

मनहरन छंद

जाकै घर ताजी तुरकीन कौ तबेलो बँध्यो,
 ताकै आगे फेरि फेरि टटुवा १नचाइए ।
 जाकै पासा २ मलमल सिरी ३ साफ ढेर परे,
 ताकै आगे आनि करि चौसई ४ रषाइए ॥
 जाकौ पंचामृत घात घात सब दिन बीते,
 सुंदर कहत ताहि राबरी चषाइए ।
 चतुर प्रवीन आगे मूरष उचार करै,
 सूरज के आगै ५ जैसै जैगणा ६ दिषाइए ॥ १ ॥
 एक वाणी रूपवंत भूषन वसन अंग,
 अधिक विराजमान कहियत ऐसी है ;
 एक वाणी फाटे टूटे अंबर उढाये आनि,
 ताहु माहि विपरीत सुनियत तैसी है ॥
 एक वाणी मृतकहि बहुत सिंगार किए,
 लोकनि कौ नीकी लगै संतनि कौ भैसी ६ है ।
 सुंदर कहत वाणी त्रिविध जगत माहि,
 जानै काऊ चतुर प्रवीन जाकै जैसी है ॥ २ ॥

१--पाठांतर—'नषाइये' । २--बढ़िया वस्त्र लखनऊ का और
 दिल्ली का प्रसिद्ध है । ३--रेशमी महीन वस्त्र । साफ भी बढ़िया वस्त्र
 का एक प्रकार है । ४--मोटा वस्त्र—चौतई—गजी से भी मोटा ।
 ५--जुगनू, पटवीजणां । ६--भय के समान—यथा शृंगार रस—उपन्यास
 आदि गंदे लेख ।

बोलिए तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ,
 ना तौ मुख मौन करि चुप होइ रहिए ।
 जोरिएऊ तब जब जोरिवौऊ जानि परे,
 तुक छंद अरथ अनूप जामै लहिए ॥
 गाइएऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ,
 श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिए ।
 तुकभंग छंद भंग अरथ मिलै न कछु,
 सुंदर कहत ऐसी बानी नहिं कहिए ॥ ४ ॥
 एकनि के वचन सुनत अति सुख होइ,
 फूल से भरत है अधिक मन भावने ।
 एकनि के वचन असम^१ मानौ बरषत,
 श्रवण कै सुनत लगत अलषावने ॥
 एकनि के वचन कंटक कटु विष रूप,
 करत मरम छंद दुख उपजावने ।
 सुंदर कहत घट घट मै वचन भेद,
 उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने ॥ ५ ॥
 काक अरु रासभ^२ उलूक जब बोलत हैं,
 तिनके तौ वचन सुहात कहि कौन कौ ।
 कांकिला ऊसारौ^३ पुनि सूवा जब बोलत हैं,
 सब कोऊ कान दै सुनत रव रौनकौ^४ ।

ताहीतें सुवचन विवेक करि बोलियत,
 योंहीं आँक बाँक^१ बकि तौरिए न पौन^२ कों ।
 सुंदर समुझि कै बचन कों उचारि करि,
 नार्हांतर चुप हूँ पकरि बैठि मौन कों ॥ ६ ॥
 और तौ बचन ऐसे बोलत हैं पशु जैसे,
 तिनके तो बोलिबे में ढंग हू न एक है ।
 काँड रात दिवस बकत ही रहत ऐसैं,
 जैसा विधि कूप में बकत मानों भेक^३ है ॥
 विविध प्रकार करि बोलत जगत सब,
 घट घट मुख मुख वचन अनेक है ।
 सुंदर कहत तातें वचन विचारि लेहु,
 वचन तौ उहै जामैं पाइए विवेक है ॥ ८ ॥
 प्रथमहि गुरु देव मुख तें उचारि कह्यौ,
 वे ही तौ वचन आइ लगे निज हीए हैं ।
 तिन कों विवेक करि अंतहकरन माहि,
 अति ही अमोल नग भिन्न भिन्न कीए हैं ॥
 आपुकी दरिद्र गयौ पर उपकार हंत,
 नग ही निगलि के उगलि नग दीए हैं ।
 सुंदर कहत यह बानी यों प्रगट भई,
 और कोऊ सुन करि रंक जीव जीए हैं ॥ १० ॥

१—अकबक--वृथा बकवाद । २—पौन तोड़ना । हवा फाड़ना ।
 मुहावरा है । ३—मेढक ।

(१८३)

(१५) निगुर्न उपासना का अंग^१

इंदव छंद

मंजन सो जु मनोमल मजन सज्जन सो जु कहै गति गुज्जमै^२ ।
 गंजन सो जु इंद्रो गहि गंजन रंजन सो जु बुझावु अबुझमै^३ ॥
 भंजन^४ सो जु रझौ रस माहिं विदुज्जन सो कतहूँ न अरुझमै^५ ।
 व्यंजन सो जु बदै रुचि सुंदर अंजन सो जु निरंजन सुज्जमै ॥३॥
 जा उपज्यौ कछु आई जहाँ लग सो सब नाश निरंतर होई ।
 रूप धर्यौ सु रहै नहिं निश्चल तीनिहुँ लोक गनै कहा कोई ॥
 राजस तामस सात्विक जे गुन देषत काल ग्रसै पुनि बोई ।
 आपुहि एक रहै जु निरंजन सुंदर के मन मानत सोई ॥६॥
 सेस महेस गनेस जहाँ लग विष्णु विरंचिहु कैं सिर स्वामी ।
 व्यापक ब्रह्म अखंड अनावृत^६ बाहर भीतर अंतरयामी ॥
 बेर न छोर अनंत कहैं गुनि याहि तै सुंदर है घन^७ नामी ।
 ऐसौ प्रभु जिनके सिर ऊपर क्यों परिहै तिनकी कहि षामी ॥८॥

१-उपासना प्रायः सगुन की हो सकती है । परंतु निगुर्न की उपासना ब्रह्म संप्रदाय का परम सिद्धांत है । ब्रह्म की प्राप्ति का साधन ही 'निगुर्णोपासना' है । २-गुह्य—गुप्त । ३-अबोधनीय—सहज ही समझा न जा सके । ४-भाजन—पात्र । ५-उलझे । ६-अनावृत = असीम । ७-त्रिवर्गमय । सर्वत्र गमन करनेवाला, मिलनेवाला ।

(१६४)

(१६) पतिव्रत का अंग^१

इंदव छंद

जो हरि कौं तजि आन उपासत सो मतिमंद फजीतहि होई ।
ज्यों अपने भरतारहि छाड़ि भई विभचारिनि कामिनि कोई ॥
सुंदर ताहि न आदर मान फिरै विमुखी अपनी पति पोई ।
बूढ़ि मरै किनि कूप मँभार कहा जग जीवत है सठ सोई ॥२॥
एक सही सबकं उर अंतर ता प्रभु कौं कहि काहि न गावै ।
संकट माहिं सहाय करै पुनि सो अपने पति क्यौं बिसरावै ॥
चारि पदारथ और जहाँ लग आठहु सिद्धि नवै निधि पावै ।
सुंदर छार परौ तिनि कै मुख जौ हरि कौं तजि आन कौं ध्यावै ॥३॥
पूरन काम सदा सुख धाम निरंजन राम सिरजनहारौ ।
सेवक होइ रखौ सबकौ नित कुंजर कीटहि देत अहारौ ॥
भंजन दुःख दरिद्र निवारन चिंत करै पुनि संभ सँवारौ ।
ऐसे प्रभू तजि आन उपासत सुंदर हूँ तिनि कौ मुख कारौ ॥४॥
होइ अनन्य भजै भगवंतहि और कछू उर में नहिं रापै ।
देविय देव जहाँ लग हैं डरिकैं तिनसौं कहूँ दीन न भापै ॥
योगहु यज्ञ व्रतादि क्रिया तिनिकौं नहिं तौ सुपनै अभिलापै^२ ।
सुंदर अमृत पान कियौ तब तौ कहि कौन हलाहल चापै ॥५॥

मनहर छंद

पतिही सौं प्रेम होइ पति ही सौं नेम होइ,

१-पतिव्रत से द्वैत का भाव अवश्य आवेगा क्योंकि यहाँ भक्तिमय ज्ञान से अभिप्राय है । २-चाहे ।

पति ही सौं चेम होइ पतिही सौं रत^१ है ।
 पतिही है यज्ञ योग पतिही है रस भोग,
 पतिही है जप तप पतिही को यत^२ है ॥
 पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुण्य दान,
 पतिही तीरथ न्हांन पतिही कौ मत है ।
 पति बिन पति^३ नाहि पति बिन गति नाहि,
 सुंदर सकल विधि एक पतिव्रत है ॥ ७ ॥
 जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान,
 मणि बिन अहि जैसै जीवत न लहिए ।
 स्वांति बुंद कं सनेही प्रगट जगत माहि,
 एक सीप दूसरौ सु चातकऊ कहिए ॥
 रवि को सनेही पुनि कमल सरोवर में,
 शशि कौ सनेहीऊ चकोर जैसै रहिए ।
 तैसै ही सुंदर एक प्रभु सौं सनेह जोरि,
 और कछु देषि काहू बोर नहि बहिए ॥ ८ ॥

(१७) विरहिनि उराहने का अंग

[विरहिनी अर्थात् पतिव्रियोगिनी की ओर से उलाहना अर्थात्
 उपालंभ देना । यह भाव प्रीति की उन्कटता, दर्शनों की लालसा
 और विरह की उग्रता का चोतक होता है । इसके प्रवाह को वे ही
 भली भाँति समझते हैं जिन पर ऐसी बीत चुकी हो । इन पाँच छंदों में

जो कुछ सुंदरदासजी ने कहा है उसका साधारण अर्थ जो दिखाई देता है उससे आगे रहस्य का अर्थ कुछ और है अर्थात् ब्रह्मविद्या वा प्रगाढ़ भक्ति में घटता है ।]

मनहर छंद

हमकों तौ रैन दिन शंक मन माहि रहै,
 उनकी तौ बातनि मैं ठाक हूँ न पाइए ।
 कबहूँ संदेसौ सुनि अधिक उछाह होइ,
 कबहूँक रोइ रोइ आसुनि बहाइए ॥
 औरनि के रस बस होइ रहे प्यारे लाल,
 आवन की कहि कहि हमकों सुनाइए ।
 सुंदर कहत ताहि काटिए जु कौन भांति,
 जुतौ रूप आपनेई हाथ साँ लगाइए ॥ २ ॥
 हिउँ और जिउँ और लीए और दीए और,
 कीउँ और कौनऊ अनूप पाटी पढ़े हैं ।
 मुख और बैन और सैन और नैन और,
 तन और मन और जंत्र माहि कढ़े हैं ॥
 हाथ और पाँव और सीस हूँ श्रवन और,
 नख सिख रोम रोम कलई सौं मढ़े हैं ।
 ऐसी तौ कठोरता सुनी न देखी जगत में,
 सुंदर कहत काहू वज्र ही के गढ़े हैं ॥ ४ ॥

(१८) शब्दसार को अंग

[शब्दों का, पदार्थों का, कर्मों का और गुणों का उत्तम प्रयोग करना ही मनुष्य के चातुर्य का लक्षण होता है । इस शब्दसार के १० छंदों में सुंदरदासजी ने इस बात को कतिपय प्रधान शब्द लेकर दर-माया है यथा, कान क्या है ? जो हरिगुण वा वेद वचन सुने । नेत्र क्या है ? जो निज आत्मस्वरूप को देखे । बाण क्या है ? जो मन को बंधे । वीर कौन है ? जो मन को जीते इत्यादि ।]

इंदव छंद

पान उहै जु पियूष पिवै नित दान उहै जु दरिद्र हि भानै ।
 कान उहै सुनिए जस केशव मान उहै करिए सनमानै ॥
 तान उहै सुरतान^१ रिभावत जान उहै जगदीसहि जानै ।
 वान उहै मन बेधत सुंदर ज्ञान उहै उपजै न अज्ञानै ॥२॥
 सूर उहै मन कौं बसि राषत कूर उहै रन^२ मांहि लजैहै ।
 त्याग उहै अनुराग नहीं कहूँ भाग^३ उहै मन मोह तजै है ॥
 तज्ञ उहै निज तत्वहि जानत यज्ञ उहै जगदीस जजै^४ है ।
 रत्त^५ उहै हरि सों रत सुंदर गत्त उहै भगवंत भजै है ॥३॥
 चाप उहै कसिए रिपु ऊपर दाप^६ उहै दलकारि^७ हि मारै ।
 छाप उहै हरि आप दई सिर थाप उहै थपि औरन धारै ॥

१-यहां सुलतान का बादशाह से भी प्रयोजन हो सकता है । वह सर्वेश्वर परमात्मा । २-विषयादि शत्रुओं से युद्ध । ३-भागना । ४-यजन करै । ५-अनुरक्त । ६-दाप = दर्प । रोबदाब । ७-ललकारकर ।

जाप उहै जपिए अजपा नित षाप^१ उहै निज षाप विचारै ।
 षाप उहै सब कौ प्रभु सुंदर पाप हरै अरु ताप निवारै ॥४॥
 श्रोत्र उहै श्रुतिमार सुनै नित नैन उहै निज रूप निहारै ।
 नाक उहै हरिनाक^२ हि राषत जीभ उहै जगदीश उचारै ॥
 हाथ उहै करिए हरि कौ कृत पाँव उहै प्रभु कै पथ धारै ।
 सीस उहै करि श्याम^३ समर्पन सुंदर यौ सब कारज सारै ॥८॥

(१८) सूरतन को अंग

[सुरासुर संग्राम वेद और शास्त्रों में विख्यात हैं। शरीर रूपी संसार वा क्षेत्र में काम क्रोध लोभ मोहादिक असुर वा शत्रुओं से ज्ञान, विवेक, सुबुद्धि, दया, शील, संतोषादि सुर, सुभट लड़ते रहते हैं। ये सब सुभट समष्टि रूप से व्यक्तिगत वीरता के द्योतक होते हैं। किसी एक पुरुष विशेष को ऐसे गुणों का धारण करनेवाला वीर मानकर उक्त शत्रुओं से लड़ने में धीर गम्भीर और निर्भय शूर सामंत सा पाया तो उसको “सूरा-तन” अर्थात् सूरमा का या शरीरवाला कहा गया। प्रायः साधुओं की वाणी में “सूरतन” का वर्णन आया है, इसी प्रकार सुंदरदासजी ने भी इस अंग के १३ छंदों में शांत रस की भित्ति पर वीररस का मानों चित्र खींच दिया है। इन थोड़े से छंदों के देखने से ही यह प्रतीत होता है कि वीर आदिरसों के वर्णन में भी स्वामीजी की बड़ी शक्ति थी। सच तो यह है कि इस संसार में वच कोटि का सच्चा रसमा वही गिना

१-उत्पत्ति का संबंध । पाप = गोत्र, तड़ । शासन । अथवा अपना खपना = निरतारा । २-भगवान् ही को अपनी नाक अथवा प्रतिष्ठा की परमावधि समझे । नाक = स्वर्ग, यह अर्थ भी । ३-भाषा में ‘श्याम’ स्वामी के अर्थ में भी आता है ।

जा सकता है जो काम-क्रोधादिक शत्रुओं को अपने यम, नियम, शील, संतोषादि शस्त्रों से दमन करता है क्योंकि ये घर के अंदर सदा रहनेवाले वैरी हैं इसलिये अधिक प्रबल और भयंकर हैं ।]

मनहर छंद

सुणत नगरै चोट बिगसै कवल मुख,
अधिक उछाह फूल्यो माइहू न तन में ।
फिरै जब सागि^१ तब कोऊ नहिं धीर धरै,
काइर कँपाइमान होत द्वेषि मन में ॥
टूटि कै पतंग जैसै परत पावक मांहि,
ऐसै टूटि परै बहु साव'त कंगन में ।
मारि घमसाण करि सुंदर जुहारै^२ स्याम,
सोई सूरवीर रुपि रहै जाइ रन में ॥ १ ॥
हाथ में गह्यौ है षड्ग मरिवं कौं एक^३ पग,
तन मन आपनौं समरपन कीनौ है ।
आगै करि मीच कौं परयो है डाकि रन बाच,
टूक टूक होइ कै भगाइ दल दीनौ है ॥
खाइ लौंन स्याम कौ हारामधोर कंसै होइ,
नामजाद^४ जगत में जीत्यो पन तीनों है ।
सुंदर कहत ऐसो कोऊ एक सूरवीर,

१-लोहदंड । भाला । बरछी । पतली गदा । २-सामंत । योद्धा ।
३-सलाम करै । ४-यकसां । दड़ । ५-नाम पाया हुआ । नाम
पैदा हो गया जिसका । अथवा नामजद ।

सीस को उतारि कै सुजस जाइ लीनौ है ॥ २ ॥
 पाँव रोपि रहै रन मांहि रजपूत कोऊ,
 हथ गय गाजत जुरत जहाँ दल हैं ।
 बाजत जुभाइ सहनाइ सिंधू राग पुनि,
 सुनतही काइर की छूटि जात कल हैं ॥
 भलकत बरछी तरछि तरवारि बहै,
 मार मार करत परत षलभल हैं ।
 ऐसैं जुद्ध मैं अडिग सुंदर सुभट सोई,
 घर मांहि सूरमा कहावत सकल हैं ॥ ३ ॥
 असन बसन बहु भूषन सकल अंग,
 संपति विविध भांति भरयो सब घर है ।
 श्रवण नगरौ सुनि छिनक मैं छोड़ि जात,
 ऐसैं नहि जानै कछु आगै मोहि मर^१ है ॥
 मन मैं उछाह रन मांहि टूक टूक होइ,
 निरभै निशंक वाकै रंच हूँ न डर है ।
 सुंदर कहत कोऊ देह कौ ममत्व नाहिं,
 सूरमा कै देषियत सीस बिन धर है ॥ ४ ॥
 ज्ञान कौ कवच अंग काहू सौं न होइ भंग,
 टोप सीस भलकत परम विवेक है ।
 तीन्है ताजी असवार लिए समसेर सार,^२
 आगै ही कौ पाँव धरै भागने की टेक^३ है ॥

छूटत बंदूक बाण बाँचै जहाँ घमसाण,
देषि कै पिशुन^१ दल मारत अनेक है ।
सुंदर सकल लोक मांहि ताकौ जैजैकार,
ऐसौ सूर वीर कोऊ कोटिन में एक है ॥ ७ ॥
सूर वीर रिपु कौं निमूनौ देषि चोट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौं ।
साधु आठौं जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै,
जाकै मुँह माथौ नहि देषिए शरीर सौं ॥
सूर वीर भूमि परै दौर करै दूरि लगै,
साधु शून्य कौं पकरि राषै धरि धीर सौं ।
सुंदर कहत तहाँ काहू कै न पाँव टिकै,
साधु कौ संग्राम है अधिक सूर वीर सौं ॥ ८ ॥
काम सौं प्रबल महा जीतै जिनि तीनों लोक,
सु तौ एक साधु कै विचार आगै हार्यौ है ।
क्रोध सौं कराल जाके^२ देषत न धीर धरै,
सोड साधु चमा के हथियार सौं विदार्यौ है ॥
लोभ सौं सुभट साधु तोष^३ सौं गिराइ दियौ,
मोह सौं नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहार्यौ है ।
सुंदर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर वीर,
ताकि ताकि सब ही पिशुन दल मार्यौ है ॥ १० ॥
मारे काम क्रोध जिनि लोभ मोह पीसि डारै,

(२०२)

इंद्रीऊ कतल करि कियौ रजपूतौ है ।
 मारयो मयमत्त^१ मन मारयो अहंकार मीर,
 मारे मद मच्छर^२ हू ऐसौ रन रतौ^३ है ॥
 मारी आसा तृष्णा सोऊ पापिनी सापिनी दोऊ,
 सबकौं प्रहारि निज पदइ पहूतौ^४ है ।
 सुंदर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर वीर,
 वैरी सब मारि कै निचिंत होइ सूतौ^५ है ॥ ११ ॥

(२०) साधु के अंग

[साधु संगति की महिमा, साधु का गुणानुवाद, साधु की गति और शक्ति. साधु की स्वतंत्रता. साधु के लक्षण तथा साधु की अलभ्यता ३० छंदों में वर्णित है ।]

इंदव छंद

प्राति प्रचंड लगै परब्रह्महि और सबै कछु लागत फीकौ ।
 शुद्ध हृदै मति होइ सुनिर्मल द्वैत प्रभाव मिटै सब जी कौ ॥
 गोष्ठिरु ज्ञान अनंत चलै तहँ सुंदर जैसै प्रवाह नदी कौ ।
 ताहितें जानि करै निसिवासर साधु कौ संग सदा अति नीकौ ॥ १ ॥
 ज्यों लट भुंग करै अपने सम ता^६ सनि भिन्न कहै नहिं कोई ।
 ज्यों द्रुम और अनेकहि भाँतिनि चंदन की ढिग चंदन बोई ॥

१-मदमत्त अथवा अहंता (अभिमान) में मस्त । २-मत्सर ।

३-आरुढ़ वा रुद्र । ४-पहुँचा । ५-दूसरा अर्थ निजानंदमग्न वा समाधिस्थ है । ६-तासे = उससे ।

ज्यों जल क्षुद्र मिलै जब गंगहि होत पवित्र उदै जल सोई ।
 सुंदर जाति सुभाव मिटै सब साधु के संग ते साधुहि होई ॥३॥
 जो परब्रह्म मिल्यो कोउ चाहत तो नित संत समागम कीजै ।
 अंतर मेदि निरंतर हूँ करि लै उनकी अपनो मन दीजै ॥
 वै मुख द्वार उचार करें कछु सो अनयास सुधारस पीजै ।
 सुंदर सूर प्रकाशत है उर और अज्ञान सबै तन छीजै ॥५॥
 सो अनयास तिरै भवसागर जा मत्संगति में चलि आवै ।
 ज्यों कण्ठहार^१ न भेद करै कछु आइ चढ़ै तिहि नाव चढ़ावै ॥
 ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यहु शूद्र मलेछ चंडालहि पार लँघावै ।
 सुंदर वार कछु नहि लागत या नर देह अभै पद पावै ॥८॥
 कोउक निदत कोउक वंदत कोउक आइकें देत है भक्तन ।
 कोउक आइ लगावत चंदन कोउक डारत धूरि ततच्छन ॥
 कोउ कहै यह भूख दीसत कोउ कहै यह आहि विचत्तन ।
 सुंदर कोउ सो राग न द्वेष सुये सब जानहु साधु के लच्छन ११
 तात मिलै पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई ।
 राज मिलै गज बाजि मिलै मय साज मिलै मनवञ्छित पाई ॥
 लोक मिलै सुरलोक मिलै विधिलोक मिलै बड़कुंठहु जाई ।
 सुंदर और मिलै सबही सुख दुर्लभ संत समागम भाई ॥१२॥

मनहर छंद

देवहू भए ते कहा इंद्रहू भए ते कहा,
 विधिहू के लोक ते वहुरि आइयतु है ।

मानुष भए ते कहा भूपति भए ते कहा,
 द्विजहू भए ते कहा पार जाइयतु^१ है ॥
 पशुहू भए ते कहा पत्तिहू भए ते कहा,
 पन्नग भए ते कहा क्यौं अघाइयतु है ।
 छूटिबे को सुंदर उपाइ एक साधु संग,
 जिनकी कृपा ते अति सुख पाइयतु है ॥ १३ ॥
 धूल जैसो धन जाके सूल सो संसार सुख,
 भूल जैसो भाग देषे अंत की सी यारी है ।
 आप जैसी प्रभुताई साप^२ जैसो सनमान,
 बड़ाईहू वीछनी सी नागनी सी नारी है ॥
 अग्नि जैसो इंद्रलोक विघ्न जैसो विधिलोक,
 कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींट डारी है ।
 बासना न कौऊ वाकी ऐसी मति सदा जाकी,
 सुंदर कहत ताहि बंदना हमारी है ॥ १५* ॥
 कामही न क्रोध जाके लोभही न मोह ताकै,
 मदही न मच्छर कोऊ न विकारौ है ।
 दुःखही न सुख मानै पापही न पुन्य जानै,
 हरष न शोक आनै देहही तें न्यारौ है ॥

१—पार पड़ना = काम चलना । २—सर्प अथवा साप । * यह
 १५ वां छंद वह है जिसको सुंदरदासजी ने जैन कवि बनारसी-
 दासजी को लिखा था और १६ वे छंद के विषय में भी यही बात
 कही जाती है ।

निदा न प्रशंसा करै रागही न दोष धरै,
 लैनही न दैन जाकै कछु न पसारौ है ।
 सुंदर कहत ताकी अगम अगाध गति,
 ऐसो कोऊ साधु सु तौ रामजी को प्यारौ है ॥ १६ ॥
 जैसे आरसी को मैल काटत सिकल करि,
 मुख में न फेर कोऊ बहै वाकौ पोत^१ है ।
 जैसे बैद नैन में शलाका मेलि शुद्ध करै,
 पटल^२ गएँ तें तहाँ ज्यों की त्यौं ही जोत है ॥
 जैसे वायु बादर बषेरि कै उड़ाइ देत,
 रवि तौ अकाश माहि सदा ही उद्योत है ।
 सुंदर कहत भ्रम चन में बिलाइ जात,
 साधु ही कै संग तें स्वरूप ज्ञान होत है ॥ १८ ॥
 मृतक दादुर जीव सकल जिवाए जिनि,
 बरषत^३ बानी मुख मेघ की सी धार कौं ।
 देत उपदेश कोऊ स्वारथ न लवलेश,
 निस दिन करत है ब्रह्म ही विचार कौं ॥
 औरऊ संदेहनि मिटावत निमेष माहि,
 सूरज मिटावत है जैसे अंधकार कौं ।
 सुंदर कहत हंसवासी सुखसागर के,
 “संत जन आए हैं सु पर-उपकार कौं” ॥ १८ ॥
 प्रथम सुजस लेत सीलहू संतोष लेत,

क्षमा दया धर्म लेत पाप ते' डरत हैं ।
 इन्द्रिज कौं घेरि लेत मनहूँ कौं फेरि लेत,
 योग की युगति लेत ध्यान लै धरत हैं ॥
 गुरु कौ वचन लेत हरिजी कौ नाम लेत,
 आत्मा कौ सोधि लेत भोजल तरत हैं ।
 सुंदर कहत जग^१ संत कछु लेत नाहिं,
 "संत जन निसि दिन लैबोई करत हैं" ॥ २२ ॥
 सांचौ उपदेश देत भली भली सांष देत,
 समता सुबुद्धि देत कुमति हरत हैं ।
 मारग दिशाइ देत भाव हू भगति देत,
 प्रेम की प्रतीति देत अमरा भरत हैं ॥
 ज्ञान देत ध्यान देत आत्मा विचार देत,
 ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म में चरत हैं ।
 सुंदर कहत जग संत कछु देत नाहिं,
 "संत जन निसि दिन दैबोई करत हैं" ॥ २३ ॥
 कूप में कौ मैडुका तौ कूप कौं सराहत है,
 राजहंस सौं कहैं कितौक^२ तेरौ सर है ।
 मसका कहत मेरी सरभरि कौन उडै,
 मेरै आगै गरुड़ की कितीयक जर है ॥
 गुबरैडा^३ गोली कौं लुटाइ करि मानै मोद,

१-संसारी लोग । २-कितना । ३-गुबरैडा=एक जंतु जो गाबर
 की गोली उलटे पांव ले जाता है ।

(२०७)

मधुप^१ कौ निंदत सुगंध जाको घर है ।
 आपुनी न जानै गति संतनि कौ नाम धरै^२ ,
 सुंदर कहत देषौ ऐसौ मूढ़ नर है ॥ २५ ॥
 ताहो कै भगति भाव उपजिहै अनायास,
 जाकी मति संतन सौं सदा अनुरागी है ।
 अति सुख पावै तार्क दुःख सब दूरि होइ,
 औरऊ काहू की जिनि निंदा मुख त्यागी है ॥
 संसार की पासि काटि पाइहै परम पद,
 सतसंगही तैं जाकै ऐसी मति जागी है ।
 सुंदर कहत ताको तुरत कल्याण होइ,
 “संतन कौ गुन गहै सोई बड़भागी है” ॥ २६ ॥

(२१) भक्ति-ज्ञान-मिश्रित को अंग

इंदव छंद

बैठत रामहिं ऊठत रामहिं बोलत रामहिं राम रह्यौ है ।
 जीमत रामहिं पीवत रामहिं धोमत^३ रामहिं राम गह्यौ है ॥
 जागत रामहिं सोवत रामहिं जोवत रामहिं राम लह्यौ है ।
 देतहु रामहिं लेतहु रामहिं सुंदर रामहिं राम कह्यौ है ॥ १ ॥
 ओत्रहु रामहिं नेत्रहु रामहिं वक्त्रहु रामहिं रामहिं गाजै ।

१-भ । । २-निंदादि करे । ३-ध्यावत = ध्यान करता है
 (‘धीमहि’ का रूपांतर है) अथवा ‘चलते’ ।

सीसहु रामहि हाथहु रामहि पावहु रामहि रामहि साजै ॥
 पेटहु रामहि पोठहु रामहि रोमहु रामहि रामहि बाजै ।
 अंतर राम निरंतर रामहि सुंदर रामहि राम विराजै ॥ २ ॥
 भूमिहु रामहि आपुहु रामहि तेजहु रामहि वायुहु रामैं ।
 व्योमहु रामहि चंदहु रामहि सूरहु रामहि शीत न घामैं ॥
 आदिहु रामहि अंतहु रामहि मध्यहु रामहि पुंसन वामैं ।
 आजहु रामहि कालिहु रामहि सुंदर रामहि म्हां^१महि थामैं^२ ॥ ३ ॥

(२२) विपर्यय शब्द को अंग

[महात्मा सुंदरदासजी ने ३२ सवैया छंदों में विपर्यय अर्थ की बातें लिखी हैं । विपर्यय नाम उल्टे का है अथवा असंभव का । जो बातें नित्य प्रति के व्यवहार में देखने सुनने में आती हैं उनसे नियम में विरुद्ध वा प्रतिकूल जो कुछ कहा जाय वही विपर्यय है । यथा मछली का बगुले को खाना, सुग्गे (सूवा) का बिल्ली को खाना, पानी में तुंबिका का डूबना, इत्यादि । परंतु अध्यात्म पक्ष में वा अंतर्दृष्टिवाले महात्माओं के निकट इसका कुछ और ही अर्थ होता है । वह अर्थ उनकी समझ में यथार्थ है । इस “सार” ग्रंथ में केवल ४ छंद उदाहरणवत् देते हैं क्योंकि अधिक से जटिलता का भय है । कारण ऐसे छंदों की अनंक टीकाएँ हैं और हो सकती हैं । हमने तीन पुरानी टीकाओं के आधार पर (जो छंद यहां लिखे हैं उनकी) टीका दी है ।]

१-म्हां महि = हमारे भीतर । २-थामैं = तुम्हारे भीतर ।

सवइया छंद

अंधा तीनि लोक कौं देपै बहिरा सुनै बहुत विधि नाद ।
 नकटा बास कंवल की लेवै गूँगा करै बहुत संवाद ॥
 टूँटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाह ।
 जो कोउ याकौ अर्थ विचारै सुंदर सोई पावै स्वाद १ ॥ २ ॥

१—“ अंधा तीनि लोक ” इत्यादि । (अंधा) बाह्य जगत् से मुँह मोड़ अंतर्ली जो हो गया वह ज्ञानी (तीनि लोक) स्थूल, सूक्ष्म और कारण अथवा भूभुवः स्वः वा प्रसिद्ध तीन लोकों को, (देपै) बाह्य दृष्टि से असंग होने पर, अंतर्दृष्टि के बल से, हस्तामलकवत्, प्रत्यक्ष करे । (बहिरा) जगत् के वाद-विवाद से रहित होकर श्रोत्रेन्द्रिय को वश करने-वाला योगी वा ज्ञानी (बहुत विधि नाद) दश प्रकार योग-विद्या में प्रसिद्ध अनाहत (अनहद) नाद—आवाजे वा बाजे—(सुने) सुनने की सामर्थ्य प्राप्त करे । (नकटा) ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने से लोक-लाज कुलकान आदि तुच्छ व्यावहारिक भ्रमों को त्यागनेवाला, नासा इन्द्रिय को वशवर्ती करनेवाला, ज्ञानी निःशंक निर्भय हो (कमल की बास लेवे) ब्रह्म कमल—सहस्र दलाकार, ब्रह्मचक्र वा विशुद्ध चक्र—की सुगंधि अर्थात् ब्रह्मानंद का रसास्वाद ले । यहां सात्त्विक वृत्ति भौंरा और ब्रह्म-कमल सुवास का आधार माना गया है । (गूँगा) जगत् संबंधी वाणी—वैखरी और मध्यमा तथा श्रवणादि अभ्यास से आगे बढ़ा हुआ ज्ञानी वा मौनी (बहुत संवाद करे) अंतर्वृत्तियों को उत्कर्ष और उन्नति करता है, ब्रह्मनिरूपण मनन निदिध्यास से बढ़ता है । (टूँटा) क्रिया रहित (पर्वत पकरि उठावै) पापादि कर्मजन्य संस्कारों के महान् बोझ को पुरुषार्थ से निष्फल करके मिटा दे । (पंगुल) त्रिगुणता रहित महात्मा (नृत्य आह्लाद करे) अति चतुरता से भगवत् का ध्यान करे और पर-मानंद पावे । (जो कोउ ..) इस विपर्यय के सवैया के वास्तविक

कुंजर कौं कीरी गिलि बैठी सिंघइ षाइ अघानौ स्याल ।
 मछरी अग्नि माहिं सुख पायौ जल में हुती बहुत बेहाल ॥
 पंगु चढ़ो पर्वत कै ऊपर मृतकहि बेपि डरानौ काल ।
 जाकौ अनुभव होइ सु जानै सुंदर ऐसा उलटा प्याल ॥३॥

अध्यात्म गूढ़ अर्थ को जो मुमुक्षु-पुरुष समझ ले उसको परम ज्ञान का स्वाद वा चसका मिल जाय ।

१-“कुंजर...” इत्यादि । (कीरी) अति सूक्ष्म व्यवसायात्मिका बुद्धि (कुंजर को) मदोन्मत्त विवेकशून्यता रूपी अवस्था से ही काम रूपी हाथी महास्थूलकाय वा बली जिससे ब्रह्मादि भी कांपें उसको (गिलि बैठी) छोटा मुँह होने पर भी बड़े को निगल गई अर्थात् संपूर्ण को यों का यों अचक खा गई कि उसका नाम निशान तक पीछे न रहा । विवेक प्रबल होने पर काम का नाश होता ही है । (बैठी) जब शत्रु का दमन हो गया वा उसको भक्षण ही कर लिया तो तृप्त और शांत होकर स्वयं भी निष्क्रिय हो गई । (स्याल) यह जीव अपने स्वरूप को भूलकर उपाधियों के आवरण से आच्छादित रहकर कायरता और दीनता को प्राप्त होकर मानों प्याल (शृगाल) बना सा था । सो ही गुरु की कृपा और शास्त्र के श्रवण मननादि से साधन और पूर्व स्वरूप की स्मृति जागृत होने से ज्ञान को प्राप्त कर स्वस्वरूप को पुनः धारण कर सिंह हो गया और (सिंघहि षाय अघानो) संशय विपर्यय जो इस जीव को परंपराके कर्मबंध के आवरण से सिंह के समान डरावना और पराक्रमी घातक प्रतीत होता था उसको आप सिंह है यह यथार्थ ज्ञान पाने से, खा गया अर्थात् मारकर मिटा दिया और उसके खाने से धाप गया, तृप्त हो गया । संशय की निवृत्ति से, निर्वात स्थान में रख दीप की शिखा की नाई, आत्मा अचल और स्वस्वरूप में आनंद तृप्त हो गया । (मछली) मनसा वा मनोवृत्ति (जल में) जल-बिंदु से

बूँद हि मांहि समुद्र समानौ राई मांहि समानौ मेर ।
 पानी मांहि तुंबिका डूबी पाहन तिरत न लागी बेर ॥
 तीनि लोक मैं भया तमासा सूरज कियौ सकल अंधेर ।
 मूरष होइ सु अर्थहि पावै सुंदर कहै शब्द मैं फेर ॥४॥

उत्पन्न और उसी के आधार से स्थित रहनेवाली काया में (बहुत बेहाल हुती) अत्यंत बेहाल, बुरे हाल में, दुखी रहती थी । सो अब (अग्नि महि) ज्ञान रूपी आग में, जिससे यावत्कर्म, क्लेश भस्म हो जाते हैं । “ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं” इति गीता । (सुप पायो) वास्तविक सुख जो ब्रह्मानंद है उसको प्राप्त किया । (पंगु पर्वत पर चढ़यो) कामना-रहित मन वा ज्ञानी पुरुष, यावत् स्पंद वा हलन चलन किया, इच्छा विचार वा कामना से होती है और कामना ही मिट जाय तो किया कैसे हो, निर्विकल्पता की अवस्था को प्राप्त होकर आत्मबल से ऐसा सशक्त हो गया कि अति ऊँचे और कठिन अहंता ममता रूपी पर्वत पर चढ़ा अर्थात् उसको वश में किया वा विजय वा निवृत्त कर दिया । (मृत-कहि देण डराने काल) योगसिद्ध जीवन्मुक्त ज्ञानी को देखकर सबको दंड देनेवाला कराल काल भी भय मानता है । अर्थात् ज्ञानी की गति काल को भी छेक जाती है, वह काल के वश में नहीं रहता । (जाको अनुभव...) जिस ज्ञानी पुरुष का ऐसा अनुभव होता है वही वास्तविक रहस्य को जान सकता है । क्योंकि स्थूल बुद्धि से तो यह सब उलटा सा प्रतीत होता है, जब तत्त्व की प्राप्ति होती है तो जो उलटा है वह भी सुलटा दीख जाता है ।

१-“बूँद हि मांहि”...इत्यादि । (बूँद मांहि) अत्यंत अणु वा सूक्ष्म जीव में वा बिंदु बुदबुदा समान शरीर रूपी पदार्थों में (समुद्र समानों) अनंत और अति बृहत् ब्रह्म में समा गया व्याप गया । क्योंकि ब्रह्म अणु से भी अणु सूक्ष्म और व्यापक है, ब्रह्मज्ञान के साधन और गुरुकृपा से

मछरी बगुला कौं गहि पायौ मूसै पायौ कारो साँप ।
सूवै पकरि बिलइया षाई ताके मुएँ गयौ संताप ॥

जीव को यह अनुभव हुआ । (राई माहिं) राई कहिए सूक्ष्म सुन्दर भगवद्भक्ति में (मेरे समानों) अति विशाल विस्तृत होने की शक्ति रखनेवाला यह संकल्प-विकल्पात्मक मन, लीन हो गया अर्थात् वृत्ति-रहित होकर लुप्त हो गया । (पानी मांहि) अति तरल सर्वरसशिरोमणि तृप्तिकारण निर्मल प्रेम के अंदर (तुंबिका डूबी) शरीर जो, सांसारिक कर्म रूपी वायु के भरे रहने से ऊपर ही तिर रहा था सो रोम रोम में प्रेम भर जाने से वह हवा तो बाहर निकल गई और प्रेम रूपी जल सर्वत्र प्रवेश करने से उसी में निमग्न हो गया अथवा जो कड़वी तूँ बड़ी समान है सो प्रेमामृत के भरने से अमृत समान मीठा और शुद्ध हो गया । (पाहन तिरत न लागी बेर) भक्तिहीन जनों का हृदय पत्थर सा कर्त वा भारी होता है सो भक्ति पाने से परिवर्तित हो गया अर्थात् कोमल और फूल सा हलका हो गया अथवा राम नाम के प्रवाह से पत्थर का पानी पर तिरना रामायणादि ग्रंथों में प्रसिद्ध ही है । प्रयोजन यह है कि भक्ति और ज्ञान के संसर्ग से जीव का स्थूल आवरण वा उपाधि निवृत्त होकर उसमें आत्मता की सूक्ष्मपरता आ जाती है, सो विषय वेदांत वा योग में प्रसिद्ध है । (तीन लोक...अंधेर) तीनों लोकों में अर्थात् सर्वत्र, यह एक आश्चर्य की बात हुई कि सूर्य के प्रकाश से अंधेरा हो गया अर्थात् ज्ञानरूपी सूर्य से अथवा परमात्मा के साक्षात्कार वा अपरोक्ष ज्ञान से विद्यमान सृष्टि वा प्रकृति का अभाव हो गया और “ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या” यह सिद्धांत अनुभव में सिद्ध हो गया । (मूरष होय सो अर्थहि जाने) जगत् के व्यवहार से जो विमुख हो गया अर्थात् संसार में जो व्यवहार-रहित (गुणातीत) हो चुका वही ज्ञानी अपने अनुभव में इसका गूढ़ अर्थ पा सकता है । (सुंदर कहै शब्द

बेटी अपनी मा गहि षाई बैठै अपनौ षायौ बाप ।

सुंदर कहै सुनो रे संतहु तिनको कोउ न लागौ पाप^१ ॥ ५ ॥

में फेर) फेर कहिए चक्र वा विपरीतता । “बेती ही में फेर, लाख टका की सेर” । जो वचन साधारण पुरुष को कुछ और अर्थ का द्योतक हो वही ज्ञानी को किस्ती सूक्ष्म रहस्य वा आत्मा संबंधी महान् भावपूर्ण अर्थ का साधक बनता है ।

१-“मछरी बगुला को”...इत्यादि । (मछरी) सात्विक वृत्तिवाली मनसा जो ज्ञान वा प्रेम रूपी जल में निवास करती है, (बगुला को) ऊपर से उजला परंतु भीतर से मैला ऐसा दंभ वा कपट भाव, दिखावटी ज्ञान वा भक्ति (गहि खायो) को पकड़कर खा गई, अर्थात् मिटा दिया, निवारण कर दिया । पहले बाहरी कर्तव्य अंतरंग वृत्तियों और शांति को उत्पन्न नहीं होने देते थे, परंतु अब गुरुकृपा के कारण वह विघ्न करनेवाला ही मिट गया । (मूसै कारो नागहिं खायो) ज्ञान की शक्ति पाए हुए मन वा विवेक रूपी चूहे ने संशय, संदेह रूपी कालुष्यवाले काले साँप को खाया अर्थात् वह उस ही में लय हो गया । (सूवै बिलाई पकरि पाई...) अति चपल सुंदर प्राणात्मा (जो शरीर के पिंजरे में रहता है) सूवे ने ईर्ष्या द्वेष वा द्वंद्वता रूपी (मंजरी आंखोंवाली) बिलाई को खा लिया अर्थात् संत जन इस ईर्ष्या से विमुक्त होते हैं और इसके मिटने ही से अंतर प्राणात्मा को शांति मिलती है । (बेटी अपनी मा गहि षाई), त्रिगुणात्म माया से बुद्धि और ममता अहंता से वासना, बनती उपजती है । इससे बेटी कही गई । वासना-रहित बुद्धि ने माया वा ममता को ग्रस लिया, मिटा दिया । (बेटे अपना वाप षायो) संशय वा जिज्ञासा से ज्ञान की उत्पत्ति होती है अथवा इस अनेक तत्त्वमय पुद्गल (शरीर) में ज्ञान प्रकट होता है ।

(२३) आपुने भाव को अंग

मनहर छंद

जैसेँ खान काच के सदन मध्य देषि और,
 भूँकि भूँकि मरत करत अभिमान जू ।
 जैसे गज फटिक शिला^१ सौं अरि तोरे दंत,
 जैसेँ सिंघ कूप मांहि उभकि भुलान जू ॥
 जैसेँ कोऊ फेरी घात फिरत देपै जगत^२,
 तैसेँ ही सुंदर सब तेरौई अज्ञान जू ।
 आपुर्हा को भ्रम सु तौ दूसरौ दिषाई देत,
 आपुकौं विचारै कोऊ दूसरौ न आन जू ॥ २ ॥
 याहो कै जागत काम याही कै जागत क्रोध,
 याही कै जागत लोभ याही मोह माता है ।
 याकौं याही बैरी होत याकौं याही मित्र होत,
 याकौं याही सुख देत याही दुखदाता है ॥

इससे ज्ञान पुत्र और संशय वा शरीर पिता हुआ । ज्ञान के जन्मने से ही संशय रूपी पिता विलीयमान हो जाता है अथवा ज्ञान के उत्पन्न होने से यह शरीर फिर नहीं होता । जीवन मरण की पुनरावृत्ति ही नहीं होती । (सुंदर कहै...न लागौ पाप) मां बाप का मार खाना महा वज्रपाप है । सो इन पुत्र पुत्रियों को कुछ भी पाप नहीं लगा वरन् पुण्य हुआ क्योंकि ब्रह्मानंद की प्राप्ति और जीवन मरण की अप्राप्ति हो गई । इससे बढ़कर और क्या होगा ?

१—बिछौर वा चमकदार सफेद पत्थर । २—आप तो फिरे और जगत् फिरता दीखै—जैसे डोलरहींदा, रेल, जहाज में ।

(२१५)

याही ब्रह्मा याही रुद्र याही विष्णु देषियत,
याही देव दैत्य यत्न सकल संघाता^१ है ।
याही कौ प्रभाव सु तौ याही कौं दिषाई देत,
सुंदर कहत याही आतमा विख्याता है ॥ ४ ॥

इंदव छंद

आपुने भाव तें सूर^२ सौ दीषत आपुने भावतें चंद्र सौ भासै ।
आपुने भाव तें तारे अनंत जु आपुने भाव तें विद्युलता सै ॥
आपुने भाव तें नूर है तेज है आपुने भाव तें ज्योति प्रकासै ।
तैसौहि ताहि दिषावत सुंदर जैसौहि होत है जाहिकौ आसै^३ ॥८॥
आपुने भाव तें भूलि परयो भ्रम देह स्वरूप भयौ अभिमानी ।
आपुने भाव तें चंचलता अति आपुने भाव तें बुद्धि थिरानी ॥
आपुने भाव तें आप विसारत आपुने भाव तें आतम ज्ञानी ।
सुंदर जैसौहि भाव है आपुन तैसौहि होय गयौ यह प्राणी ॥१२॥

(२४) स्वरूप विस्मरण के अंग

इंदव छंद

जा घट की उनहार है जैसिहि ता घट चेतनि^४ तैसौहि दीसै ।
हाथी की देह में हाथी सौ मानत चींटी की देह में चींटी कीरीसै^५ ॥

१-समवाय, समूह, सृष्टिक्रम । २-सूर्य । ३-आशय वा आश्रय ।
४-चैतन्यशक्ति जिसकी सत्ता बिना कोई भी पदार्थ न हो सकता है न
रह सकता है । ५-कीरी + सै = कीरी जैसा अथवा रीसै = होइ,
अनुहार, समान हो ।

सिंघ की देह में सिंघ सौ मानत कीश^१ की देह में मानत कीशै ।
 जैसि उपाधि भई जहाँ सुंदर तैसौहि होइ रखौ नख शीशै ॥१॥
 ज्यौं कोउ मद्यपिँ अति छाकत नाहिं कछु सुधि है भ्रम ऐसौ ।
 ज्यौं कोउ षाइ रहै ठग मूरिहि जानै नहीं कछु कारन तैसौ ॥
 ज्यौं कोउ बालक शंक^२ उपावत कपि उठै अरु मानत भैसौ ।
 तैसैहि सुंदर आपुकों भूलि सु देषहु चेतनि मानत कैसौ ॥५॥
 एकइ व्यापक वस्तु निरंतर विश्व नहीं यह ब्रह्म विलासै ।
 ज्यौं नट मंत्रनि सौं दिठ बाँधत है कछु औरइ औरइ भासै ॥
 ज्यौं रजनी महिं बूझि परै नहिं जाँ लगि सूरज नाहिं प्रकासै ।
 त्यों यह आपुहि आपु न जानत सुंदर द्वै रखौ सुंदर दासै ॥८॥

मनहर छंद

जैसैं शुक नलिका न छाड़ि देत चुंगल तै,
 जानैं काहू औरै मोहि बाँधि लटकायौ है ।
 जैसैं कपि गुंजनि^३ कौ ढेर करि मानै आगि,
 आगै धरि तापै कछु शीत न गमायौ है ॥
 जैसैं कोऊ दिशा भूलि जात हुतौ पूरव कौ,
 उलटि अपूठो फेरि पछिम कौ आयौ है ।
 तैसैहि सुंदर सब आपुही कौ भ्रम भयौ,
 आपुही कौ भूलि करि आपुहो बँधायौ है ॥१०॥

१—बंदर । २—शंका, बहम, हाऊ । ३—चिरमटी लाल रंग की ।
 इनके ढेर का लाल रंग देख बंदर उसको आग समझ तापता है, ऐसा
 किस्सा प्रसिद्ध है ।

[इसी प्रकार अनेक उत्तम उत्तम दृष्टांत देकर इस बात को समझाया है कि यह जगत् की विचित्र लीला और व्यवहार अपने ही अहंकार का विचार, भ्रम वा विकार है । जब ज्ञानप्राप्ति से यह निश्चय हो जाय कि यह अपना ही भ्रम है तत्क्षण भ्रम नाश हो जाता है—]

‘तैसैं ही सुंदर यह भ्रम करि भूल्यौ आपु,
भ्रम कै गएँ ते यह आत्मा सदाई है’ ॥ १४ ॥

[भ्रम जब तक आत्म स्वरूप की अपरोक्षता नहीं होती, देह स्वरूप का अभिमानी बनकर अपने को भूल जाता है मानों ब्रह्म अपने आप को भूलकर ब्रह्म को ढूँढ़ता है । हाथ कंकण को आप न देखकर काँच में देखता है ।]

इंदव छंद

आपुहि चेतनि ब्रह्म अखंडित सो भ्रम तें कछु अन्य परेपै^१ ।
ढूँढ़त ताहि फिरै जित ही तित साधत योग बनावत भेपै ॥
औरउ कष्ट करै अति सै करि प्रत्यक^२ आत्म तत्व न पंपै ।
सुंदर भूलि गयौ निज रूपहि है कर कंकण दर्पण देपै ॥१६॥
ज्यों रवि कौं रात्रे ढूँढ़त है कहुँ तृप्ति मिलै तनु शीत गवाऊँ ।
ज्यों शशि कौं शशि चाहत है पुनि शीतल ह्वै करि तृप्ति बुझाऊँ ॥
ज्यों कोउ भ्रांति^३ भये नर टेगत है घर में अपने घर जाऊँ ।
त्यों यह सुंदर भूलि स्वरूपहि ब्रह्म कहै कब ब्रह्महि पाऊँ ॥१७॥
मैं सुखिया सुख सेज सुखासन है गए भूमि महा रजधानी ।
हैं दुखिया दिन रैन भरौं दुख मोहि विपत्ति परी नहिं छानी ॥

१-दिखाई दे, प्रतीत हो । २-प्रत्यगात्मा—शुद्ध निर्मल चेतन स्वरूप आत्मा—निर्गुण ब्रह्म, माया से असम्बद्ध । ३-भ्रम, बावलापन ।

हैं अति उत्तम जाति बड़ी कुल हैं अति नीच क्रिया कुल हानी ।
सुंदर चेतन तान सँभारत दंढ स्वरूप भयो^१ अभिमानी ॥२४॥

(२५) सांख्य ज्ञान को अंग

[सांख्य का वर्णन ज्ञानसमुद्र में भी सुंदरदासजी ने भले प्रकार किया है । यहाँ भी जो वर्णन है वह प्रक्रिया से तो है नहीं केवल काव्य रूप में इतस्ततः प्रसंगवश सांख्य विषय की जो रचना हुई उसी का संग्रह प्रतीत होता है अथवा सांख्य पर संगृहीत विचारों को इंदव आदि छंदों में सरल और साधारण रीति से समझाने के अर्थ अथवा दादू वाणी पर टीका रूप इन छंदों का निर्माण हुआ है । यह अंग भी सवैया ग्रंथ में उत्तम अंगों में से है । इसके कई छंदों में बड़ा ही चमत्कार है और सांख्य की बातों का अच्छा समीकरण किया है । प्रथम तीन चार छंदों में २४ तत्वों को गिनाया है । इंद्रियों के देवता और इंद्रियों के कर्म बताए हैं फिर आत्मा की इनसे भिन्नता दिसलाई है । फिर प्रश्नोत्तर रूप से सृष्टि का दिग्दर्शन किया है और उसी में आत्म और अनात्म का भेद और स्वस्वरूप का निरूपण भी कर दिया है ।]

मनहर छंद

क्षिति जल पावक पवन नभ मिलि करि,
सबदरु सपरश रूप रस गंध जू ।
श्रोत त्वक चक्षु घ्राण रसना रस को ज्ञान,
वाक्य पाणि पाद पायु उपसथ बंध जू ॥
मन बुद्धि चित्त अहंकार ये चौबीस तत्व,
पंचविंश जीव तत्व करत है धंध जू ।

षड्विंश को है ब्रह्म सुन्दर सुनिहै कर्म,
 व्यापक अखंड एक रस निरसंध जू^१ ॥१॥
 श्रोत्र दिक् त्वक् वायु लोचन प्रकासै रवि,
 नासिका अश्विनी जिह्वा वरुण बषानिए ।
 वाक् अग्नि हस्त इंद्र चरण उपेंद्र बल,
 मेढ्र प्रजापति गुदा मित्रहु कौं ठानिए ॥
 मन चंद्र बुद्धि विधि चित्त वासुदेव आहि,
 अहंकार रुद्र को प्रभाव करि मानिए ।
 जाकी सत्ता पाइ सब देवता प्रकाशत हैं,
 सुंदर सु आतमाहिं न्यारौ करि जानिए^२ ॥२॥

इंदव छंद

श्रोत्र सुनै दृग देषत हैं रसना रस घ्राण सुगंध पियारौ ।
 कोमलता त्वक् जानत है पुनि बोलत है मुख शब्द उचारौ ॥

१—सांख्य में प्रतिपादित २४ तत्त्व ये हैं । पंच महाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश । ५ ज्ञानेन्द्रिय—जिह्वा, कान, नाक, आंख और त्वचा । ५ विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध । ५ कर्मेन्द्रिय—वाणी, हाथ, पांव, पायु और उपस्थ । ४ अंतःकरण—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सब प्रकृति के अंतर्गत हैं । पञ्चीसवां जीव और जीव ही प्रकृति से असंबद्ध हो तो यही छद्मीसवां पदार्थ ब्रह्म है । २—इस छंद में इंद्रियो और अंतःकरण-चतुष्टय के १४ देवताओं को दिया है । कान का दिक् । त्वचा का वायु । आंख का सूर्य्य । नाक का अश्विनीकुमार । जीभ का वरुण । वाणी का अग्नि । हाथ का इंद्र । पांव का उपेंद्र । मेढ्र का प्रजापति । गुदा का मित्रदेव । मन का चंद्रमा । बुद्धि का ब्रह्मा । चित्त का विष्णु । अहंकार का शिव । इन सब देवताओं की शक्ति जिससे है वही सर्वेश परमात्मा है ।

पानि ग्रहै पद गौन करै मल मूत्र तजै उभऊ अध द्वारौ ।
जाकै प्रकाश प्रकाशत हैं सब सुंदर सोइ रहै घट न्यारौ^१ ॥३॥

मनहर छंद । प्रश्न

कैसें कै जगत यह रच्यो है जगतगुरु,
मौसों कहो प्रथम हिं कौन तत्व कीनौ है ।
प्रकृति कि पुरुष कि महत्त्व अहंकार,
किधौ उपजाएँ सत रज तम तीनौ है ॥
किधौं व्यौम वायु तेज आपुकै अवनि कीन,
किधौं पंच विषय पसारि करि लोनौ है ।
किधौं दश इंद्रो किधौं अंतःकरण कीन,
सुंदर कहत किधौं सकल विहीनौ^२ है ॥ ६ ॥

उत्तर

ब्रह्म ते पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई,
प्रकृति ते महात्त्व पुनि अहंकार है ।
अहंकार हूँ ते तीन गुन सत्व रज तम,
तम हूँ ते महाभूत विषय पसार है ॥
रज हूँ ते इंद्रो दश पृथक् पृथक् भई,
सत्व हूँ ते मन आदि देवता विचार है ।

१-इसमें सब इन्द्रियों के गुण कर्म कहे हैं और वे सब परमात्मा की सत्ता से कर्म करती हैं । २-सकल विश्व से परमात्मा पृथक् है अथवा उसके बिना ही बन गया है ।

ऐसे अनुक्रम करि शिष्य सों कहत गुरु,
सुंदर सकल यह मिथ्या भ्रम जार^१ है ॥ ७ ॥

प्रश्न

मेरी रूप भूमि है कि मेरी रूप आप है कि,
मेरी रूप तेज है कि मेरी रूप पौन है ।
मेरी रूप व्योम है कि मेरी रूप इंद्रो है कि,
अंतहकरण है कि बैठी है कि गौन^२ है ॥
मेरी रूप त्रिगुण कि अहंकार महत्तत्व,
प्रकृति पुरुष किधों बोलै है कि मौन है ।
मेरी रूप स्थूल है कि शून्य आहि मेरी रूप,
सुंदर पूछत गुरु मेरी रूप कौन है ॥ ८ ॥

उत्तर

तू तो कछु भूमि नाहि आप तेज वायु नाहि,
व्योम पंच विपै नाहि सो तो भ्रम कूप है ।
तू तौ कछु इंद्रो अरु अंतहकरण नाहि,
तीनों गुणऊ तू नाहि सोऊ छाँह धूप है ॥
तू तौ अहंकार नाहि पुनि महत्तत्व नाहि,
प्रकृति पुरुष नाहि तू तौ सु अनूप है ।
सुंदर बिचारि ऐसे शिष्य सों कहत गुरु,
नाहि नाहि^३ करतें रहसु तेरी रूप है ॥ ९ ॥

१-जाल । २-गमन—गतिवाला । ३-नेति नेति का प्रयोजन है । यह भी नहीं । इस प्रकार नहीं । वह वेदों का निश्चय है ।

देहई नरक रूप दुःख कौ न वार पार,
 देहई जू स्वर्ग रूप भूठौ सुख मान्यौ है ।
 देहई कौ बंध मोक्ष देहई अप्रोक्ष मोक्ष^१,
 देहई के क्रिया कर्म सुभासुभ ठान्यौ है ॥
 देहई में और देह^२ खुसी हूँ विलास करै,
 ताही को समुझि बिन आतमा बखान्यौ है ।
 दोऊ देह में अलिप्त दोऊ कौ प्रकाश कहै,
 सुंदर चेतन रूप न्यारौ करि जान्यौ है ॥ ११ ॥

प्रश्नोत्तर

देह यह कौन को है देह पंच भूतनि कौ,
 पंच भूत कौन ते हैं तामसाहंकार ते ।
 अहंकार कौन ते है जासौं महत्तत्व कहै,
 महत्तत्व कौन है प्रकृति मँभार^३ ते ॥
 प्रकृति हू कौन ते हैं पुरुष^४ है जाकौ नाम,
 पुरुष सो कौन ते हैं ब्रह्म निरधार ते ।
 ब्रह्म^५ अब जान्यौ हम जान्यौ है तो निश्चै करि,
 निश्चै हम कियो है तौ चुप मुखद्वार^६ ते ॥ १४ ॥

१-अपरोक्ष = प्रत्यक्ष, साक्षात् । परोक्ष = छिपा हुआ । देह में परमात्मा है और नहीं प्रत्यक्ष होता और जिनको हुआ है उनको इस देह में ही अर्थात् अंतःकरण की खिड़की में होकर मिल गया । २-सूक्ष्म शरीर और उसमें कारण शरीर । ३-मध्य, बीच, भीतर । ४-ईश्वर, मायाविशिष्ट । ५-परमात्मा, मायारहित । ६-स्थूल वाणी से कहने का सामर्थ्य नहीं ।

भूमि परै अप^१ अपहू कै परै पावक है,
 पावक कै परै पुनि वायु हू बहतु है ।
 वायु परै व्योम व्योम हू कै परै इंद्रो दश,
 इंद्रो कै परै अंतःकरण रहतु है ॥
 अंतःकरण परै तीनों गुण अहंकार,
 अहंकार परै महत्त्व कौ लहतु है ।
 महत्त्व परै मूल-माया माया परै ब्रह्म,
 ताही ते' परातपर सुंदर कहतु है ॥ १६ ॥
 देह जड़ देवल में आत्मा चैतन्य देव,
 याही कौं समुझि करि यासौं मन लाइए ।
 देवल कौं विनसत बार नहिं लागै कछु,
 देव तौ सदा अभंग देवल में पाइए ॥
 देव की शक्ति करि देवल की पूजा होइ,
 भोजन विविध भाँति भोग हू लगाइए ।
 देवल ते' न्यारौ देव देवल में देपियत,
 सुंदर विराजमान और कहाँ जाइए^२ ॥ २० ॥
 प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और,
 चित्त सौं न बंदन सनेह सौं न सेहरा ।
 हृदै सौं न आसन सहज सौं न सिंघासन,
 भावसी न सौंज और शून्य सौं न गेहरा ॥

१-पर शब्द—उत्कृष्टता, सूक्ष्मता और बलवत्तरता तथा परता का
 द्योतक है । २-अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है जब कि घट ही में
 विद्यमान है ।

शील सौ सनान नाहिं ध्यान सौ न धूप और,
 ज्ञान सौ न दीपक अज्ञान तम केहरा^१ ।
 मनसी न माला काऊ सोऽहं सो न जाप और,
 आतमा सौ देव नाहिं देह सौ न देहरा^२ ॥ २२ ॥
 क्षीर नीर मिलि दोऊ एकठेई होइ रहे,
 नीर छाड़ि हंस जैसै क्षीर कौ गहतु है ।
 कंचन मै और धात मिलि करि वान^३ परगौ,
 शुद्ध करि कंचन सुनार ज्यों लहतु है ॥
 पावक हू दार^४ मध्य दार ही सो ह्वै रह्यौ,
 मथि करि काढ़ै वाही दार कौ दहतु है ।
 तैसैही सुंदर मिल्यो आतमा अनातमा जू,
 भिन्न भिन्न करिए सुतौ सांख्य कहतु है ॥ २३ ॥
 अन्नमय कोश सु तौ पिंड है प्रगट यह,
 प्राणमय कोश पाँच वायुहू बषानिए ।
 मनोमय कोश पंचकर्म इंद्रिय प्रसिद्ध,
 पंच ज्ञान इंद्रिय विज्ञान कोश जानिए ॥
 जाग्रत रु स्वप्न विषै कहिए चत्वार कोश,

१-हरनेवाला । २-यह छंद सुंदरदासजी ने बनारसीदासजी जैन
 कवि को लिख भेजा था । ३-मिला हुआ धातु । वान = खोटा
 सेना । यथा 'सेने की वह नार कहावै । बिना कसौटी वान किसानै'
 (सौदा कवि) । ४-काठ ।

सुषुप्ति मांहि कोश आनंद मय मानिए ।
 पंचकोश आत्म को जीव नाम कहियतु है,
 सुंदर शंकर^१ भाष्य साष्य यह आनिए ॥ २४ ॥
 जाग्रत अवस्था जैसें सदन मांहि बैठियत,
 तहां कछु होइ ताहि भली भाँति देखिए ।
 स्वपन अवस्था जैसें वोवरे^२ में बैठे जाइ,
 रहैं रहैं उहाँऊ की वस्तु सब लेषिए ॥
 सुषुपति भौंहर^३ में बैठे ते न सूझि परै,
 महा अंध घोर तहाँ कछुव न पेषिए ।
 व्योम अनसूत^४ घर वोवरे भौंहरें मांहि,
 सुंदर साक्षो स्वरूप तुरिया विशेषिए ॥ २५ ॥

इंदव छंद

जाग्रत रूप लिए सब तत्त्वनि इंद्रिय द्वार करै व्यवहारौ ।
 स्वप्न शरीर भ्रमै नव^५ तत्व कौ मानत है सुख दुःख अपारौ ॥
 लीन सबै गुन होत सुषुपति जानै नहीं कछु घोर अंधारौ ।
 तीनों को साक्षो रहे तुरियातत^६ सुंदर सोइ स्वरूप हमारौ ॥ २७ ॥

१-व्यासजी के बनाए वेदांत सूत्र पर, जिसको शारीरिक भी कहते हैं, शंकराचार्यजी ने टीका रची है उसको भाष्य वा वेदांत भाष्य भी कहते हैं । २-मिट्टी का कोठा वा लंबा कूँट वा कोठी अनाज आदि रखने की । ३-खंढक, अंधेरा गढ़ा । ४-अनुस्यूत = भले प्रकार मिला हुआ, सर्वव्यापक । ५-सूक्ष्म शरीर में ५ ज्ञानेंद्रिय + अंतःकरण चतुष्टय । ६-तुरीयावस्था में फैलनेवाला वा तत्व वा अतीत ।

भूमि तें सूक्ष्म आपको जानहु आप ते सूक्ष्म तेज को अंग ।
 तेज ते' सूक्ष्म वायु बहै नित वायु ते' सूक्ष्म व्योम उत्तंगा ॥
 व्योम तें सूक्ष्म हैं गुन तीन तिहूँतें अहं महत्तत्त्व प्रसंगा ।
 ताहु तें सूक्ष्म मूल प्रकृति जु मूल ते सुंदर ब्रह्म अभंगा ॥२८॥
 ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि अरूप अखंडित है सब माहीं ।
 ईश्वर पावक रासि प्रचंड जु संग उपाधि लिए बरताहीं ॥
 जीव अनंत मसाल चिराग सुदीप पतंग अनेक दिषाहीं ।
 सुंदर द्रुत उपाधि मिटै जब ईश्वर जीव जुदं कछु नाहीं ॥२९॥
 ज्यों नर पावक लोह तपावत पावक लोह मिले सु दिषाहीं ।
 चोट अनेक परै' घन की सिर लोह बधै कछु पावक नाँही ॥
 पावक लीन भयौ अपनै घर शीतल लोह भयौ तब ताँही ।
 त्यों यह आत्म देह निरंतर सुंदर भिन्न रहै मिलि माँहो ॥३०॥
 आत्म चेतनि शुद्ध निरंतर भिन्न रहै कहूँ लिप्त न होई ।
 है जड़ चेतन अंतहकर्ण जु शुद्ध अशुद्ध लिएँ गुन दोई ॥
 देह अशुद्ध मलीन महा जड़^१ हालि न चालि सकै पुनि बोई ।
 सुंदर तीनि विभाग किए बिन भूलि परै भ्रम तें सब कोई ॥३१॥

१-जड़ पदार्थ वह है जिसमें चेतन का स्पंद रूपी प्रादुर्भाव स्वयं चलनादि क्रियाओं से नहीं रहता । इससे उस जड़ में चेतन-सत्ता का अभाव नहीं समझना चाहिए किंतु सृष्टि का एक क्रम मात्र ही जानो । चेतनसत्ता तो जैसी जड़ में है वैसी ही जीवधारियों में है केवल क्रम और विकास का रूपांतर मात्र है ।

(२२७)

सवइया छंद

देह सराव तेल पुनि मारुत^१ बाती अंतःकरण विचार ।
 प्रगट जोति यह चेतनि दीसै जातैं भयो सकल उजियार ॥
 व्यापक अग्नि मथन करि जोये दीपक बहुत भांति विस्तार ।
 सुंदर अद्भुत रचना तेरी तूं ही एक अनेक प्रकार ॥३३॥
 तिल में तेल दूध में घृत है दार मांहि पावक पहिचानि ।
 पुहपु मांहि ज्यौं प्रगट वासना इच्छु मांहि रस कहत बषानि ॥
 पोसत मांहि अफाम निरंतर बनस्पती में सहत प्रवानि ।
 सुंदर भिन्न मिल्यौ पुनि दोसत देह मांहि यौं आतम जानि ॥

(२६) विचार को अंग

[मनुष्य को परमात्मा ने विचार-शक्ति दी इसी से मनुष्य इस लोक में सर्वश्रेष्ठ होता है । इस शक्ति की उन्नति ही से मनुष्य का गौरव बढ़ता है । तथा च परलोक में सद्गति भी इस विचार-शक्ति ही से प्राप्त होती है । विवेक का व्यापार ही आत्म और अनात्म की कक्षाओं से निकालकर आगे ले जाता है और सूक्ष्म परमात्म तत्व की धारणा के योग्य बनाता है । विवेक ही से उपाधि और भ्रम का नाश होकर सत्य वस्तु का ग्रहण होता है । बुद्धि तक जो आवरण है वह

१-मारुत = पवन अर्थात् जीव वा प्राण ।

स्वव्यापार से खड़िया की नाईं घिसकर नष्ट होने से स्वस्वरूप प्रगट होता है । इस अंग में कई दार्शनिक सूक्ष्म बातें श्रीस्वामीजी ने कही हैं ।]

मनहर छंद

देखै तौ विचार करि सुनै तौ विचार करि,
बोलै तौ विचार करि करै तौ विचार है ।
षाड तौ विचार करि पीवै तौ विचार करि,
सोवै तौ विचार करि तौ ही तौ उवार है ॥
बैठै तौ विचार करि उठै तौ विचार करि,
चलै तौ विचार करि सोई सत सार है ।
देइ तौ विचार करि लेइ तौ विचार करि,
सुंदर विचार करि याही निरधार है ॥ २ ॥

इंदव छंद

एक हि कूप के नीर ते' सींचत इन्दु अफीम हि अंब अनारा ।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि मिष्ट कटुक षटा अरु पारा ॥
त्यौहि उपाधि संजोग ते आतम दीसत आहि मिल्यौ सौ विकारा ।
काढ़ि लिए जु विचार विवस्वत^१ सुंदर शुद्ध स्वरूप है न्यारा ॥७॥
रूप परा कौ न जानि परै कछु ऊठत है जिहिं मूल ते' छानी ।
नाभि विषै मिलि सप्त स्वरन्नि पुरुष संजोग पश्यंति वषानी ॥
नाद संयोग हदै पुनि कंठ जु मध्यमा याही विचार ते' जानी ।

^१-सूर्य । उपाधि रहित होने से शुद्ध ब्रह्म आत्मा ही है जैसे सूर्य के आगे से बादल आदि विकार दूर होने से ।

अचर भेद लिए मुख द्वार सु बोलत सुंदर बैषरि बानी^१ ॥८॥
 कर्म शुभाशुभ की रजनी पुनि अर्द्ध तमोमय अर्द्ध उजारी ।
 भक्ति सु तौ यह है अरुणांदय अंत निम्ना दिन संधि विचारी ॥
 ज्ञान सु भान सदेदित बासर वेद पुरान कहैं जु पुकारी ।
 सुंदर तीन प्रभाव वषानत यौं निहचै समुझै विधि सारी^२ ॥११॥

मनहर छंद

आतमा कै विषै^३ देह आइ करि नाश होहि,
 आतमा अखंड सदा एकई रहतु है ।
 जैसे साँप कंचुकी कों लिए रहै कोऊ दिन,
 जीरन उतारि करि नूतन गहतु है ॥
 जैसेँ द्रुमहूँ कै पत्र फूल फल आइ होत,
 तिनकै गएँ ते द्रुम औरउ लहतु है ।
 जैसेँ व्योम माँहि अभ्र होइ कै बिलाइ जात,
 ऐसौ सौ विचार कछु सुंदर कहतु है ॥ १३ ॥
 षरी की डरी सौं अंक लिपि कै विचारियत,
 लिषत लिषत वहै डरी घसि जात है ।

१-इसमें परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी चारों प्रकार की वाणियों का वर्णन है जो स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीया अवस्थाओं में वर्तती हैं । २-कर्म, भक्ति और ज्ञान का रूप रात्रि, प्रभात और दिन के रूपक से बताया है । सबमें ज्ञान की प्रधानता है । ३-विषै शब्द के कहने से आत्मा का समुद्रवत् महान् होना है ।

लेखौ समुझ्यौ है जब समुझि परी है तब,
 जोई कछु सही भयौ सोई ठहरात है ॥
 दार ही सौं दार मथि पावक प्रगट भयौ,
 वह दार जारि पुनि पावक समात है ।
 तैसें हि सुंदर बुद्धि ब्रह्म कौ विचार करि,
 करत करत वह बुद्धि हूँ विलात है ॥ १४ ॥
 आपु कौं समुझि देषि आपु ही सकल मांहि,
 आपु ही मैं सकल जगत देषियतु है^१ ।
 जैसें व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है,
 बादल अनेक नाना रूप लेषियतु है ॥
 जैसें भूमि घट जल तरंग पावक दीप,
 वायु मैं बधूरा यौंहीं विश्व रेषियतु है ।
 ऐसें ही विचारत विचार हू विलीन होइ^२,
 सुंदर ही सुंदर रहत पेषियतु है ॥ १५ ॥
 देह कौ संयोग पाइ जीव ऐसौ नाम भयौ,
 घट के संयोग घटाकाश ज्यौं कहायौ है ।

१—यह विचार सत्य है । वास्तविक ज्ञान तो जब अनुभव हो तब होता है । परंतु साधारण विचार से भी प्रतीति होती है । यथा सुख दुःख आदि का ज्ञान सब जीवों को समान सा है इससे जीव एक सा भासता है । इंद्रिय-गोचर जगत का ज्ञान जीवों को साधारणतः एक सा होता है इससे जगत् का आत्मा में होना एक प्रकार अनुमानित होता है । २—जैसे लिखते लिखते स्याही वा खड़ी चुक जाती है ।

ईश्वर हू सकल विराट में विराजमान,
 मठ के संयोग मठाकाश नाम पायौ है ॥
 महाकाश मांहि सब घट मठ देषियत,
 बाहर भीतर एक गगन समायौ है ।
 तैसें हो सुंदर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव,
 त्रिविध उपाधि भेद ग्रंथनि में गायौ है^१ ॥ १६ ॥
 पृथ्वी भाजन अंग कनक कटक पुनि,
 जल हू तरंग दोऊ देषि कै बषानिए ।
 कारण कारज ये तौ प्रगट ही शूल रूप,
 ताही तें नजर मांहि देषि करि आनिए ॥
 पावक पवन व्योम ये तौ नहि देषियत,
 दीपक बधूरा अभ्र प्रत्यक्ष प्रमानिए ।
 आतमा अरूप अति सूक्ष्म ते^२ सूक्ष्म है,
 सुंदर कारण ताते^३ बेह में न जानिए ॥ १८ ॥

(२७) ब्रह्मनिःकलंक को अंग

[परमात्मा नित्य शुद्ध और अलिप्त है यही निगुणता और कूटस्थता का संपादन है । ब्रह्म ही में सब सृष्टि समा रही है, परंतु वह सबसे निलिप्त है । जीवों के कर्म तो जीवों को ही उपाधि और अज्ञान से

१-घटाकाश दृष्टांत है जीव संज्ञा का, मठाकाश ईश्वर संज्ञा का और महाकाश ब्रह्म संज्ञा का । केवल स्वरोपित उपाधि का भेद जो घट और मठ से जाने ।

बाँधते हैं। आकाश की नाईं ब्रह्म सत्त्वमें रहकर सबसे पृथक् है। उस पर कलंक, दोष वा कोई गुणसंग का आरोपण नहीं हो सकता है। इन्हीं बातों को उदाहरणों से दरसाया गया है।]

मनहर छंद

जैसैं जलजंतु जल ही में उतपन्न होहिं,
जल ही में विचरत जल के आधार हैं ।
जल ही में क्रोडत विविध विवहार होत,
काम क्रोध लोभ मोह जल में संहार हैं ॥
जल कौं न लागै कछु जीवन के रोग दोष,
उनहीं के क्रिया कर्म उनहीं की लार^१ हैं ।
तैसे ही सुंदर यह ब्रह्म मैं जगत सब,
ब्रह्म कौं न लागै कछु जगत विकार ॥ ३ ॥
स्वेदज जरायुज अंडज उदभिज पुनि,
चारि षानि तिनके चौरासी लक्ष जंत हैं ।
जलचर थलचर व्योमचर भिन्न भिन्न,
देह पंच भूतन की उपजी षपंत^२ हैं ॥
शीत घाम पवन गगन मैं चलत आइ,
गगन अलिप्त जामैं मेघ हू अनंत हैं ।
तैसैंही सुंदर यह सृष्टि एक ब्रह्म माहि,
ब्रह्म निःकलंक सदा जानत महंत हैं ॥ ४ ॥

(२८) आत्मा अनुभव का अंग

[आत्मा का अनुभव वा अपरोक्ष ज्ञान जिसको योग में निर्विकल्प समाधि का आनंद कहते हैं वह विषय है जिसके जानने वा पाने के लिये सब शास्त्रों का समारोह है । और यह वह बात है कि जिसका कहना सुनना और समझना अनभ्यस्त और साधारण पुरुषों का काम नहीं । यही सब सत्य ज्ञान का आधार और वेदांत और योग का अत्यंत प्रमाण है । व्यासजी ने सांख्यों का खंडन भी तो अंत में 'तद्दर्शणात्' से ही किया है । अर्थात् तुम्हारा भ्रम बिना साक्षात्कार के नहीं जा सकता अथवा यह सब साक्षात् होता है इससे सिद्ध है । इस ही बात को सुंदरदासजी ने कई प्रकार से ऐसा उत्तम वर्णन किया है कि जैसा शायद ही किसी हिंदी काव्य ग्रंथ में मिल सके । आत्मानुभव गूँगे का सा गुड़ है । वह ऐसा पदार्थ है कि जिस प्रकार कहना चाहे उसी प्रकार कहने में नहीं आता इसीसे इससे हार माननी पड़ती है और कहते मानों लज्जा भी आती है । यही जीते हुए का मोक्ष है, मरने पर मोक्ष कहने-वाले भ्रम में हैं । जगत का भ्रम कहा जाना भी आत्मानुभव से ही प्रतीत हो सकता है । यह सापेक्षतया आत्मा अनात्मा के ज्ञान से सिद्ध होता है । इसकी प्राप्ति श्रवण-मनन-निदिध्यासन से है । फिर साक्षात् ज्ञान होता है । इन साधनों का कई दृष्टांतों से वर्णन है ।]

इंदव छंद

है दिल में दिलदार सही अँषियाँ उलटी करि ताहि चितइए ।
 आब में षाक में बाद में आतस जान मैं सुंदर जानि जनइए ॥
 नूर में नूर है तेज में तेज है ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जइए^१ ।
 क्या कहिए कहैं न बनै कछु जो कहिए कहैं ही लजइए ॥१॥

१-मिलने से मिल जाता है अथवा उसके मिलने से उसमें लीन हो जाना होता है ।

जासौ कहूँ सबमें वह एक तौ सौ कह कैसौ है आँषि दिखइए ।
 जौ कहूँ रूप न रेष तिसै कछु तो सब भूठ कै माने^१ कहइए ॥
 जौ कहूँ सुंदर नैननि माँझितो नैन हू बैन गए पुनि^२ हइए ।
 क्या कहिए कहतै न बनै कछु जो कहिए कहते ही लजइए ॥२॥
 होत विनोद जु तौ^३ अभि अंतर सो मुख आप मैं आपुहि पइए ।
 बाहिर कौ उमग्यौ पुनि आवत कंठ ते सुंदर फेरि पठइए ॥
 स्वाद निवेरं निवेरौ न जात मनौ गुर गूँगे ही ज्यों नित षइए ।
 क्या कहिए कहतै न बनै कछु जो कहिए कहतै ही लजइए ॥३॥
 एक कि दोइ न एक न दोइ बहीं कि इहीं^४ न उहीं न इहीं है ।
 शून्य कि थूल न शून्य न थूल जहीं की तहीं^५ न जहीं न तहीं है ॥
 मूल कि डाल न मूल न डाल वहाँ कि महीं^६ न वहीं न महीं है ।
 जीव कि ब्रह्म न जोव न ब्रह्म^७ तो है कि नहीं कछु है न नहीं है ॥५॥
 एक कहूँ तौ अनेक सों दीषत एक अनेक नहीं कछु ऐसो ।
 आदि कहूँ तिहि अंतहु आवत आदि न अंत न मध्य सु कैसो ॥
 गोपि कहूँ तौ अगोपि कहा यह गोपि अगोपि न ऊभौ न बैसो ।
 जोइ कहूँ सोइ है नहिं सुंदर है तो सही परि जैसै कौ तैसो^८ ॥६॥

१—भूठा करके माना जायगा ऐसा कहना चाहिए । २—नेत्रों के वाणी नहीं है—“गिरा अनैन नैन बिनु बानी” । “अदृश्य भावना नास्ति दृश्यमानो विनश्यति ।” ३—जो कुछ वा जो तुझमें । ४—यहाँ वा कहाँ—देश वा दिक् से अभिप्राय है । ५—तब वा जब काल से प्रयोजन है । ६—वही = बाहर, मही = माँही, अंदर । ७—जीव कहने से तो बनै नहीं और ब्रह्म ही कहें तो जीव माया आदि का विचार उठेगा । ८—जैसी जिस पुरुष के भावना होती है उसको वैसा ही सिद्ध हो जाता है यह सिद्धांत सत्य है ।

मनहर छंद

इंद्री नहिं जानि सकै अल्प ज्ञान इंद्रिन कौ,
 प्रान हू न जानि सकै स्वास आवै जाइहै ।
 मनहू न जानि सकै संकल्प विकल्प करै,
 बुद्धिहू न जानि सकै सुन्यौ सु बताइहै ॥
 चित्त अहंकार पुनि एऊ नहिं जानि सकै,
 शब्द हू न जानि सकै अनुमान पाइहै ।
 सुंदर कहत ताहि कोऊ नहिं जानि सकै,
 दीवा करि देषिए सु ऐसी नहिं लाइहै^१ ॥ ८ ॥

दव छंद

सूर के तेज तें सूरज दीसत चंद के तेज तें चंद उजासै ।
 तारे के तेज में तारेउ दीसत बिज्जुल तेज तें बिज्जु चकासै ॥
 दीप के तेज तें दीपक दीसत हीरे के तेज तें हीरेउ भासै ।
 तैसैहिं सुंदर आतम जानहु आपके तेज में आप प्रकासै ॥११॥
 कोउ कहै यह सृष्टि सुभाव तें कोउ कहै यह कर्म तें सृष्टि ।
 कोउ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टो^२ ॥
 कोउ कहै यह ऐसेहिं होत है क्यौं करि मानिय बात अनिष्टो^३ ।
 सुंदर एक किए अनुभौ बिनु जानि सकै नहिं वाहिज दृष्टो ॥१२॥

१-लाइ = लाय, अग्नि प्रज्वलित । २-काल, कर्म, स्वभाव, कारण
 यह चार सृष्टि के पृथक् पृथक् सिद्धांत प्रकरण है । ३-बौद्धों और जैनियों
 ने ऐसा ही माना है । अनिष्टी = बुरी, असमीचीन ।

मूए तें मोच कहै सब पंडित मूए तें मोच कहै पुनि जैना ।
 मूए तें मोच कहै ऋषि तापस मूए तें मोच कहै शिखर सैना^१ ॥
 मूए तें मोच मलेछ कहै तेउ धोपै हि धोपौ बषानत बैना ।
 सुंदर आत्म कौ अनुभौ सोइ जीवत मोच सदा सुख चैना ॥१४॥

मनहर छंद

पाव जिनि गह्यौ सुतौ कहत है ऊपर^२ सौ,
 पूँछ जिनि गही तिन लाव सौ सुनायौ है ।
 सूँड जिनि गही तिन दगला^३ की बाँह कह्यौ,
 दाँत जिनि गह्यौ तिन मूसर दिषायौ है ॥
 कान जिनि गह्यौ तिन सूपसौ^४ बनाइ कह्यौ,
 पीठि जिनि गही तिन विटोरा^५ बतायौ है ।
 जैसौ है सु तैसौ ताहि सुंदर सयाँखौ^६ जानै,
 आँधरनि^७ हाथी देषि ऊगरा^८ मचायौ है ॥१७॥
 न्याय शास्त्र कहत है प्रगट ईश्वरवाद,
 मीमांसक शास्त्र महि कर्मवाद कह्यौ है ।
 वैशेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध,
 पातंजलि शास्त्र महि योग वाद लह्यौ है ॥
 सांख्य शास्त्र माहि पुनि प्रकृति पुरुषवाद,

१-संप्रदाय, शैव अथवा शिव मतवाले जो रहस्य वाममार्ग में बताते हैं । २-धान कूटने की लकड़ी की ऊपल (उलूषली) । ३-अँग-रखा, प्रायः रुईदार । ४-छाजला । ५-ऊपले वा छानों के संग्रह को गोबर लीपकर ढलाऊ कर देते हैं । ६-सुआँखा, सूखता, जो अंधा न हो । ७-कई अंधों ने । ८-टटोलकर ।

वेदांत शास्त्र तिनहिं ब्रह्मवाद गह्यौ है ।
 सुंदर कहत षट् शास्त्र महिं भयौ वाद,
 जाकै अनुभव ज्ञान वाद में न बह्यौ है ॥ १८ ॥
 प्रज्ञानमानंद ब्रह्म ऐसैं ऋग्वेद कहत,
 अहं ब्रह्म अस्मि इति यजुर्वेद यौ कहै ।
 तत्त्वमसि इति सामवेद यौ बषानत है,
 अयमात्माहि ब्रह्म वेद अथर्व्वन लहै ॥
 एक एक वचन में तीन पद है प्रसिद्ध,
 तिनकों विचार करि अर्थ तत्व कौ गहै ।
 चारि वेद भिन्न भिन्न^१ सबकौ सिद्धांत एक,
 सुंदर समुक्ति करि चुपचाप ह्वै रहै ॥ १९ ॥
 क्षिति भ्रम जल भ्रम पावक पवन भ्रम,
 व्योम भ्रम तिनकौ शरीर भ्रम मानिए ।
 इंद्रो दश तेऊ भ्रम अंतहकरण भ्रम,
 तिनहूँ कै दैवता सु भ्रम तें बषानिए ॥
 सत्व रज तम भ्रम पुनि अहंकार भ्रम,
 महत्तत्व प्रकृति पुरुष भ्रम मानिए ।

१-चारों वेदों के उपनिषदों में ये महावाक्य आए हैं । प्रज्ञाघन
 मानंद स्वरूप ही ब्रह्म है । मैं नाम मेरा आत्मा ही ब्रह्म है । वह
 है—वह तू (तेरी आत्मा) है । यह आत्मा (जो तेरी वा तेरे
 अंदर है) सो ही ब्रह्म है । इन चारों के अर्थ को विचारने से प्रयोजन
 क ही, जीव व आत्मा का अभेद, निकलता है ।

जोई कह्यु कहिए सु सुंदर सकल भ्रम^१ ,
 अनुभौ किए तै एक आतमाही जानिए ॥ २४ ॥
 माया की अपेक्षा ब्रह्म रात्रि की अपेक्षा दिन,
 जड की अपेक्षा करि चैतन्य बषानिए ।
 अज्ञान अपेक्षा^२ ज्ञान बंध की अपेक्षा मोक्ष,
 द्वैत की अपेक्षा सुतौ अद्वैत प्रवानिए ॥
 दुःख की अपेक्षा सुख पाप की अपेक्षा पुन्य,
 भूठ की अपेक्षा ताहि सत्य करि मानिए ।
 सुंदर सकल यह बचन विलास भ्रम,
 वचन अवचन रहित सोई जानिए ॥ २६ ॥
 आतमा कहत गुरु शुद्ध निरबंध नित्य,
 सत्त्व^३ करि मानै सुतौ सबद प्रमाण है ।
 जैसै व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है,
 व्योम उपमा तें उपमान सो प्रमाण है ।
 जाकी सत्ता पाइ सब इंद्रिय चेतनि होइ,
 याही अनुमान अनुमान हू प्रमाण है ।
 अनुभव जानै तब सकल संदेह मिटै,
 सुंदर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ २७ ॥
 एक तो श्रवण^३ ज्ञान पावक ज्यों देषियत,

१-माया अनिर्वचनीय भ्रम रूप पदार्थ है । उसके अंश वा भाग भी भ्रम ही हैं । २-ज्ञान और सृष्टि सापेक्षतया आभासित होते हैं । ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होने से माया नहीं रहती, इत्यादि । ३-श्रवण,

माया जल वरषत बेगि बुझि जात है ।
 एक है मनन ज्ञान बिज्जुल ज्यौं धन मध्य,
 माया जल वरषत तामें न बुझात है ॥
 एक निदिध्यास ज्ञान बड़वा अनल सम,
 प्रगट समुद्र माहिं माया जल पात है ।
 आत्मा अनुभव ज्ञान प्रलय अग्नि जैसे,
 सुंदर कहत द्वैत प्रपंच विलात है ॥ २६ ॥
 भोजन की बात सुनि मन में मुदित होत,
 मुख में न परै जौलों मेलिए न आस है ।
 सकल सामग्री आनि पाक कौं करन लाग्यौ,
 मनन करत कब जीऊं यह आस है ॥
 पाक जब भयौ तब भोजन करन बैठौ,
 मुख में मेलत जाइ उहै निदिध्यास है ।
 भोजन पूरन करि तृप्त भयो है जब,
 सुंदर साक्षात्कार अनुभौ प्रकाश है ॥ ३२ ॥
 काहू कौ पूछत रंक धन कैसें पाइयत,
 कान दैकै सुनत श्रवन सोई जानिए ।
 उन कह्यो धन हम देखौ है फलानी ठौर,
 मनन करत भयौ कब घरि आनिए ॥

मनन, निदिध्यासन तथा आत्मानुभव—ये चार ज्ञान क्रम साधन हैं जो वेदांत में अधिकारी होने के लिये मुख्य गिने जाते हैं । इनको दृष्टांत से भिन्न भिन्न कर वर्णन किया गया है ।

फेरि जब कह्यो धन गड़गौ तेरे घर माहिं,
 षोदन लग्यौ है तब निदिध्यास ठानिए ।
 धन निकस्यो है जब दरिद्र गयौ है तब,
 सुंदर साक्षात्कार नृपति बषानिए ॥ ३४ ॥

(२६) ज्ञानी को अंग

[ज्ञानी की क्या पहिचान है, वह कैसा होता है, क्या उसकी क्रिया है, कैसी रहन सहन, कैसे विचार, कैसी उसकी धुन होती है, ज्ञानी संसार को कैसे मानता है और उसे कैसे निबाहता है, इसमें रहकर भी कैसे न्यारा हो जाता है, ज्ञानी व अज्ञानी का भेद क्या है, इत्यादि ज्ञानी के संबंध की बातें बड़ी उत्तमता से वर्णित हैं । ज्ञान का भक्ति कर्म उपासना से भेद दिखाकर ज्ञान की उत्कृष्टता भी दर्सा दी है ।]

इंदव छंद

जाकौ हृदै माहिं ज्ञान प्रकाशत ताकौ सुभाव रहै नहिं छानौ ।
 नैन में बैन में मन में जानिए ऊठत बैठत है अलसानौ ॥
 ज्यों कछु भक्त किए उदगारत कैसेहुं राषि सकै न अघानौ ।
 सुंदरदास प्रसिद्ध दिषावत धान कौ पेत पयार^१ तें जानौ ॥ १ ॥
 बोलत चालत बैठत ऊठत पीवत खातहु सूँघत स्वासै ।
 ऊपर तौ व्यवहार करै सब भीतर स्वप्न समान सौ भासै ॥
 लै करि तीर पताल कौ साँघत मारत है पुनि फेरि अकासै ।
 सुंदर देह क्रिया सब देषत कोउ न पावत ज्ञानी को आसै^२ ॥ ३ ॥

देषत है पै कछु नहिं देषत बोलत है नहिं बोल बषानै ।
 सूंघत है नहिं सूंघत प्राण सुनै सब है न सुनै यह मानै ॥
 भक्त करै अरु नाहिं भपै कछु भेंटत है नहिं भेंटत प्रानै^१ ।
 लेत है देत है देत न लेत है सुंदर ज्ञानी की ज्ञानी ही जानै ॥५॥
 देषत ब्रह्म सुनै पुनि ब्रह्महिं बोलत है सोउ ब्रह्महिं बानी ।
 भूमिहु नीरहु तेजहु वायुहु व्योमहु ब्रह्म जहाँ लगि प्रानी ॥
 आदिहु अंतहु मध्यहु ब्रह्महि है सब ब्रह्म इहै मति ठानी ।
 सुंदर ज्ञेय रु ज्ञानहु ब्रह्म सु आपहु ब्रह्महि जानत ज्ञानी ॥७॥
 आदिहु तौ नहिं अंतर है नहिं मध्य शरीर भयौ भ्रमकूपं ।
 भासत है कछु और कौ औरइ ज्यों रजु में अहि सीप सुरूपं ॥
 देषि मरीचि^२ उठ्यौ विचि विभ्रम जानत नाहिं उहै रवि धूपं ।
 सुंदर ज्ञान प्रकाश भयौ जब एक अखंडित ब्रह्म अनूपं ॥१०॥

मनहर छंद

सबसौं उदास होइ काढि मन भिन्न करै,
 ताकौ नाम कहियत परम वैराग है ।
 अंतहकरण हू वासना निवर्त होहिं,
 ताकौ मुनि कहत है उहै बड्यौ त्याग है ॥
 चित्त एक ईश्वर सौं नेकहू न न्यारौ होइ,
 उहै भक्ति कहियत उहै प्रेममार्ग है ।

१-प्राणों तक पहुँचता है अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि हो जाता है । २-मृगतृष्णा का जल जिसको मरुस्थल वा अन्य स्थलों में मृग देखकर जल ही मान लेता है ।

आप ब्रह्म जगत कौ एक करि जानै जब,
 सुंदर कहत वह ज्ञान भ्रम भाग^१ है ॥ १४ ॥
 कोऊ नृप फूलन की सेज पर सुतौ आइ,
 जब लग जाग्यौ तौलौ अतिसुख मान्यो है ।
 नींद जब आई तब वाही कौ सुपन भयौ,
 जाइ पर्यौ नरक से कुंडमें यौ जान्यौ है ॥
 अति दुख पावै परि निकस्यौ न क्यौंहो जाइ,
 जागि जव पर्यौ तब सुपन बषान्यौ है ।
 इह भूठ वह भूठ जाग्रत स्वप्न दोऊ^२,
 सुंदर कहत ज्ञानी सब भ्रम मान्यौ है ॥ १५ ॥
 कर्म न विकर्म करै भाव न अभाव धरै,
 शुभहू अशुभ परै यातै^३ निधरक है ।
 बस तीन^४ शून्य जाकै पापही न पुन्य ताक,
 अधिक न न्यून वाके स्वर्ग न नरक है ॥
 सुख दुख सम दोऊ नीच ही न ऊँच कोऊ,
 ऐसी विधि रहे सोऊ मिल्यौ न फरक है ।
 एक ही न दोइ जानै बध मोक्ष^५ भ्रम मानै,
 सुंदर कहत ज्ञानी ज्ञान में गरक^५ है ॥ २० ॥

१-भ्रम भाग जाता है । २-जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत में असत्य प्रतीत होते हैं वैसे ज्ञानी के अनुभव में जाग्रत के पदार्थ असत्य भासते हैं । ३-त्रिगुण । ४-ज्ञान का महत्त्व इतना है कि मोक्ष भी भ्रम ही है । ५-मग्न, डूबा हुआ ।

कामी है न जती है न सूम है न सखी^१ है न,
 राजा है न रंक है न तन है न मन है ।
 सोवै है न जागै है न पीछे है न आगे है न,
 ग्रहै है न त्यागै है न घर है न बन है ॥
 थिर है न डोलै है न मौन है न बोलै है न,
 बंधै है न खेलै है न स्वामी है न जन है ।
 वैसी कोऊ होइ जब वाकी गति जानै तब,
 सुंदर कहत ज्ञानी सुद्ध ज्ञानघन है^२ ॥ २१ ॥
 ज्ञानी लोक संप्रह कौं करत व्यवहार विधि,
 अंतहकरण में सुपन की सी दौर है ।
 देत उपदेश नाना भाँति के बचन कहि,
 सब कोउ जानत सकल सिरमौर है ॥
 हलन चलन पुनि देह सौं करावत है,
 ज्ञान में गरक नित लिए^३ निज ठौर है ।
 सुंदर कहत जैसेँ दंत गजराज मुख,
 षाड्बे के औरई दिषाड्बे को और हैं ॥ २३ ॥
 एक ज्ञानी कर्मनि में ततपर देषियत,
 भक्ति कौ प्रभाव नाहि ज्ञान में गरक है ।
 एक ज्ञानी भक्ति कौ अत्यंत प्रभाव लिए,

१-दातार । २-कामी आदि कहने से यह प्रयोजन है कि निषिद्ध का तो साधन भूमिका में त्याग कर दिया और शुद्ध का आचरण कर कर्मफल का त्याग कर दिया । ३-निज वा परमावस्था को धारण कि दुः ।

ज्ञान माहिं निश्चै करि कर्म सौं तरक^१ है ॥
 एक ज्ञानी ज्ञान ही में ज्ञान कौ उचार करै,
 भक्ति अरु कर्म इनि दुहुँ ते फरक है ।
 कर्म भक्ति ज्ञान तीनों वेद में बषानि कहे,
 सुंदर बतायौ गुरु ताही में लरक^२ है ॥ २७ ॥

देह जने मिलि चौपरि खेलत सारि धरै पुनि ढारत पासा ।
 जीतत है सु खुसी मन में अति हारत है सु भरै जु उसासा ॥
 एक जनौ दुहुँ ओरहि खेलत हारि न जीति करै जु तमासा ।
 तैसे अज्ञानी के द्वैत भयौ भ्रम सुंदर ज्ञानी के एक प्रकासा ॥ ३० ॥

सवइया छंद

जीव नरेश अविद्या निद्रा सुख सज्या सोयौ करि हेत ।
 कर्म खवास पुटपरी^३ लाई तातैं बहु विधि भयौ अचेत ॥
 भक्ति प्रधान जगायौ कर गहि आलस भरयौ जँभाई लंत ।
 सुंदर अब निद्रा बस नाहीं ज्ञान जागरन सदा सचेत ॥ ३१ ॥

(३०) निरसंशै का अंग

[सत्य वस्तु का निश्चित ज्ञान हो जाने पर देह का ममत्व और जीवन मरण का मोह, शोक, कुछ नहीं रहता है । देहाभिमान ही जब न रहा तो मृत्यु किसी भी देश किसी काल में हो, थोड़ा जीओ चाहे अधिक जीओ इत्यादि बातों का कुछ अपने अंदर बखेड़ा नहीं रहता ।]

१—स्याग वा अभाव करनेवाला । २—सुंदर को गुरु ने जो विलक्षण ज्ञानशैली वा सैन बताई उस ही में तत्पर है । लरक = सहज सुख साधन । ३—मूठी देना, पाँव दबाना ।

मनहर छंद

भावै^१ देह छूटि जाहु काशी माहिं गंगा तट,
 भावै देह छूटि जाहु क्षेत्र मगहर^२ मैं ।
 भावै देह छूटि जाहु विप्र के सदन^३ मध्य,
 भावै देह छूटि जाहु स्वपच^४ कं घर मैं ॥
 भावै देह छूटौ देश अरज^५ अनारज मैं,
 भावै देह छूटि जाहु बन मैं नगर मैं ।
 सुंदर ज्ञानी क कछु संशै नहिं रह्यौ कोई,
 स्वर्ग नरक सब भाजि गयौ भर^६ मैं ॥ १ ॥
 भावै देह छूटौ जाहु आज ही पलक माहिं,
 भावै देह रह्यौ चिरकाल जुग अंत जू ।
 भावै देह छूटि जाहु घोषम पावस रितु,
 सरद शिशिर शीत छूटत बसंत जू ॥
 भावै दत्तनायन हू भावै उत्तरायन^७ हू,
 भावै देह सर्प सिंघ विज्जुलो हनंत जू^८ ।

१-चाहे, अथवा । २-मगधदेश जिसमें मरन से गति नहीं होती ।
 ३-घर, भवन । ४-चांडाल, भंगी । ५-आर्य्य—आर्य्यावर्त्त पुण्यभूमि ।
 अनारज—जैसे स्लेच्छदेश, यवनदेश अंग कलिंगादि । ६-भ्रम थे सो
 भाग गए । ७-उत्तरायण सूर्य में मरने से सद्गति होती है; जैसे भीष्मजी
 की । गीता में भी ऐसा आया है तथा कई पुराणादि में भी । उत्तम
 ऋतु काल वा मुहूर्त्त की ज्ञानी को कुछ शंका नहीं रहती । ८-अकाल
 मृत्यु—आधिभौतिक आदि दैविक कुयोगों से ।

(२४६)

सुंदर कहत एक आतमा अखंड जानि,
याही भाँति निरसंशै भए सब संत जू ॥ २ ॥

(३१) प्रेमपरा ज्ञान ज्ञानी को अंग

[परात्पर ब्रह्म में निष्ठ और परा भक्ति के रसास्वादन से मत्त हुए ज्ञानी से मुख के ब्रह्मानंद का उद्गार और “बड़” जैसे निकलती है वही इस अंग में है ।]

इंदव छंद

ज्ञान दियौ गुरु देव कृपा करि दूरि कियौ भ्रम षोली किवारौ ।
और क्रिया कहि कौन करै अब चित्त लग्यौ परब्रह्म पियारौ ॥
पाव बिना चलि कै तहि ठाहर पंगु भयौ मन मित्त हमारौ ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकुल गाँव कौ पैड़ौहि न्यारौ १॥२॥
एक अखंडित ज्यों नभ व्यापक बाहिर भीतर है इकसारौ ।
दृष्टि न मुष्टि^२ न रूप न रेष न सेत न पीत न रक्त न कारौ ॥
चक्रित होइ रहै अनुभौ बिन जाँ लग नाहिंन ज्ञान उजारौ ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकुल गाँव कौ पैड़ौहि न्यारौ ॥३॥
लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष^३ न पक्ष अपक्ष न तूल न भारौ ।
भूठ न साँच अवाच न वाच न कंचन काँच न दीन उदारौ ॥

१-यह कहावत प्रसिद्ध है । ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग न्यारा है अर्थात् साधारण धर्म मर्यादा से भिन्न है, वह रहस्य ही निराला है जिसको पराभक्ति और परम ज्ञान के पहुँचे हुए महात्मा ही जानते हैं । २-स्थूल सूक्ष्म । ३-पूर्ण वा सर्वशक्तिमान् ।

जान अजान न मान अमान न शान गुमान न जीत न हारौ ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकुल गाँव कौ पैंढोहि न्यारौ ॥५॥

(३२) अद्वैत ज्ञान को अंग

इंदव छंद

उत्तम मध्यम और शुभाशुभ भेद अभेद जहाँ लग जोहै ।
दीसत भिन्न तबो अरु दर्पन वस्तु विचारत एक हि लोहै ? ॥
जो सुनिए अरु दिष्टि परै पुनि वा बिन और कहो अब को है ।
सुंदर सुंदर व्यापि रह्यौ सब सुंदर ही महि सुंदर सोहै ॥३॥
ज्यों बन एक अनेक भए द्रुम नाम अनंतनि जातिहु न्यारी ।
वापि तडागरु कूप नदी सब है जल एक सुदेपौ निहारी ॥
पावक एक प्रकाश बहू विधि दीप चिराग मसालहु बारी ।
सुंदर ब्रह्म बिलास अखंडित खंडित भेद की बुद्धि सुटारी ॥ ४ ॥

मनहर छंद

तोही मैं जगत यह तूही है जगत माहि,
तो मैं अरु जगत मैं भिन्नता कहाँ रही ।
भूमि ही तें भाजन अनेक भाति नाम रूप,
भाजन विचारि देखै उहै एक है मही ॥
जल मैं तरंग भई फेन बुद्बुदा अनेक,
सोऊ तौ विचारे एक बहै जल है सही ।

महा पुरुष जेते हैं सबकौ सिद्धांत एक,
 सुंदर ग्वत्विदं ब्रह्म^१ अंत वेद है कहो ॥ १४ ॥
 ब्रह्म मैं जगत यह ऐसी विधि देषियत,
 जैसी विधि देषियत फूलरी महीर^२ मैं ।
 जैसी विधि गिलम^३ दुलीचे^४ मैं अनेक भाँति,
 जैसी विधि देषियत चूँनरीऊ चीर मैं ॥
 जैसी विधि कांगरे ऊ कोट पर देषियत,
 जैसी विधि देषियत बुदबुदा नीर मैं ।
 सुंदर कहत लोक हाथ पर देषियत,
 जैसी विधि देषियत शीतला शरीर मैं ॥ १८ ॥
 ब्रह्म अरु माया जैसै शिव अरु शक्ति पुनि,
 पुरुष प्रकृति दोऊ करि कै सुनाए हैं ।
 पति अरु पतनी ईश्वर अरु ईश्वरी ऊ,
 नारायण लक्ष्मी द्वै वचन कहाए हैं ॥
 जैसै कोऊ अर्द्धनारी नाटेस्वर^५ रूप धरै,
 एक बीज ही ते दोइ दालि नाम पाए हैं ।

-
- १-“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”—यह सब (जगत्) निश्चय ही ब्रह्म है ।
 २-महीर = महीरुह, वृक्ष । फूलरी = फूल अथवा महीर = महियर वा मही, मट्ठा, छाछ । फूलरी = छाछ के फूल, घृत मिला मट्ठा जो ऊपर आता है । ३-एक प्रकार का बढ़िया मखमल जैसा कपड़ा जो बादशाह अमीरों के काम में आता था । ४-गलीचा । ५-महादेव जी का एक ऐसा स्वरूप जिसमें वामांग तो उसी में पार्वती और दक्षिणांग उसी में शिव रूप ।

(२४६)

तैसे ही सुंदर वस्तु ज्योंही त्यों ही एक रस,
उभय प्रकार होइ आप ही दिषाए हैं ॥ १६ ॥

इंदव छंद

आदि हुतौ सोइ अंत रहै पुनि मध्य कहा कछु और कहावै ।
कारण कारय नाम धरे जुग कारय कारण माहि समावै ॥
कारय देषि भयौ बिचि विभ्रम कारण देषि विभ्रम्म बिलावै ।
सुंदर या निहचै अभिअंतर द्वैत गए फिरि द्वैत न आवै ॥ २२ ॥

मनहर छंद

द्वैत करि देषै जब द्वैत ही दिषाई देत,
एक करि देषै तब उहै एक अंग है ।
सूरज को देषै जब सूरज प्रकाश रह्यो,
किरण कौ देषै तौ किरण नाना रंग है ॥
भ्रम जब भयौ तब माया ऐसो नाम धर्यौ,
भ्रम कै गए ते एक ब्रह्म सरवंग हैं ।
सुंदर कहत याकी दृष्टि ही कौ फेर भयौ,
ब्रह्म अरु माया कै तौ माथै नहि शृंग है^१ ॥ २३ ॥

(३३) जगन्मिथ्या को अंग

मनहर छंद

ऐसोई अज्ञान कोऊ आइ कै प्रगट भयौ,

^१—अर्थात् कोई विशेष चिह्न ऐसा नहीं है कि सहज ही में पहिचान में आ जाय, जैसे पशु सींग से । 'शृंग' शब्द यहाँ 'अंग' ऐसा उच्चारण होगा, अनुप्रास के लिये ।

दिव्य दृष्टि दूर गई देष चर्मदृष्टि^१ कौ ।
 जैसे एक आरसी सदाई हाथ मांहि रहै,
 सामै^२ हौ न देषै फेरि फेरि देषै पृष्ठि कौ ॥
 जैसे एक व्योम पुनि बादर सौं छाइ रख्यौ,
 व्योम नहि देखत देखत बहु वृष्टि कौ ।
 तैसे एक ब्रह्म विराजमान सुंदर है,
 ब्रह्म कौ न देषै कोऊ देषै सब सृष्टि कौ ॥ २ ॥
 मृत्तिका समाइ रही भाजन के रूप मांहि,
 मृत्तिका कौ नाम मिटि भाजनई गह्यौ है ।
 कनक समाइ त्यों ही होइ रख्यौ आभूषन,
 कनक न कहै कोऊ आभूषन कह्यौ है ॥
 बीजऊ समाइ करि वृत्त होइ रख्यौ पुनि,
 वृत्त ही कौ देषियत बीज नहि लह्यौ है ।
 सुंदर कहत यह यों हो करि जानै सब,
 ब्रह्मई जगत होइ ब्रह्म दुरि^३ रख्यौ है ॥ ४ ॥
 कहत है देह मांहि जीव आइ मिलि रख्यौ,
 कहाँ देह कहाँ जीव^४ वृथा चोंकि पर्यौ है ।
 बूढ़वे के डर तें तिरन कौ उपाइ करै,
 ऐसे नहि जानै यह मृगजल भर्यौ है ॥

१-चर्मदृष्टि, स्थूल इंद्रियां । २-सामने, दर्पण का वह अंग जिसमें मुँह दिखाई देवै । ३-छिपा, अप्रगट । ४-यह द्वैतवादी न्यायवालों पर कटाक्ष है जो जीव को नाना और निरवयव परमाणुवत् मानते हैं ।

(२५१)

जेवरे कौ साँपु जैसै सीप विषै रूपौ जानि,
और कौ औरइ देषि यौही भ्रम करौ है ।
सुंदर कहत यह एकई अखंड ब्रह्म,
ताही कौ पलिटि कै जगत नाम धरौ है^१ ॥ ५ ॥

(३४) आश्चर्य्य के अंग

[परमात्म तत्व की दुर्लभता अनिर्घचनीयता आदि का कथन ।]

मनहर छंद

वेद कौ विचार सोई सुनि कै संतनि मुख,
आपु हू विचार करि सोई धारियतु है ।
योग की युगति जानि जग ते' उदास होइ,
शून्य में समाधि लाइ मन मारियतु है ॥
ऐसै' ऐसै' करत करत केते दिन बीते,
सुंदर कहत अजहूँ विचारियतु है ।
कारौ ही न पीरौ न तौ तातौ ही न सीरौ कछु,
हाथ न परत तातै' हाथ भारियतु है ॥ १ ॥
भूमि ही न आप न तो तेज ही न ताप न तौ,
वायु हू न व्योम न तो पंच कौ पसारौ है ।

१—इस सवैये और ऊपर कई स्थलों में जहाँ सृष्टि को ब्रह्म से बना वा ब्रह्म ही बताया है वहाँ ब्रह्म जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों साथ ही समझना । यह विषय उपनिषदादि में भी प्रतिपादित है । शंकर स्वामी का विवर्त्तवाद इससे कुछ भिन्न है परंतु व्यास सूत्रों की समझ इसी प्रकार भासती है ।

हाथ ही न पाव न तो नैन बैन भाव न तो,
 रंक ही न राव न तो वृद्ध ही न बारौ^१ है ॥
 पिंड हो न प्रान न तौ जान न अजान न तौ,
 बंध निरवान न तौ हरकौ न भारौ है ।
 द्वैत न अद्वैत न तौ भीत न अभोत तातैं,
 सुंदर कह्यौ न जाइ मिल्यौ ही न न्यारौ है ॥ ५ ॥

इंदव छंद

तत्व अतत्व कह्यौ नहिं जात जु शून्य अशून्य उरै न परै है ।
 ज्योति अज्योति न जानि सकै कोउ आदि न अंत जिवै न मरै है ॥
 रूप अरूप कछू नहिं दीसत भेद अभेद करै न हरै है ।
 शुद्ध अशुद्ध कहै पुनि कौन जु सुंदर बोल न मौन धरै है ॥ ७ ॥
 पिंड में है परिपिंड लिपै नहिं पिंड परै^२ पुनि त्यौहि रहावै :
 श्रोत्र में है परिश्रोत्र सुनै नहिं दृष्टि में है परि दृष्टि न आवै ॥
 बुद्धि में है परि बुद्धि न जानत चित्त में है परि चित्त न पावै ।
 शब्द में है परि शब्द थक्यौ कहि शब्द हू सुंदर दूर बतावै ॥८॥
 एक हि ब्रह्म रह्यौ भरपूर तौ दूसर कौन बताव निहारौ ।
 जौ कोउ जीव करै जु प्रमान तौ जीव कहा कछु ब्रह्म ते न्यारौ ॥
 जौ कहै जीव भयौ जगदोस ते तौ रवि मांहि कहा कौ अंधारौ^३ ।
 सुंदर मौन गही यह जानि कै कौनहुँ भाति न होत निधारौ^४ ॥ ११ ॥

१-बालक । २-गिरै, नाश । शरीर के नाश से आत्मा का कुछ भी बिगाड़ नहीं । ३-जब जीव ब्रह्म से वा ब्रह्म ही है तो जीव में अल्पज्ञता, प्रतिबद्धता, अज्ञानता आदि न होनी चाहिए थी । ४-निर्धार का तुक वा गण्यमान के कारण रूपांतर है ।

वेद थके कहि तंत्र थके कहि ग्रंथ थके निश वासर गातैं^१ ।
 सेस थके शिव इंद्र थके पुनि षोज कियौ बहु भाँति विधातैं ॥
 पीर थके अरु मीर थके पुनि धोर थके बहु बोलि गिरा तैं ।
 सुंदर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातैं ॥१४॥
 योगी थके कहि जैन थके ऋषि तापस थाकि रहे फल पातैं ।
 न्यासी थके बनवासी थके जु उदासी थके बहु फेर फिरातैं ॥
 शेष मसाइक^२ और उलाइक^३ थाकि रहे मन में मुसकातैं ।
 सुंदर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बातैं ॥१५॥

१-विधाता (ब्रह्मा) ने । २-मशाइख—शेख (धर्माचार्य)
 मुसल्मान धर्म का होता है, उसका बहुवचन । ३-औलिया = महात्मा ।
 स्यात् यह शब्द मलाइक (फरिश्ते वा देवता) को बिगाड़कर लिखा है
 अथवा उ = और + लाइक (लायक) योग्य, इनसे बना है ।

(४) साखी

[दादूजी की रचना वा वचन के 'साखी' और 'शब्द' दो भाग हैं। इसी प्रकार उनके ५२ शिष्यों ने भी प्रायः साखी और शब्द बनाए हैं, और साधारणतः महात्माआ में ऐसी ही चाल है। सुंदरदासजी की साखी १३११ संख्या में और ३१ अंगों में विभक्त है। इस साखीसंग्रह में बड़े बड़े उत्तम दोहे हैं। इनमें बहुत से तो नवीन विचार हैं जो इनके अन्य ग्रंथों से पृथक् ही प्रतीत होते हैं, परंतु शेष में तो इनके ग्रंथा में जैसे विचार हैं तदनुसार ही हैं। बंबई के 'तत्त्वविवेचक' आदि प्रेसों ने १०६ साखी को "ज्ञानविलास" नाम से छपा है। मिलान से ये सब मूल ग्रंथ से किसी ने छांटी हों ऐसा प्रतीत होता है परंतु छांट कुछ उत्तम नहीं हुई है। इसी लिये हमको भिन्न छांट करनी पड़ती है। परंतु स्थानाभाव से साखियों की अधिक संख्या हम नहीं ला सके, कई उत्तम उत्तम साखियाँ रह गईं। परंतु हमने उन्हें सब अंगों से ले लिया है। 'तत्त्वविवेचक' प्रेस आदि वालों ने केवल २० ही अंगों से साखियाँ ली हैं। 'सवैया' (सुंदर विलास) के ३४ अंगों में से २३ अंगों के नाम तो 'साखी' के अंगों के नामों से मिलते हैं। कहीं कहीं विचारों की समानता भी है, शेष में भिन्नता है। परंतु अन्य इनके ग्रंथों में साखी के कई विचार आ गए हैं। यह पढ़नेवाले स्वयं विचारे।]

(२५५)

(१) गुरु देव को अंग

दोहा छंद

दादू सद्गुरु बंदिऐ, सो मेरे सिरमौर ।
सुंदर बहिया जाय था, पकरि लगाया ठौर ॥ १ ॥
सुंदर सद्गुरु सारिषा^१, कोऊ नहीं उदार ।
ज्ञान षजीना षेलिया, सदा अद्वुट भँडार ॥ २८ ॥
परमात्म सों आतमा, जुदे रहे बहु काल ।
सुंदर मेला करि दिया, सद्गुरु मिले दलाल ॥ ४६ ॥
सुंदर समझे एक है, अनसमझे को द्वीत^२ ।
उभै रहित सद्गुरु कहै, सोहै वचनातीत ॥ ५६ ॥
सुंदर सद्गुरु हैं सही, सुंदर शिचा दोन्ह ।
सुंदर वचन सुनाइकै, सुंदर सुंदर कीन्ह ॥ १०२ ॥ (५)

(२) सुमरण को अंग

हृदये मैं हरि सुमिरिए, अंतरजामी राइ ।
सुंदर नीके जत्र सौं, अपने वित्त छिपाइ^३ ॥ ४ ॥
लीन भया विचरत फिरै, छीन भया गुन देह ।
दीन भई सब कल्पना, सुंदर सुमिरन एह ॥ २५ ॥
प्रोतिसहित जे हरि भजै, तब हरि हेहांहि प्रसन्न ।
सुंदर स्वाद न प्रीति विन, भूष बिना ज्यों अन्न ॥ ३८ ॥

१-समान । २-द्वैत । ३-अपने इष्ट को गोप्य रखने से अंतरात्मा की सिद्धि शीघ्र होती है, जैसे कृपण अपने प्यारे धन को छिपा रखता है ।

(२५६)

एक भजन तन सों करे, एक भजन मन होय ।
 सुंदर तन मन कै परै, भजन अखंडित सोय ॥ ४२ ॥
 जाही कौ सुमिरन करै, हूँ ताही कौ रूप ।
 सुमिरन कीए ब्रह्म के, सुंदर हूँ चिद्रूप^१ ॥ ५६ ॥ (१०)

(३) विरह को अंग

मारग जोवै विरहिनी, चितवे पिय की ओर ।
 सुंदर जियरै जक नहीं, कल न परत निशि भोर ॥ १ ॥
 सुंदर विरहिनी अधजरी, दुःख कहै मुख रोइ ।
 जरि बरि कै भस्मी भई, धुवाँ न निकसै कोइ ॥ १८ ॥
 लालन मेरा लाडिला, रूप बहुत तुझ माँहि ।
 सुंदर रापै नैन मैं, पलक उघारै नाँहि ॥ ४८ ॥ (१३)

(४) बंदगी को अंग

जिस बंदे का पाक दिल, सो बंदा माकूल !
 सुंदर उसकी बंदगी, साँई करै कबूल ॥ ३ ॥
 उलटि^२ करै जो बंदगी, हरदम अरु हर रोज ।
 तौ दिल ही मैं पाइए, सुंदर उसका षोज ॥ ७ ॥
 मुख सेती बंदा कहै, दिल मैं अति गुमराह ।
 सुंदर सो पावे नहीं, साँई की दरगाह ॥ २० ॥ (१६)

१-चित् जो ब्रह्म ही, उसका रूप अर्थात् तदाकार । २-हृदय के
 अंदर ही वृत्ति लगावे जाहिरदारी न करे ।

(५) पतिव्रत का अंग

पतिव्रत^१ ही में योग है, पतिव्रत हो में याग ।
 सुंदर पतिव्रत राम सै, वहै त्याग बैराग ॥६॥
 जाचिक कौं जाचै कहा, सरै न कोई काम ।
 सुंदर जाचै एक कौ, अलष निरंजन राम ॥२७॥
 सुंदर पतिव्रत राम सौं, सदा रहै इकतार ।
 सुख देवै तो अति सुखी, दुख तौ सुखी अपार ॥३६॥
 रजा राम की सीस पर, आज्ञा भेटै नाहिं ।
 ज्यों राखै त्योंही रहै, सुंदर पतिव्रत माहिं ॥३७॥
 ज्यों प्रभु कौं प्यारौ लगै, सोही प्यारो मोइ ।
 सुंदर ऐसै समुझि करि, यौ पतिव्रता होइ ॥४६॥(२१)

(६) उपदेश चितावनी का अंग

सुंदर मनुषा देह की, महिमा कहिए काहि ।
 जाकौ छै देवता, तूं क्यों षोवै ताहि ॥ २ ॥
 सुंदर पंछी बिरछ पर, लियो बसेरा आनि ।
 राति रहे दिन उठि गए, त्यों कुटंब सब जानि ॥२५॥
 सुंदर यह ओसर भलो, भज ले सिरजनहार ।
 जैसे ताते लोह कौ, लेत मिलाइ लुहार ॥३२॥
 सुंदर योही देखते, ओसर बोत्यौ जाइ ।
 अँजुरी माँही नीर ज्यों, किती बार ठहराइ ॥३४॥

दीया की बतियाँ कहै, दीया किया न जाइ ।

दीया करै सनेह करि, दीए ज्योति दिषाइ^१ ॥५१॥(२६)

(७) काल चितावनी का अंग

काल ग्रसत है बावरे, चेतत क्यों न अजान ।

सुंदर काया कोट में, होय रह्यो सुलतान ॥१॥

सुंदर काल महाबली, मारे मोटे मीर ।

तू कोनै की गनति में, चेतत काहे न वीर ॥२॥

एक रहै करता पुरुष, महा काल कौ काल ।

सुंदर बहु बिनसै नहीं, जाकौ यह सब ब्याल ॥३६॥

जौ जौ मन में कल्पना, सो सो कहिए काल ।

सुंदर तू निःकल्प हो, छाँड़ि कल्पना जाल ॥४६॥

काल ग्रसै आकार कौ, जामैं सकल उपाधि ।

निराकार निर्लेप है, सुंदर तहाँ न व्याधि ॥४७॥(३१)

१—इसमें “दीया” शब्द का श्लेष है तथा बतियाँ आदि का भी ।
 दीया = (१) दीवा, दीप (२) दिया, देना, दान; बतियाँ = (१)
 बाती, (२) वार्त्ता; सनेह = (१) तेज (२) स्नेह, प्रेम । अर्थ—देने
 की बातें तो करता है परंतु दिया जाता नहीं । यदि प्रेम से दान दिया
 करे तो पुण्य बढ़ने से आत्मा निर्मल होकर प्रकाश वा तेजस्विता बढ़े
 अथवा (२) ज्योति स्वरूप प्रत्यक्ष न हो तो न हो उसका कीर्त्तन करता
 रहै । ज्ञान का तेज और जीभ की बाती कर उसे जलावे तो हृदय में
 प्रकाश हो जाय ।

(२५६)

(८) नारी पुरुष श्लेष^१ का अंग

नारी पुरुष सनेह अति, देखे जीवै सोइ ।
सुंदर नारी बीछुरे, आपु मृतक तब होइ ॥१॥
नारी जाके हाथ में, सोई जीवत जानि ।
नारी कै संग बहि गयौ, सुंदर मृतक वषानि ॥१३॥(३३)

(८) देहात्म विच्छेह का अंग

श्रवण नैन मुख नासिका, ज्यों के त्यों सब द्वार ।
सुंदर सो नहिं देषिण, अचल चलावन हार ॥८॥
सुंदर देह छलै चलै, चेतन कै संजोग ।
चेतनि सत्ता चलि गई, कौन करै रस भोग ॥१३॥
सुंदर आया कौन दिसि, गया कौन सी ओर ।
या किन हू जान्यौ नहीं, भयो जगत में सोर ॥२५॥(३६)

(१०) तृष्णा का अंग

पल पल छीजै देह यह, घटत घटत घट जाय ।
सुंदर तृष्णा ना घटै, दिन दिन नोतन^२ थाय^३ ॥१॥
तृष्णा कै बसि होइ कै, डोलै घर घर द्वार ।
सुंदर आइर मान बिन, होत फिरै नर प्वार^४ ॥१३॥(३८)

१-नारी का दो अथा में प्रयोग है (१) स्त्री, (२) नाडी, हाथ की ।
२-नया रूप अथवा नूतन । ३-(गुजराती में) होय । ४-(फारसी)
खराब, दुर्दशाग्रस्त ।

(११) अधीर्य उराहने को अंग

देह रच्यो प्रभु भजन कौं, सुंदर नष सिष साज ।
 एक हमारी बात सुन, पेट दियौ किहि काज ॥१॥
 विद्याधर पंडित गुनी, दाता शूर सुभट्ट ।
 सुंदर प्रभुजी पेट इनि, सकल किये षटपट्ट^१ ॥१६॥

(१२) विश्वास को अंग

चंच सँवारी जिनि प्रभू, चून देयगो आनि ।
 सुंदर तूं विश्वास गहि, छाँड़ आपनी बानि ॥८॥
 सुंदर जाकौं जो रच्यौ, सोई पहुँचै आइ ।
 कीरी कौं कन देत है, हाथी मन भरि षाइ ॥२३॥ (४२)

(१३) देह मलिनता गर्व प्रहार को अंग

सुंदर देह मलीन है, राख्यौ रूप सँवार ।
 ऊपर तैं कलई करो, भीतरि भरी भँगार ॥
 सुंदर मलिन शरीर यह, ताहू में बहु व्याधि ।
 कबहूँ सुख पावै नहीं, आठौ पहिरि उपाधि ॥१८॥

(१४) दुष्ट को अंग

सुंदर दुष्ट सुभाव है, औगुन देवै आइ ।
 जैसे कीरी महल में, छिद्र ताकती जा ॥३॥

१-‘खटपट’ का अर्थ बखेड़ा वा लड़ाई का है; परंतु यहाँ बिगाड़ के अर्थ में है ।

सुंदर कबहुँ न धीजिए, सरस दुष्ट की बात ।
 मुख ऊपर मीठी कहै, मन मैं घालै^१ घात ॥६॥
 दुर्जन संग न कीजिए, सहिए दुःख अनेक ।
 सुंदर सब संसार में, दुष्ट समान न एक ॥१६॥
 सुंदर दुख सब तैलिये, घालि तराजू माहिं ।
 जो दुख दुरजन संग ते', ता सम कोई नाहिं ॥२२॥
 ज्यों कोउ मरै बान भरि, सुंदर कछु दुख नाहिं ।
 दुरजन मारै बचन सौं, सालतु है उर माहिं ॥२५॥(४६)

(१५) मन को अंग

मन कौं राषत हटकि करि, सटकि चहुँ दिशि जाइ ।
 सुंदर लटकि^२ रु लालची, गटकि विषै फल षाइ ॥१॥
 भटकि तार कौं तोरि दे, भटकत साँभ रु भोर ।
 पटकि सीस सुंदर कहै, फटकि^३ जाइ ज्यों चोर ॥२॥
 सुंदर यह मन चपल अति, ज्यों पीपर कौ पान ।
 बार बार चलिबो करै, हाथी को सौ कान ॥३॥
 मन बसि करने कहत हैं, मन कौ बसि हूँ जाहिं ।
 सुंदर बलटा पेच है, समझ नहों घट माहिं ॥४॥
 तन कौ साधन होत है, मन कौ साधन नाहिं ।
 सुंदर बाहर सब करै, मन साधन मन माहिं ॥४०॥

(२६२)

मन ही यह विस्तर^१ रह्यौ, मन ही रूप कुरूप ।
 सुंदर यह मन जीव है, मन ही ब्रह्म स्वरूप ॥४६॥
 सुंदर मन मन सब कहैं, मन जान्यौ नहिं जाइ ।
 जौ या मन कौ जानिए, तौ मन मनहिं समाइ ॥४७॥
 मन कौ साधन एक है, निशि दिन ब्रह्म विचार ।
 सुंदर ब्रह्म विचार तें, ब्रह्म होत नहिं बार ॥४८॥
 सुंदर निकसै कौन बिधि, होय रह्यो लैलीन^२ ।
 परमानंद समुद्र में, मग्न भया मन मीन ॥५५॥ (५८)

(१६) चाणक्य का अंग

छूट्यौ चाहत जगत सौं, महा अज्ञ मतिमंद ।
 जोई करै उपाय कछु, सुंदर सोई फंद ॥ १ ॥
 कूकस^३ कूटै कन बिना, हाथ चढै कछु नाहिं ।
 सुंदर ज्ञान हृदै नहीं, फिरि फिरि गोते पाहिं ॥ ८ ॥
 बैठौ आसन मारि करि, पकरि रह्यौ मुख मौन ।
 सुंदर सैन बतावते, सिद्ध भयौ कहि कौन ॥ ६ ॥ (६१)

(१७) वचन विवेक का अंग

सुंदर तब ही बोलिए, समुझि हिये में पैठि ।
 कहिए बात विवेक की, नहितर चुप ह्वै बैठि ॥ १ ॥

— १-विस्तृत, फैला हुआ । २-लयलीन, मग्न, गर्क । ३-थोथा अज्ञ, अज्ञहीन कुँसी वा बाल बाजरे आदि की ।

(२६३)

सुंदर मौन गहे रहै, जानि सकै नहिं कोइ ।
 बिन बोलै गुरवा कहै, बोलै हरवा होइ ॥ २ ॥
 सुंदर सुवचन तक ते, राखै दूध जमाइ ।
 कुवचन कांजी परत ही, तुरत फाटि करि जाइ ॥ १२ ॥
 जा वाणी में पाइए, भक्ति ज्ञान वैराग ।
 सुंदर ताकौ आदरै, और सकल को त्याग ॥ २३ ॥ (६५)

(१८) सूरतन को अंग

घर मैं सब कोइ बंकुडा^१, मारै गाल^२ अनेक ।
 सुंदर रण में ठाहरै, सूरवीर कौ एक^३ ॥ ५ ॥
 सुंदर सील सनाह^४ करि, तोष^५ दियो सिर टोप ।
 ज्ञान षडग पुनि हाथ लै, कीयौ मन परिकोप ॥ २२ ॥
 मारै सब संग्राम करि, पिशुन^६ हुते घट माहिं ।
 सुंदर कोऊ सूरमा, साधु बराबर नाहिं ॥ २४ ॥ (६८)

(१८) साधु को अंग

संत समागम कीजिए, तजिए और उपाइ ।
 सुंदर बहुते उद्धरे, सत संगति में आइ ॥ १ ॥
 सुंदर या सत्संग में, भेदाभेद न कोइ ।
 जोई बैठे नाव में, सो पारंगत होइ ॥ २ ॥

१-बाँका, बलबंक, शूर वीर । २-गाल मारना, बकना, डींग मारना । ३-कोई एक, बहुत थोड़े । ४-कवच, बख्तर । ५-संतोष । ६-शत्रु, दुष्ट ।

जन सुंदर सत्संग मैं, नीचहु होत उत्तंग^१ ।
 परै छुद्रजल गंग मैं, उहै होत पुनि गंग ॥ ५ ॥
 संत मुक्ति के पोरिया, तिन सों करिए प्यार ।
 कूंजी उनके हाथ है, सुंदर पोलहि द्वार ॥ १० ॥
 सुंदर आए संतजन, मुक्त करन कौं जीव ।
 सब अज्ञान मिटाइ करि, करत जीव तें शीव^२ ॥ १७ ॥
 सुंदर हरिजन एक हैं, भिन्न भाव कछु नाहिं ।
 संतनि माहे हरि बसै, संत बसैं हरि माहि ॥ ४८ ॥ (७४)

(२०) विपर्यय को अंग

कीछी कुंजर कौं गिल्यौ, स्याल सिंह कौं पाय ।
 सुंदर जल तें माछली, दौरि अग्नि में जाय^३ ॥ ४ ॥
 कमल माहिं पाणो भयौ, पाणी माहे भान ।
 भान माहिं शशि मिलि गयौ, सुंदर उलटौ ज्ञान^४ ॥ ६ ॥ (७६)

१-ऊँचा । २-शिव, ब्रह्म । ३-देखो सवैया अंग विपर्यय छंद ।
 ४-पर फुटनोट सं० (२) । यह दोहा विपर्यय अंग के सातवें अंग
 के अनुसार है । इसका तात्पर्य यह है—कमल = हृदय । पाणी = परा-
 भक्ति । भानु = ज्ञानरूपी सूर्य । शशि = चंद्रमा, शांति या ब्रह्मानंद
 की शीतलता । मिलि गयो = प्राप्त हुआ । उलटौ = विपर्यय, देखने
 में विरुद्ध सा प्रतीत हो । अपने अंतःकरण में परमात्मा की भक्ति
 होने से प्रेम के प्रभाव से ज्ञान उत्पन्न होकर शांति सुख प्राप्त हुआ ।

(२६५)

(२१) समथ ई आश्चर्य को अंग

सुंदर समरथ राम कौं, करत न लागै बार ।
पर्वत सौं राई करै, राई करै पहार ॥६॥
जठ चेतन संयोग करि, अद्भुत कीयौ ठाट^१ ।
सुंदर समरथ रामजी, भिन्न भिन्न करि घाट^२ ॥१४॥
पलक माहिं परगट करै, पल मैं धरै उठाइ ।
सुंदर तेरे ब्याल की, क्यों करि जानी जाइ ॥३६॥
बाजीगर बाजी रची, ताको आदि न अंत ।
भिन्न भिन्न सब देखिए, सुंदर रूप अनंत ॥५०॥
किन हूँ अंत न पाइयौ, अब पावै कहि कौन ।
सुंदर आगे होहिंगे, थाकि रहे करि गौन ॥५६॥
लौन पूतरी उदधि मैं, थाह लैन कौं जाइ ।
सुंदर थाह न पाइए, बिचि ही गई बिलाइ ॥६०॥(८२)

(२२) अपने भाव को अंग

सुंदर अपना भाव है, जे कुछ दीसै आन ।
बुद्धि योग विभ्रम भयो, दोऊ ज्ञान अज्ञान ॥ १ ॥
काहू सौं अति निकट है, काहू सौं अति दूर ।
सुंदर अपना भाव है, जहाँ तहाँ भरपूर ॥२५॥(८४)

(२३) स्वरूप विस्मरण का अंग

सुंदर भूलौ आपको, षोई अपनी ठौर ।
 देह माहि मिलि देह सो, भयौ और का और ॥ १ ॥
 जा घट कीं उनहारि^१ है, जैसा दीसत आहि ।
 सुंदर भूलौ आपही, सो अब कहिए काहि ॥ २ ॥
 सुंदर जड़ के संग ते, भूलि गयो निज रूप ।
 देषहु कैसो भ्रम भयौ, बूडि रह्यौ भव कूप ॥ ११ ॥
 ज्यों मनि कोऊ कंठ थीं, भ्रम ते पावै नाहि ।
 पूछत डोलै और कौ, सुंदर आपुहि माहि ॥ २६ ॥
 रवि रवि कौ ढूँढ़त फिरै, चंदहि ढूँढ़ै चंद ।
 सुंदर हूवौ जीव सो, आप इहै गोविंद ॥ ५० ॥ (८६)

(२४) सांख्य ज्ञान को अंग

पंच तत्व कौ देह जड़, सब गुन मिलि चौबीस ।
 सुंदर चेतन आत्मा, ताहि मिलै पच्चीस ॥ ३ ॥
 छब्बीसीं सु ब्रह्म है, सुंदर साक्षी भूत^२ ।
 यों परमात्म आत्मा, यथा बाप ते पूत ॥ ४ ॥
 लुभा तृषा गुन प्रान कौ, शोक मोह मन होय ।
 सुंदर साक्षी आत्मा, जानै बिरला कोय ॥ ८ ॥
 जाकी सत्ता पाय करि, सब गुन हूँ चैतन्य ।

१-सादृश्य, नकल । २-देखो सवैया सांख्य को अंग छंद १ और फुटनोट ।

सुंदर सोई आतमा, तुम जनि जानहु अन्य ॥ ८ ॥
 सूक्ष्म देह स्थूल कौ, मिल्यौ करम संयोग ।
 सुंदर न्यारौ आतमा, सुख दुख इनको भोग ॥ ३८ ॥
 जाग्रत स्वप्न सुषोपती, तीनि अवस्था गौन ।
 सुंदर तुरिय^१ चढ्यौ जबै, परी^२ चढै तब कौन ॥ ६१ ॥ (८५)

(२५) अवस्था को अंग

तीनि अवस्था मांहि है, सुंदर साक्षी भूत ।
 सदा एकरस आतमा, व्यापक है अनस्यूत^३ ॥ ४ ॥
 तीनि अवस्था तें जुदो, आतम व्योम समान ।
 भीति चित्र पुनि घौंटतम, लिप्त नहीं यौ जान^४ ॥ ७ ॥
 बाजीगर परदा किया, सुंदर बैठा मांहि ।
 षेल दिषावे प्रगट करि, आप दिषावै नाहि ॥ ११ ॥
 है अज्ञान अनादि को, जीव पर्यौ भ्रम कूप ।
 श्रवण मनन निदिध्यास तें, सुंदर है चिद्रूप ॥ ४६ ॥ (८६)

१-तुरिय = चतुर्थ अवस्था साक्षात्कारता की । २-खरी = गंधी ।
 वहाँ श्लेष से तुरिय का अर्थ घोड़ी लेना । ३-खूब मिला हुआ ।
 ४-जाग्रत अवस्था भीत के अपर चित्र के समान है । स्वप्न अवस्था
 ठँके हुए वा लिपटे हुए चित्र के समान है । सुषुप्ति (गढ़ निद्रा)
 अँधेरे के अंदर रखे चित्र के समान है । परंतु आत्मा तीनों अवस्थाओं
 से भिन्न है ।

(२६८)

(२६) विचार को अंग

सुंदर या साधन बिना, दूजौ नहीं उपाइ ।
 निशि दिन ब्रह्म विचार ते, जीव ब्रह्म हूँ जाइ ॥ २ ॥
 जैसे जल महि कमल है, जल ते न्यारौ सोइ ।
 सुंदर ब्रह्म विचार करि, सब ते न्यारौ होइ ॥ ६ ॥
 कीयौ ब्रह्म विचार जिनि, तिनि सब साधन कीन ।
 सुंदर राजा के रहै, प्रजा सकल आधोन ॥ १४ ॥
 करत विचार विचारिया, एकै ब्रह्म विचार ।
 सुंदर सकल विचार में, यह विचार निज सार ॥ ४६ ॥
 ब्रह्म विचारत ब्रह्म हूँ, और विचारत और ।
 सुंदर जा मारग चलै, पहुँचै ताही ठौर ॥ ५० ॥
 याही एक विचार ते, आतम अनुभव होइ ।
 सुंदर समुझै आपकी, संशय रहै न कोइ ॥ ४७ ॥ (१०५)

(२७) अक्षर विचार को अंग

उहै ऐन उहै गैन है, नुकता ही को फेर ।
 सुंदर नुकता भ्रम लग्यौ, ज्ञान सुपेदा हेर ॥ १ ॥

१—सूक्तियों में 'ऐन और गैन' का एक मसला है । 'ऐन' कहने से निर्गुण ब्रह्म । उस पर नुकता बिंदु धरने से गैन बनता है । गैन साकार ब्रह्म । नुकता गुण वा प्रकृति । ज्ञान का सुपेदा—उजाला । सुपेदा भक्त का सफेद काजल होता है । हरताल का काम अक्षर शोधन में होता है ।

ज्यों अकार^१ अक्षरनि में, त्यों आतम सब माहिं ।
सुंदर एकै देषिए, भिन्न भाव कछु नाहिं ॥८॥ (१०७)

(२८) आत्मानुभव को अंग

मुख ते^१ कछौ न जात है, अनुभव को आनंद ।
सुंदर समुझै आपको, जहाँ न कोई द्वंद ॥ १ ॥
सदा रहै आनंद में, सुंदर ब्रह्म समाइ ।
गूंगा गुड़ कैसें कहै, मन ही मन मुसकाइ ॥ ५ ॥
सुंदर जिनि अमृत पियौ, सोई जानै स्वाद ।
बिन पीयै करतौ फिरै, जहाँ तहाँ बकवाद ॥ १० ॥
षट् दर्शन^२ सब अंध मिलि, हस्ती देष्या जाइ ।
अंग जिसा जिनि करि गहा, तैसा कहा बनाइ ॥ ३० ॥
सुंदर साधन सब करै, कहैं मुक्ति हम जाहिं ।
आतम कै अनुभव बिना, और मुक्ति कहुं नाहिं ॥
पंच^३ कोष ते^४ भिन्न है, सुंदर तुरीय स्थान ।
तुरियातीत हि अनुभवै, तहाँ न ज्ञान अज्ञान ॥ ४२ ॥
है सो सुंदर है सदा, नहीं^४ सो सुंदर नाहिं ।
नहीं सो परगट देषिए, है सो लहिए माँहिं ॥ ५० ॥ (११४)

१-कोई व्यंजन अकार के बिना उच्चारित नहीं हो सकता अर्थात् व्यंजन की उत्पत्ति अकार के आधार पर है । व्यंजन प्रकृति । अ को आदि ले स्वर चेतन शक्ति । २-छः दर्शन शास्त्र प्रसिद्ध हैं । ३-अक्षमय आदि पाँच कोष । ४-होकर बिगड़े वा मिटै सो ।

(२८) अद्वैत ज्ञान को अंग

सुंदर हूं नहिं और कछु, तूं कछु और न होइ ।
 जगत कहा कछु और है, एक अखंडित सोइ ॥ १ ॥
 सुंदर हूं नहिं तू नहीं, जगत नहीं ब्रह्मंड ।
 हूं पुनि, तूं पुनि जगत पुनि, व्यापक ब्रह्म अखंड ॥ २ ॥
 सुंदर मैं सुंदर जगत, सुंदर है जग माहिं ।
 जल सु तरंग तरंग जल, जल तरंग द्वै नाहि ॥ २१ ॥
 आत्म अरु परमात्मा, कहन सुनन कौं दोइ ।
 सुंदर तब ही मुक्ति है, जब हि एकता होइ ॥ ३६ ॥
 जगत जगत सब को कहै, जगत कहो किहिं ठौर ।
 सुंदर यह तो ब्रह्म है, नाम धरौ फिरि और ॥ ४१ ॥ (११६)

(३०) ज्ञानी को अंग

काज अकाज भलो बुरो, भेदाभेद न कोइ ।
 सुंदर ज्ञानी ज्ञान मय, देह क्रिया सब होइ ॥ ८ ॥
 हर्ष शोक उपजै नहीं, राग द्वेष पुनि नाहिं ।
 सुंदर ज्ञानी देखिए, नरक ज्ञान कै माहिं ॥ १२ ॥
 जलचर थलचर व्योमचर, जीवन की गति तीन ।
 ऐसै सुंदर ब्रह्मचर^१ जहाँ तहाँ लयलीन ॥ २१ ॥

१-मछली आदि जल में, चौपाये आदि थल पै, पक्षी आदि आकाश में रहते सहते हैं और उनके तत्त्व निवासों के बिना उनका क्षण भर भी काम नहीं चलता । इसी प्रकार यह बुद्धि-सम्पन्न जीव (मनुष्य) स्वभाव,

(२७१)

घटाकाश ज्यों मिलि गह्यौ, महदाकाश निदान ।
 सुंदर ज्ञानी कै सदा, कहिए केवल ज्ञान ॥ २८ ॥
 भावै तन काशी तजौ, भावै बागड^१ माहिं ।
 सुंदर जीवनमुक्ति कै, संशय कोऊ नाहिं ॥ २९ ॥
 अज्ञानी कौं जगत यह, दुख दायक भै त्रास ।
 सुंदर ज्ञानी कै जगत, है सब ब्रह्म विलास ॥ ३० ॥
 सुंदर भाया आप कौं, आया अपुनी ठाम ।
 गाया अपुने ज्ञान कौ, पाया अपना धाम ॥ ३१ ॥
 रागी त्यागी शांति पुनि, चतुरथ घोर वषान ।
 ज्ञानी च्यार प्रकार है, तिन्हें लेहु पहिचान ॥ ३२ ॥
 रागी राजा जनक है, त्यागी शुक सम थोर ।
 शांत जानि जमदग्नि कौं, दुर्वासा अति घोर ॥ ३३ ॥ (१२८)

(३१) अन्योन्य भेद को अंग

रथ चौबीसहु तत्व कौ, कर्म सुभासुभ बैल ।
 सुंदर ज्ञानी सारथी, करै दशौं दिशि सैल ॥ ३ ॥
 देह तमूरा डाट जड़, जीभ तार तिहिं लाग ।

कर्म और अभ्यास से ब्रह्म ही को अपना आदिम निवासस्थल ऐसा बना ले कि छण भर भी बिलग न हो, यदि हो तो नष्ट हो जाय । तब स्वयं तल्लीनता सम्भव है ।

१-राजस्थान में खंड-विशेष जहाँ के लोग गहिंत और असभ्य समझे जाते हैं ।

(२७२)

सुंदर चेतन चतुर बिन, कौन बजावै राग ॥ ५ ॥
सत अरु चित आनंद मय, ब्रह्म विशेषण तीन ।
अस्ति भाति प्रिय आतमा, वहै विशेषण कीन ॥ १५ ॥
जीव भयौ अनुलोम^१ ते, ब्रह्म होइ प्रतिलोम^२ ।
सुंदर दारु जराइ कै, अग्नि होय निर्धोम^३ ॥ २५ ॥
कठिन बात है ज्ञान की, सुंदर सुनी न जाइ ।
और कहूँ नहिं ठाहरै, ज्ञानी^४ हृदै समाइ ॥ ३८ ॥ (१३३)

१-सुलटा । २-उलटा । ३-धुआँरहित, शुद्ध । ४-अनुभववाला,
पहुँचवान ज्ञानी

(५) पदसार

[सुंदरदासजी ने २७-२८ राग रागनियों में २२५ पद वा भजन बनाए हैं । प्रायः पद बड़े अर्थ और प्रयोजन से भरे हैं । साधुओं में 'साखी' और 'पद' (भजन) बनाने का मानों एक रवैया सा ही है । दादूजी और उनके सब ही शिष्यों ने ऐसा किया था । हम इनसे अति चमत्कारी और गंभीर ४० (चालीस) पद छुटकर यहाँ धरते हैं जो गाने और सुनने में मनोहर और प्रयोजन में मूल्यवान् प्रतीत होंगे ।]

[पद के अंत में जो संख्या दी है वह राग के अंतर्गत पद की गिनती है ।]

(१) राग जकड़ी गौड़ी

पद ११

भया मैं न्यारा रे ।

सतगुरु कै जु प्रसाद, भया मैं न्यारा रे ।

श्रवण सुन्यौं जब नाद, भया मैं न्यारा रे ।

छूट्यो वाद विवाद, भया मैं न्यारा रे ॥ टेक ॥

लोक वेद कौ संग तज्यौ रे, साधु समागम कीन ।

माया मोह जंजाल ते' हम भाग किनारे दीन ॥ १ ॥ भया० ॥

नाम निरंजन लेते हैं रे और कछू न सुहाई ।

मनसा वाचा कर्मना सब छाडी आन उपाई ॥ २ ॥ भया० ॥

मन का भरम विलाइया रे भटकत फिरता दूरि ।

उलटि समाना आपु में तब प्रगट्या राम हजूरि ॥ ३ ॥ भया० ॥

सु०—१८

(२७४)

पिंड ब्रह्मांड जहां तहां रे, वा बिन और न कोई ।
सुंदर ताका दास है, जातै सब पैदाइश होई ॥४॥

भया० ॥११॥ (१)

पद १२

काहे कौं तू मन आनत भै रे । जगत विलास तेरो भ्रम है रे ॥टेक॥
जन्म मरन देहनि कौ कहिए । सोऊ भ्रम जब निश्चय गहिए ॥१॥
स्वर्ग नरक दोऊ तेरी शंका । तू ही राव भयौ तूं रंका ॥२॥
सुख दुख दोऊ तेरे कीए । तैं ही बंधमुक्त करि लीए ॥३॥
द्वैत भाव तजि निर्भय होई । तब सुंदर सुंदर है सोई ॥४॥(२)

(२) राग माली गाडो

पद २

सतसंग नित प्रति कीजिए । मति होय निर्मल सार रे ।
रति प्रानपति सौं ऊपजै । अति लहै सुख अपार रे ॥टेक॥
मुख नाम हरि हरि ऊचरै । श्रुति सुने गुन गोविंद रे ।
रटि रंकार^१ अखंड धुनि । तहाँ प्रगट पूरन चंद रे ॥ १॥
सतगुरु बिना नहि पाइए । इह अगम उलटा षेल रे ।
कहि दास सुंदर देषत । होइ जीव ब्रह्महिं मेल रे ॥२॥(३)

पद ५ *

जग ते' जन न्यारा रे । करि ब्रह्म विचारा रे ।

ज्यों सूर उज्यारा रे ॥ टेक ॥

१-अजपा जाप का एक भेद ।

* यह पद (५) रागिनी 'भीम पलासी' में भी गाया जाता है ।

(२७५)

जल अंबुज जैसे रे । निधि सीप सु तैसे रे ।

मणि अहिमुख ऐसे रे ॥ १ ॥

ज्यों दर्पन माहीं रे । दीसै परछाहीं रे ।

कछु परसै नाहीं रे ॥ २ ॥

ज्यों घृत हि समीपै रे । सब अंग प्रदीपै रे ।

रसना नहिं छीपै रे ॥ ३ ॥

ज्यों है आकाशा रे । कछु लिपै न तासा^१ रे ।

यों सुंदर दासा रे ॥ ४ ॥ (४)

(३) राग कल्याण

पद ५

ततथेई ततथेई, ततथेई ताधी ।

नागऽधी नागऽधी, नागऽधी माधी ॥ टेक ॥

थुंग निथुंग, निथुंग निथुंगा ।

त्रिघट उघटि, तत तुरिय उतंगा ॥ १ ॥

तननन तननन, तननन तन्ना ।

गुप्त गंगनवत्, आतम भिन्ना ॥ २ ॥

तत्त्वं तन्त्वं तत्, सोत्वं असि ।

सामवेद यों, वदत तत्त्वमसि ॥ ३ ॥

१—तासा = उससे वा उसमें ।

(२७६)

अद्भुत निरतत, नाशत मोह ।

सुंदर गावत, सोऽहं सोऽहं ॥ ४ ॥ (५) *

(४) राग कानडो

पद ५

सब कोऊ आप कहावत ज्ञानी ।

जाकौं हर्ष शोक नहिं व्यापै ब्रह्म ज्ञान की ये नीसानी ॥ टेक ॥

ऊपर सब व्यवहार चलावै अंतःकरण शून्य करि जानी ।

हानि लाभ कछु धरैन मन में इहिं विधि विचरै निर अभिमानी ॥ १ ॥

अहंकार की ठौर उठावै आतम दृष्टि एक उर आनी ।

जीवनमुक्त जानि सोइ सुंदर और बात की बात बषानी ॥ २ ॥ (६)

(५) राग विहागडो

पद ३

हमारे गुरु दीनी एक जरी ।

कहा कहीं कछु कहत न आवै अमृत रसही भरी ॥ टेक ॥

ताकौ मरम संतजन जानत वस्तु अमोल घरी ।

यातें मोहि पियारी लागत लै करि सीस धरी ॥ १ ॥

मन भुजंग अरु पंच नागनी सूँघत तुरत मरी ।

झायनि एक घात सब जग कौं सो भी देष डरी ॥ २ ॥

त्रिविध विकार ताप तन भागी दुर्मति सकल हरी ।

* इस पद में प्रत्येक शब्द का अध्यात्म अर्थ नृत्यार्थ से भिन्न भी है ।

(२७७)

ताकौ गुन सुनि मीच^१ पलाई^२ और कवन बपुरी^३ ॥ ३ ॥

निसिवासर नहिं ताहि बिसारत पल छिन आध घरी ।

सुंदरदास भयौ घट निरविष सबही व्याधि टरी ॥ ४ ॥ (७)

(६) राग केदारो

पद २

देषहु एक है गोविंद ।

द्वैत भावहि दूर करिए होइ तव आनंद ॥ टेक ॥

आदि ब्रह्मा अंत कीटहु दूसरो नहिं कोइ ।

जो तरंग विचारिए तो बहै एकै तोइ ॥ १ ॥

पंचतत्त्व अरु तीन गुन कौ कहत है संसार ।

तऊ दूजो नाहिं एकै बीज कौ विस्तार ॥ २ ॥

अतत निरस न कीजिए तौ द्वैत नहिं ठहराइ ।

नहीं नहिं करते रहै तहाँ वचन हू नहिं जाइ ॥ ३ ॥

हरि जगत में जगत हरि में कहत हैं यों बेद ।

नाम सुंदर धरगौ जबहीं भयौ तबही भेद ॥ ४ ॥ (८)

(७) राग मारू

पद ५

जुवारी जूवा छाड़ौ रे ।

हारि जाहुगे जन्म कौ मति चौपड़ि माँडौ रे ॥ टेक ॥

(२७८)

चौपड़ अंतहकरण की तीनों गुन पासा रे ।
 सारि कुबुद्धी धरत है यौ होइ बिनासा रे ॥ १ ॥
 लष चौरासी घर फिरे अब नरतन पायौ रे ।
 याकी काची सारि हूँ जौ दाव न आयौ रे ॥ २ ॥
 भूठी बाजी है मंडी तामैं मति भूलौ रे ।
 जीव जुवारी बापडा काहे कौ फूलौ रे ॥ ३ ॥
 सारि समझि कै दीजिए तौ कबहुं न हारौ रे ।
 सुंदर जीतौ जन्म कौ जौ राम सँभारौ रे ॥४॥ (६)

(८) राग भैरव

पद ६

ऐसा ब्रह्म अखंडित भाई ।
 बार बार जान्यौ नहिं जाई ॥ टेक ॥
 अनल पंख उड़ि छड़ि अकासा ।
 थकित भई कहूँ छोर न तासा ॥ १ ॥
 लोन पृथरी थागै दरिया ।
 जात जात ता भीतरि गरिया ॥ २ ॥
 अति अगाध गति कौन प्रमानै ।
 हेरत हेरत सबै हिरानै ॥ ३ ॥
 कहि कहि संत सबै कोउ हारा ।
 अब सुंदर का कहै बिचारा ॥ ४ ॥ (१०)

(२७६)

पद ७

सोवत सोवत सोवत आयो । सुपनै ही में सुपनौ पायौ ॥टेक॥
प्रथम हि सुपनौ आयौ येह । आपु भूलि करि मान्यौ देह ।
ताकै पीछै सुपनौ और । सुपनै ही में कीनी दौर ॥ १ ॥
सुपना इंद्रो सुपना भोग । सुपना अंतहकरन वियोग ।
सुपनै ही में बाँध्यो मोह । सुपनै ही में भयौ बिछोह ॥ २ ॥
सुपनै स्वर्ग नरक में वास । सुपने ही में जम की त्रास ।
सुपनै में चौराशी फिरै । सुपनै ही में जन्मै मरै ॥ ३ ॥
सतगुरु शब्द जगावन हार । जब यह उपजै ब्रह्म विचार ।
सुंदर जागि परै जे कोई । सब संसार सुप्र तब होई ॥४॥ (११)

(८) राग ललित

पद ३

अब हूँ हरि कौं जाँचन आयौ ।

देखे देव सकल फिरि फिरि मैं दारिद भंजन कोऊ न पायौ ॥टेक॥
नाम तुम्हारौ प्रगट गुसाईं, पतित उधारन वेदनि गायौ ।
ऐसी साधि सुनी संतन मुख, देत दान जाचिक मन भायौ ॥१॥
तेरे कौन बात कौ टोटौ, हूं तौ दुख दरिद्र करि छायो ।
सोई देहु घटै नहि कबहूँ, बहुत दिवस लग जाइ न पायौ ॥२॥
अति अनाथ दुर्बल सबही बिधि, दीन जानि प्रभु निकट बुलायौ ॥
अंतहकरण उमगि सुंदर कौं, अभैदान दै दुःख मिटायौ ॥३॥ (१२)

(२८०)

(१०) राग काल्हेडा

[यह राग और इसके पद गुजराती के हैं, इससे यहाँ नह
लिखे गए ।]

(११) राग देवगंधार

पद २

अब तो ऐसे करि हम जान्यौ ।

जौ नानात्व प्रपंच जहाँ लौं मृगतृष्णा कौ पान्यौ^१ ॥ टेक ॥
रजु कौं सर्प देषि रजनी मैं भ्रम तें अति भय आन्यो ।
रवि प्रकाश भयौ जब प्रातहि रजु कौ रजु पहिचान्यो ॥ १ ॥
ज्यौं बालक बेताल देषि कै योंही वृथा डरान्यो ।
ना कछु भयौ नहीं कुछ ह्वै है यह निश्चय करि मान्यो ॥ २ ॥
सशाश्रुंग बंध्यासुत भूलै मिथ्या बचन बषान्यौ ।
तैसे जगत काल त्रय नाहीं समझि सकल भ्रम भान्यौ ॥ ३ ॥
ज्यौं कछु हुतौ रह्यौ पुनि सोई दुतिया^२ भाव विलान्यौ ।
सुंदर आदि अंत मधि सुंदर सुंदर ही ठहरान्यौ ॥४॥ (१)

(१२) राग विलावल

पद २

सोइ सोइ सब रैनि बिहानी ।

रतन जन्म की षवरि न जानी ॥ टेक ॥

१-फैलाव । अथवा पाया । अथवा पानी, जल । २-द्वितीया ।

पहिलै पहर मरम नहिं पावा । मात पिता सौं मोह बंधावा ।
 बेलत घात हँस्या कहूँ रोया । बालापन ऐसैही पोया ॥ १ ॥
 दूजै पहर भया मतवाला । परधन परत्रिय देखि पुसाला ।
 काम अंध कामिनि सँग जाई । ऐसैं ही जोवन गयौ सिराई ॥ २ ॥
 तीजै पहरि गया तरनापा । पुत्र कलत्र का भया सँतापा ।
 मेरै पीछै कैसा होई । घरि घरि फिरिहैं लरिका जोई ॥ ३ ॥
 चौथे पहरि जरा तन व्यापी । हरि न भज्यौ इहि मूरष पापी ।
 कहि समुझावै सुंदरदासा । राम बिमुख मरि गया निरासा ॥ ४ ॥

पद ८

है कोई योगी साधै पौना ।

मन थिर होई बिद नहिं डोलै, जितेंद्री सुमिरै नहिं कौना ॥ टेक ॥
 'यम अरु नेम धरै दृढ़ आसन प्राणायाम करै मन मौना ।
 प्रत्याहार धारणा ध्यानं लै समाधि लावै ठिक ठौना ॥ १ ॥
 इडा पिंगला सम करि राखै सुषमन करै गगन दिशि गौना ।
 अह निश ब्रह्म अग्नि परजारै^१ सापनि^२द्वार छाड़ि दै जौना ॥ २ ॥
 बहुदल षटदल दशदल पोखै द्वादशदल तहाँ अनहद भौना ।
 षोडशदल अमृत रस पीवै ऊपरि द्वै दल करै चतौना ॥ ३ ॥
 चढ़ि अकाश अमर पद पावै तार्को काल कहे नहिं षौना^३ ।
 सुंदरदास कहै सुनिअवधू महा कठिन यह पंथ अलौना ॥ ४ ॥ (१५)

पद १५

जाकै हृदै ज्ञान है ताहि कर्म न लागै ।

१-जटावै । प्रकाशित बनी रखे । २-कुंडिनी । ३-खावै ।

(२८२)

सब परि बैठे मच्छिका पावक तैं भागै ॥ टेक ॥
जहाँ पाहरू^१ जागहीं तहाँ चोर न जाहीं ।
आंघिन देषत सिंह कौं पशु दूरि पलाहीं ॥ १ ॥
जा घर माहि मंजार हूँ तहाँ मूषक नासै ।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै ॥ २ ॥
ज्यों रवि निकट न देषिए कबहूँ अंधियारा ।
सुंदर सदा प्रकाश में सब ही तैं न्यारा ॥ ३ ॥ (१६)

(१३) राग टोडी

पद ३

राम नाम राम नाम राम नाम लीजै ।
राम नाम रटि रटि राम रस पीजै ॥ टेक ॥
राम नाम राम नाम गुरु ते^२ पाया ।
राम नाम मेरै हिरदै आया ॥ १ ॥
राम नाम राम नाम भजि रे भाई ।
राम नाम पटतरि^२ तुलै न काई ॥ २ ॥
राम नाम राम नाम है अति नीका ।
राम नाम सब साधन का टीका ॥ ३ ॥
राम नाम राम नाम अति मोहि भावै ।
राम नाम सुंदर निशि दिन गावै ॥ ४ ॥ (१७)

(२८३)

पद ७

मेरौ धन माधो माई री, कबहूँ बिसरी न जाऊँ ।
पल पल छिन छिन घरि घरि तिहि बिन देखै न रहाऊँ ॥ टेक ॥
गहरी ठौर धरौं उर अंतर काहू कौ न दिषाऊँ ।
सुंदर को प्रभु सुंदर लागत लै करि गोपि छिपाऊँ ॥१॥ (१६)

(१४) राग आसावरी

पद ६

कोई पीवै राम रस प्यासा रे ।
गगन मंडल में अमृतसरवै उनमनि कै घर वासा रे ॥ टेक ॥
सीस उतारि धरै धरती पर करै न तन की आसा रे ।
ऐसा महंगा अमी बिकावै छह रितु बारह मासा रे ॥ १ ॥
मोल करै सौ छकै दूर ते तौलत छूटै वासा रे ।
जौ पीवै सो जुग जुग जीवै कबहूँ न होइ बिनासा रे ॥ २ ॥
या रस काजि भए नृप जोगी छाड़ै भोग विलासा रे ।
सेज सिंघासन बैठे रहते भस्म लगाइ उदासा रे ॥ ३ ॥
गोरषनाथ भरथरी रसिया सोइ कबीर अभ्यासा रे ।
गुरु दादू परसाद कछू इक पायो सुंदरदासा रे ॥४॥ (१६)

पद ८

मुक्ति तो धोषै की नीसानी ।
सो कतहूँ नहि ठौर ठिकाना जहाँ मुक्ति ठहरानी ॥ टेक ॥
को कहै मुक्ति व्यौम के ऊपर को पाताल के मांही ।

(२८४)

कौ कहै मुक्ति रहे पृथ्वी पर दूँटै तो कहूँ नहीं ॥ १ ॥
 वचन विचार न कीया किनहूँ सुनि सुनि सब उठि धाए ।
 गोदंढा^१ ज्यों मारग चालै आगे षोज विलाए ॥ २ ॥
 जीवत कष्ट करै बहुतेरे मुये मुक्ति कहै जाई ।
 धोषै ही धोषै सब भूलै आगै ऊवार बाई ॥ ३ ॥
 निज स्वरूप कौ जानि अखंडित ज्यों का ल्यो ही रहिए ।
 सुंदर कछू ग्रहै नहिं त्यागै वह है मुक्ति पथ कहिए ॥ ४ ॥ (२०)

पद ११

मन मेरे सोई परम सुख पावै ।
 जागि प्रपंच माहिं मति भूलै यह औसर नहिं आवै ॥ टेक ॥
 सोवै क्यों न सदा समाधि में उपजै अति आनंदा ।
 जौ तँ जागै जग उपाधि में चीन होइ ज्यों चंदा ॥ १ ॥
 सोइ रहै ते' हूँ अखंड सुख तौ तू जुग जुग जीवै ।
 जौ जागै तौ परै मृत्युमुख वादि वृथा विष पीवै ॥ २ ॥
 सोवै जोगी जागै भोगी यह उलटी गति जानी ।
 सुंदर अर्थ विचारै याकौ सोई पंडित ज्ञानी ॥ ३ ॥ (२१)

(१५) राग सिंधूडो

पद ३

द्वै दल आइ जुडे धरणी पर बिच सिंधूडो जात्रै ३ ।

१-गुबरैला जंतु जो भौरे के बराबर होता है आर गोबर की गोखियाँ बनाकर उलटे सिर पीछे हटाता ले जाता है । २-बच्चों का खेल वा हालरा । सोच विचार ।

एक वोर कौं नृप विवेक चढ़ि एक मोह नृप गाजै रे ॥ टेक ॥
 प्रथम काम रन माहिं गल्यारौ को हम ऊपरि आवै रे ।
 महादेव संरषा में जीत्या नर की कौन चलावै रे ॥ १ ॥
 आइ बिचार बोलियो वाणी मुख पर नीकै डाख्यौ रे ।
 ज्ञान षडग लै तुरत काम कौ हाथ पकड़ि सिर काख्यौ रे ॥ २ ॥
 क्रोध आइ बोख्यौ रन माहीं हैं सबहिन कौं काला रे ।
 देव दयंत मनुष पशु पंखी जरै हमारी ज्वाला रे ॥ ३ ॥
 धिमा आइकै हँसनै लागी सीस चरन कौ नायौ रे ।
 चूक हमारी बकसहु स्वामी इतने क्रोध नसायौ रे ॥ ४ ॥
 तबहिं लोभ रन आइ पचारयो मैं तौ सबही जीते रे ।
 जौ सुमेर घर भीतरि आवे तौ पेट सबन कै रीते रे ॥ ५ ॥
 इत संतोष आइ भयौ ठाढ़ौ बौलै बचन उदासा रे ।
 होनहार सौ ह्वै है भाई कियौ लोभ कौ नासा रे ॥ ६ ॥
 महा मोह कौं लगी चटपटी अति आतुर सौ आयौ रे ।
 मेरे जोधा सब ही मारे ऐसौ कौन कहायौ रे ॥ ७ ॥
 तापर राइ विवेक पधार्यौ कीनी बहुत लराई रे ।
 इततै उततै भई उड़ाउड़ि काहू सुद्धि न पाई रे ॥ ८ ॥
 बहुत बार लग जूझै राजा राइ विवेक हँकारयो रे ।
 ज्ञान गदा की दर्ई सीस में महामोह कौं मार्यौ रे ॥ ९ ॥
 फोटौ तिमिर भान तब ऊगौ अंतर भयौ प्रकासा रे ।
 युग युग राज दियौ अविनाशी गावै सुंदरदासा रे ॥ १० ॥

(२८६)

(१६) राग सोरठ

पद ५

मेरा मन राम नाम सौं लागा । तारैं भरम गयौ मै भागा ॥ टेक ॥
आसा मनसा सब थिर कीनी । सत रज तम^१ त्यागै तीनी ।
पुनि हरष शोक गए दोऊ । मद मछर रहे न कोऊ ॥ १ ॥
नष शिष लौं देह पषारी । तब शुद्ध भई अब नारी ।
भया ब्रह्म अग्नि सुप्रकाशा । किया सकल कर्म का नाशा ॥ २ ॥
इडा पिंगला उलटी आई । सुषमन ब्रह्म^२ ड चढ़ाई ।
जब मूल चाँपि दिठ बैठा । तब बिंद गगन में पैठा ॥ ३ ॥
जहाँ शब्द अनाहद बाजै । तहाँ अंतरि जोति बिराजै ।
कोई देषै देषनहारा । सो सुंदर गुरु हमारा ॥ ४ ॥ (२३)

पद ७

हमारै साहु रमइया मौटा । हम ताके आहि बनौटा^१ ॥ टेक ॥
यह हाट दई जिनि काया । अपना करि जानि बैठाया ।
पूँजी कौ अंत न पारा । हम बहुत करी भँडसारा^२ ॥ १ ॥
लई वस्तु अमोलिक सारी । सब छाड़ि विषै षलिषारी^३ ।
भरि राख्यौ सब ही भौना । कोई पाली रह्यौ न कौना ॥ २ ॥
जो गाहक लैनै आवै । मन मान्यौ सौदा पावै ।
देषै बहु भाँति किराना । उठि जाइ न और दुकाना ॥ ३ ॥

१-व्यापारी जो दूसरे के सहारे बनज करे । २-उथल पुथल
कर सामान भरा । ३-वृथा निःसार पदार्थ । खली + खारी ।

(२८७)

संग्रथ की कोठी आए । तब कोठीवाल कहाए ।
बनिजै हरि नाम निवासा । यह बनिया सुंदरदासा ॥४॥ (२४)

(१७) राग जैजैवंती

पद २

आप कौं सँभारै जब तूँही सुख सागर है ।
आप कौं बिसारै तब तूँही दुख पाइ है ॥ टेक ॥
तूँ ही जब आवै ठौर दूसरौ न भासै और ।
तेरी हो चपलता तै' दूसरौ दिषाइ है ॥ १ ॥
बाँवें कानि सुनि भावै' दाहिनै पुकारि कहूँ ।
अबकै न चेत्यौ तो तूँ पोछे पछिताइ है ॥ २ ॥
भावै आज भावै कल्पंत बीतै' होइ ज्ञान ।
तब ही तूँ अविनाशी पद में समाइ है ॥ ३ ॥
सुंदर कहत संत मारग बतावै तोहि ।
तेरी पुसी परै तहाँ तूँ हो चलि जाइ है ॥ ४ ॥ (२५)

(१८) राग रामकरी

पद ५

नट वट रच्यौ नटवै एक ।
बहु प्रकार बनाइ बाजी किए रूप अनेक ॥ टेक ॥

(२८८)

चारि पानी जीव तिनकी और औरे जाति ।
एक एक समान नाहि करी ऐसी भाति ॥ १ ॥
देव भूत पिशाच राक्षस मनुष पशु अरु पंषि ।
अग्नि जलचर कीट कृमि कुल गनै कौन असंषि ॥ २ ॥
भिन्न भिन्न सुभाव कीये भिन्न भिन्न अहार ।
भिन्न भिन्न हि युक्ति राषी भिन्न भिन्न बिहार ॥ ३ ॥
भिन्न बानी सकल जानी एक एक न मेल ।
कहत सुंदर माहिं बैठा करै ऐसा खेल ॥ ४ ॥ (२६)

पद ८

ऐसी भक्ति सुनहु सुखदाई ।
तीन अवस्था में दिन बौतै सो सुख कह्यो न जाई ॥ टेक ॥
जाग्रत कथा कीरतन सुमिरन स्वप्नै ध्यान लै लावै ।
सुषुपति प्रेम मगन अंतर गति सकल प्रपंच भुलावै ॥ १ ॥
सोई भक्ति भक्त पुनि सोई सो भगवंत अनूपं ।
सो गुरु जिन उपदेश बतायो सुंदर तुरिय स्वरूपं ॥ २ ॥ (२७)

पद ९

तूहों राम हूँहीं राम । वस्तु विचारै भ्रम द्वै नाम ॥ टेक ॥
तूहों हूँहीं जब लगि दोइ । तब लगि तूहों हूँहीं होइ ॥ १ ॥
तूहों हूँहीं सोहं दास । तूहों हूँहीं बचन विलास ॥ २ ॥
तूहों हूँहीं जब लग कहै । तब लग तूहों हूँहीं रहै ॥ ३ ॥
तूहों हूँहीं जब मिटि जाइ । सुंदर ज्यों को ल्यों ठहराइ ॥ ४ ॥

(२८६)

(१६) राग वसंत

पद ५

हम देषि बसंत कियो विचार ।
यह माया धेलै अति अपार ॥ टेक ॥
यह छिन छिन माहिं अनेक रंग ।
पुनि कहूँ बिछुरे कहूँ करै संग ॥
यहु गुन धरि बैठी कपट भाइ ।
यहु आपुहि जन्मै आपु षाइ ॥ १ ॥
यहु कहूँ कामिनि कहूँ भई कंत ।
यहु कहूँ मारै कहूँ दयावंत ॥
यहु कहूँ जागै कहूँ रही सोइ ।
यहु कहूँ हँसै कहूँ उठै रोइ ॥ २ ॥
यहु कहूँ पाती कहूँ भई देव ।
पुनि कहूँ युक्ति करि करै सेव ॥
यहु कहूँ मालिनि कहूँ भई फूल ।
यहु कहूँ सुखम ह्वै कहूँ स्थूल ॥ ३ ॥
यहु तीन लोक में रही पूरि ।
भागी कहाँ कोई जाइ दुरि ॥
जो प्रगटं सुंदर ज्ञान अंग ।
तो माया मृगजल रजु-भुजंग ॥ ४ ॥ (२६)

(२६२)

(२३) राग मलार

पद २

देखौ भाई आज भलौ दिन लागत ।

बरिषा रितु कौ आगम आयौ बैठि मलारहि रागत ॥ टेक ॥

राम नाम के बादल उनए घोरि घोरि रस पागत ।

तन मन माहि भई शीतलता गए विकार जु दागत ॥१॥

जा कारनि हम फिरत वियोगी निशि दिन उठि उठि जागत ।

सुंदरदास दयाल भए प्रभु सोइ दियौ जोइ माँगत ॥२॥(४)

पद ५

करम हिंडोलना भूलत सब संसार ।

है हिंडोल अनादि कौ यह फिरत बारबार ॥टेक॥

दोई धंभ सुख दुख अडिग रोपै भूमि माया माहिं ।

मिथ्यात्व, ममता, कुमति, कुदया चारि डाँडी आहिं ॥

पाप पटली पुन्य मरवा अधौ ऊरध जाहिं ।

सत्व रज तम देहिं कोटा सूत्र पैचि भुलाहिं ॥ १ ॥

तहाँ शब्द सपरश रूप रस बन गंध तरु विस्तार ।

तहाँ अति मनोरथ कुसुम फूले लोभ अलि गुंजार ॥

चक्र (वाक) मोर चकोर चातक पिकु श्रृषीक उचार ।

तरला तृष्णा बहत सरिता महातीक्ष्ण धार ॥ २ ॥

यह प्रकृति पुरुष मचाइ राज्यौ सदा करम हिंडोल ।

सजि त्रिविध रूप विकार भूषन पहिर अंगनि चोल ॥

एक नृत्तत एक गावत मिलि परसपर लोल ।

(२६३)

रति ताल मदन मृदंग बाजत दुदु दुंदुभि ढोल ॥ ३ ॥
यहि भाँति सबहि जगत भूलै छ रुति बारह मास ।
पुनि मुदित अधिक उछाह मन में करत विविध विलास ॥
यौं फूलतै चिरकाल बीत्यौ होत जनम विनाश ।
तिनि हारि कबहुँ नाहिं मानी कहत सुंदरदास ॥४॥ (३५)

(२४) राग काफी

पद १३

सहज सुनि का चेला अभि-अंतरि मेला ।
अवगति नाथ निरंजना तहाँ आपै आप अकेला ॥टेक॥
यह मन तहाँ बिलमाइए गहि ज्ञान गुरु का चेला ।
काल करम लागै नहीं तहाँ रहिए सदा सुहेला ॥१॥
परम जोति जहाँ जगमगै अरु शब्द अनाहद भैला ।
संत सकल पहुँचे तहाँ जन सुंदर वाही गैला ॥२॥ (३६)

२५) ऐराक

पद ४

रासा रे सिरजनहार कासौ । मैं निस दिन गाऊँ ।
कर जोरें बिनती करौं क्यों ही दरसन पाऊँ ॥टेक॥
उतपति रे साई ते' किया प्रथमहि वो ओंकारा ।
तिस ते' तीन्यों गुन भए पीछे पंच पसारा ॥ १ ॥

(२६४)

तिनका रे यह औजूद है सोते महल बनाया ।
 नव दरवाजे साजि के दसवैं कपाट लगाया ॥ २ ॥
 आपन रे बैठा गोपि हूँ व्यापक सब घट माहीं ।
 करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नाहीं ॥ ३ ॥
 पेसी रे तेरी साहिबी सो तूही भल जानै ।
 सिफिति तुम्हारी साँइयाँ सुंदरदास बषानै ॥ ४ ॥ (३७)

(२६) संकराभरन

पद २

मन कौन सौँ लगि भूल्यौ रे ।
 इंद्रिनि के सुख देषत नीके जैसैं सँवरि फूल्यौ रे ॥ टेक ॥
 दोपक जोति पतंग निहारै जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥ १ ॥
 भूठी माया है कछु नाहीं मृगतृष्णा में भूल्यौ रे ॥ २ ॥
 जित तित फिरै भटकतौ यौही जैसैं वायु घूल्यौ रे ॥ ३ ॥
 सुंदर कहत समुझि नहिं कोई भवसागर में डूल्यौ रे ॥ ४ ॥ (३८)

(२७) धनाश्री

पद ६

ब्रह्म विचार ते' ब्रह्म रह्यौ ठहराइ ।
 और कछु न भयौ हुतौ भ्रम उपज्यौं थौ आइ ॥ टेक ॥
 ज्यों अंधियारी रैन में कल्प लियौ रजु प्याल ।
 जब नीकै करि देखियौ भ्रम भाग्यौ ततकाल ॥ १ ॥

(२६५)

ज्यों सुपनै नृप रंक हूँ भूलि गयौ निज रूप ।
जागि परयो जब स्वप्न ते' भयौ भूप को भूप ॥ २ ॥
ज्यों फिरतै' फिरतौ हसै जगत सकल ही ताहि ।
फिरत रह्यौ जब बैठि कै तब कछु फिरत न आहि ॥ ३ ॥
सुंदर और न हूँ गयौ भ्रम ते' जान्यौ आन ।
अब सुंदर सुंदर भयौ सुंदर उपज्यौ ज्ञान ॥ ४ ॥ (३६)

(२८) आरती*

आरती परब्रह्म की कीजै । और ठौर मेरौ मन न पतीजै ॥टेक॥
गगन मंडल मैं आरति साजी । शब्द अनाहद भालरि बाजी ॥१॥
दीपक ज्ञान भया परकासा । सेवक ठाढ़ै स्वामी पासा ॥२॥
अति उछाह अति मंगलचारा । अति सुख विलसै बारंबारा ॥३॥
सुंदर आरति सुंदर देवा । सुंदरदास करै तहाँ सेवा ॥४॥(४०)

* 'आरती' विविध रागों में गाई जाती है । समय के अनुसार
बिलावल, सारंग, धनाश्री, बरबा कल्याण आदि ।

